सर्वदानन्द-विश्व-ग्रन्थमाला

Sarvadanand Universal Series

स्मारक
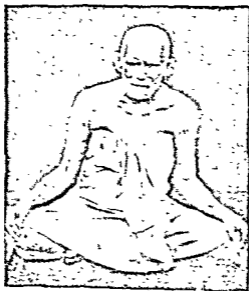
स्वर्गत स्वामी सर्वदानन्द जी

संपादक,

विश्वबन्धु शास्त्री

M.A., M.O.L. (Pb.), A.F.O. (Fr.), Kt. C.T. (It.)

ग्रन्थ ६

Volume VI

साहित्यिक परामर्श-समिति—

१. श्रीमती सोफिया वादिया, बम्बई
२. डा. सर. राधाकृष्णन, मोस्को
३. डा. श्री क. मा. मुन्शी, देहली
४. श्री ग. वि. केतकर, पूना
५. आचार्य क्षितिमोहन सेन, शांतिनिकेतन
६. महापंडित राहुल सांकृत्यायन, नैनीताल
७. डा. श्री गोकुलचन्द नारंग, देहली
८. डा. श्री काहनचन्द खन्ना, सिमला
९. प्रि. भाई जोधासिंह, अमृतसर
१०. प्रो. श्री दीवानचन्द शर्मा, होश्यारपुर
११. श्री संतराम, होश्यारपुर
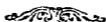
मुद्रक,
श्री देवदत्त शास्त्री विद्याभास्कर,
विश्वेश्वरानन्द वैदिक रिसर्च इन्स्टीच्यूट प्रैस
साधु-आश्रम, होश्यारपुर।

स. वि. ग्रन्थमाला—६ S. U. Series—6

संस्कृत-शिक्षाविधि

लेखक,

गौरीशङ्कर M. A. B. T. B. Litt. (Oxon). P. E. S.
सीनियर लैक्चरर, गवर्नमैण्ट कालेज,
होश्यारपुर।

.. Approved as Library Book
Vide D.P.I. Panjab's Office Letter
No 25670'S E (B C), Dated 25 Aug. 51.

होश्यारपुर,
विश्वेश्वरानन्द संस्थान प्रकाशन।

१९५०

संस्करण १; सं० २००७ (1950)

प्रकाशक—
विश्वेश्वरानन्द संस्थान प्रकाशन,
साधु-आश्रम, होशियारपुर

श्री इन्द्रसेन चण्डहोक, मद्रास
आप विश्वेश्वरानंद वैदिक संस्थान के प्रमुख प्रेमी और सहायक हैं।
आप के हृदय में भारतीय संस्कृति व साहित्य के प्रति
भक्ति भरी है। आप की इस उत्तम भावना के
उपलक्ष्य में यह ग्रन्थ आप के समादरार्थ
प्रकाशित हुआ है। इस के द्वारा
आप की पुण्य कीर्ति सदा
बढ़ती रहे।

सर्वदानन्द विश्व-ग्रन्थमाला—६

श्री इन्द्रसेन चण्डहोक

विश्वेश्वरानंद संस्थान प्रकाशन, होशियारपुर

संपादकीय

१. माला-नायक का परिचय

स्वर्गीय श्री स्वामी *सर्वदानंद* जी महाराज, जिनका पहला घर का नाम श्री चन्दुलाल था, का जन्म पंजाब के होश्यारपुर नगर के दक्षिण में कोई पाँच कोस पर बसे हुए, *बड़ीबस्सी* नाम के उपनगर में सं० १६१६ मे हुआ था। आपके पूर्वजों में अनेक उच्च कोटि के वैद्य और योग्य विद्वान् हो चुके थे। आपके दादा श्री सवाईराम *काश्मीर* के थे। परन्तु वह बाल्य-अवस्था में ही *बड़ीबस्सी* के इस कुल में आ कर इसी के हो गए थे। आपकी आरम्भिक शिक्षा अपने यहां से बारह कोस पर *हरियाना* उपनगर के वर्नैकुलर मिडल स्कूल में हुई थी। आप में छोटी अवस्था से ही धार्मिक रुचि तथा साधु सन्तों के सत्संग में प्रीति पाई जाती थी। इसी लिये जब गृहस्थ हो जाने के कुछ समय पीछे आपकी गृहिणी प्रसूता होकर बीत गई, तब फिर आप अधिक चिर तक घर पर नहीं रहे और विरक्त अवस्था में विचरने लग गए। सं० १६४३ के लगभग आपको भारतीय नव-युग के प्रथम प्रवर्तक, श्री स्वामी *दयानन्द* जी के प्रसिद्ध ग्रन्थ *सत्यार्थ-प्रकाश* के पाठ का सुअवसर मिला। इस से आप में लोक-सेवा का तीव्र भाव जाग उठा। तभी से आपने स्थिर-मति होकर, सद्विचार और निष्काम कर्म के सुन्दर, समन्वित मार्ग को धारण किया और सं० १६६६ में निर्वाण-पद की प्राप्ति तक, अर्थात् ४६ वर्ष बराबर उसे निबाहा। आप पवित्रता व सरलता की मूर्ति, राग-द्वेष से विमुक्त, दरिद्र-नारायण के

उपासक और खरी खरी अनुभव की बातें सुनाने वाले सदा-हंस परमहंस थे। आप सदा सभी के बन कर रहे और कभी किसी दल-बन्दी में नहीं पड़े। आप जहां अच्छा कार्य होता देखते थे, वहीं अपनी प्रीति-निर्झरी प्रवाहित कर देते थे।

२. 'स्मारक' का इतिहास

श्री स्वामी जी महाराज *विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान* के आदिम *पुण्यनिक्षेपधारी* तथा *कार्यकारी सदस्यों* में से थे और आपने आजीवन इसे अपने आशीर्वाद का पात्र बनाए रखा। आपका देहान्त हो जाने पर *संस्थान* ने यह निश्चय किया कि एक स्थिर *साहित्य-विभाग* के रूप में आपका *स्मारक* स्थापित किया जाये। उक्त विभाग सरल, स्थायी, सार्वजनिक साहित्य प्रकाशित करे और उसके द्वारा, आपके जीवन के ऊंचे व्यापक आदर्शों को स्मरण कराता हुआ, जनता-जनार्दन की सेवा में लगा रहे। इस पवित्र कार्य के लिए जनता ने साठ हजार रुपये से ऊपर प्रदान करते हुए अपनी श्रद्धा प्रकट की। परन्तु यह कार्य यहां तक पहुंचा ही था, कि हमारा प्रदेश पाकिस्तानी आग की लपेट में आ गया और सारी भारत-मातृक जनता के साथ ही *संस्थान* भी लाहौर को छोड़ने के लिए विवश हो गया। उसी गड़बड़ में इसे पांच लाख रुपये की भारी हानि भी सहनी पड़ी। तभी से यह अपने पाँव, नये सिरे से, जमाने में लगा हुआ है। पुनः प्रतिष्ठा नव-विधान से भी कहीं कड़ी होती है। इसीलिए यह अभी तक अपनी स्थिति को पूरी तरह संभाल नहीं पाया। परन्तु इस वर्ष के आरम्भ में समारब्ध हरिद्वार कुम्भ के महापर्व ने सिर पर आ कर, मानो, ऐसी चेतावनी दी कि और कार्य तो भले ही कुछ देर से भी हो जावे, परन्तु यह *स्मारक* का चिर-संकल्पित कार्य

इस शुभ अवसर पर अवश्य आरम्भ हो जाना चाहिए। इस *माला* का जैसे-कैसे किया गया प्रारम्भ उसी चेतावनी का फल था। साथ ही, यह भी अतीव उचित घटना घटी, कि इस सन्त-स्मारक माला का प्रारम्भ संत-वर स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती की *मह्म-विद्या* नाम की अमर रचना द्वारा हुआ। इस बीच में उक्त ग्रन्थ-रत्न के तीन आंशिक अनुमुद्रण *अध्यात्म-दर्शन*, *आत्म-पथ*, और *कर्मयोग*, इन तीन अलग ग्रन्थों के रूप में इस *माला* में निकल चुके हैं। इनके अतिरिक्त, लेखक-शिरोमणि श्री सन्तराम, बी० ए० की अत्युत्तम कृति *हमारे बच्चे* इस माला का पञ्चम ग्रन्थ बन कर अभी-अभी प्रकाशित हुई है। हमारे इस कार्य में, निश्चय ही, अभी अनेक दोष रह रहे हैं, पर इसमें हमारी वर्तमान भीड़ का ही विशेष अपराध है। अवश्य, समय पाकर, यह कार्य हमारी हार्दिक श्रद्धा के अनुरूप हो सकेगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

३. माला का क्षेत्र

विश्वभर के विश्व-विध विज्ञान, दर्शन, साहित्य, कला और अनुभव के आधार पर मथित किये जाने वाली इस *माला* के प्रकाशन-कार्य का विशालतम क्षेत्र होगा, पर, फिर भी, क्षमता की सीमा को दृष्टि में रखते हुए, हमारे प्रकाशनों की मुख्य भाषा हिन्दी रहेगी, और इनका मुख्य आधार भारतीय संस्कृति और साहित्य होगा। इनमें अपने पूर्वजों की दाय-रूप सामग्री की व्याख्याओं के साथ ही साथ नई रचनाओं को भी पर्याप्त प्रवेश मिलेगा। इसी प्रकार, इनमें देश, विदेश की उत्तम रचनाओं के उत्तम अनुवादों आदि का भी विशेष

स्थान रहेगा। इस *'माला'* के उक्त क्षेत्र की विशालता और विविधता को देखते हुए ही इसके सम्पादन-कार्य में आवश्यक परामर्श की प्राप्ति के लिए देश के विशिष्ट विद्वानों के सहयोग द्वारा साहित्यिक *परामर्श समिति* की योजना की गई है।

४. उपस्थित ग्रंथ

इस ग्रन्थ के योग्य लेखक प्राध्यापक गौरी शंकर जी एम. ए., बी. लिट् संस्कृत विद्या के विशिष्ट विद्वान् ही नहीं, वरन् उत्साही प्रचारक भी हैं। आप ने इस प्रेम को अपने पूज्य और विद्वान् पितृ-चरणों से विशेष सांस्कृतिक देन के रूप में पाया है। अतएव विज्ञता और भावुकता के सुन्दर संमिश्रण को लिए हुए अवतीर्ण हो रहे इस ग्रंथ का विशेष महत्त्व है। संस्कृत विद्या और विज्ञान भारत का साक्षात् सांस्कृतिक आत्मा है। अतः संस्कृत भाषा और साहित्य का पर्याप्त परिचय प्राप्त करना भारतीय नागरिकों का पवित्र कर्त्तव्य और मान-युक्त अधिकार होना चाहिए। इस कर्त्तव्य की पूर्ति और अधिकार की प्राप्ति के साधारणतया कठिन कहे जाने वाले मार्ग को सुगम कर देने की विधि का निरूपण करना इस ग्रंथ का ध्येय है। इस के *सिद्धान्त-भाग* मे दिए गए व्याकरण-शिक्षण आदि सम्बन्धी विचार गंभीर और मनन करने योग्य हैं। उनके बारे में, अंशत, मत-भेद संभावित होते हुए भी प्रस्तुत सुझावों की विचारणीयता और *प्रयोग-भाग* में दिए गए शिक्षण-संकेतों की उपादेयता निर्विवाद है। अतः यह आशा करनी चाहिए कि संस्कृतप्रेमी, सहृदय-वर्ग इस ग्रंथ का स्वागत करेंगे और संस्कृत के क्षेत्र के विस्तारार्थ इसका विशेष उपयोग करेंगे।

५. आभार-प्रकाशन

लेखक महोदय ने इस ग्रंथ का प्रथम संस्करण हमारे संस्थान को प्रदान किया है, यह उनकी सहृदयता और सौजन्य का संकेत है, जिसके लिए हम व्यक्तिगत एवं सांस्थानिक रूप से उनके आभारी हैं।

श्री देवदत्त व श्री ब्रह्मदत्त ने संपादन-कार्य में और शोध-पत्र ठीक करने में, तथा छापा वा जिल्दबंदी विभाग के प्रबन्धक श्री रेवतराम और अन्य कर्मियों ने पुस्तक को सुन्दर रूप में समय पर तैयार कर देने में पर्याप्त परिश्रम किया है। इस सराहनीय सहयोग के लिए हम इन सब का धन्यवाद करते हैं।

साधु-आश्रम, होशयारपुर
मार्गशीर्ष १५, २००७

विश्वबंधु

संस्कृतशिक्षा-विधि

भूमिका

येनाक्षर-समाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् ।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ॥
येन धौता गिरः पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः ।
तमश्चाज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः ॥
अज्ञानान्धस्य लोकस्य ज्ञानाञ्जन-शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै पाणिनये नमः ॥

संस्कृत का अध्ययन और अध्यापन भारत के लिए न केवल नैसर्गिक ही है अपितु संस्कृत की अपनी उपादेयता और महत्त्व भी इसके कारण हैं। स्कूलों में संस्कृत इसलिए पढ़ाई जानी चाहिए कि हिन्दी से और भारत की सभी आर्य भाषाओं से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। आधुनिक भारतीय तथा यूरोपीय भाषाओं को समझने के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है। भारत का तो समूचा प्राचीन इतिहास भी इसी भाषा में है। मानवता का इतिवृत्त भी इसी में मिलता है। संस्कृत भारत की भाषाओं में, भावों में, आचार-व्यवहार में, धर्म-कर्म में जीवित है। भारत में संस्कृत की सभ्यता है। भारत में संस्कृत के बिना गति नहीं। वेद, उपनिषद्, मनु, वाल्मीकि, व्यास अभी तक हमारे जीवन पर शासन कर रहे हैं। जब तक इन शास्त्रों का शासन और प्रभाव भारतीय जीवन पर है तब तक भारत संस्कृत को त्याग नहीं सकता। संस्कृत का स्थान भारत की कोई भी आधुनिक भाषा नहीं ले सकती। हिन्दीसंस्कृति का प्रभाव अभी भारतीय जीवन पर देखने में नहीं आता। गोस्वामी तुलसीदास की रामायण तथा सन्त-साहित्य के अतिरिक्त हम अन्य किसी भी हिन्दी

रचना के विषय में यह नहीं कहसकते कि उसका प्रभाव भारतीय संस्कृति और सभ्यता पर पड़ा है। परन्तु संस्कृत की छाप भारत के जीवन पर गहरी और अमिट है। आधुनिक भाषाओं का काम तो अभी-अभी चालू हुआ है। वे तो अभी काम-चलाऊ अवस्था में हैं। संस्कृत में भारत वैदिककाल से सोचता आरहा है, परन्तु हिन्दी में अभी सोचने का विचार कर रहा है। हिन्दी-भाषा अधिक परिचित होने के कारण बच्चों का ध्यान उतना आकृष्ट नहीं करती जितना कि संस्कृत। श्रवण और मनन में मानसिक अवधानता हिन्दी की अपेक्षा संस्कृत द्वारा अधिक होती है। सांस्कृतिक उपादेयता के अतिरिक्त हिन्दी के विकास के लिए, उसको राज-भाषा के पद पर प्रतिष्ठापित करने के लिए और उसे ज्ञान-विज्ञान की भाषा बनाने के लिए संस्कृत का अध्ययन तथा अध्यापन निरन्तर चलता रहना चाहिए।

संस्कृत का अध्ययन हमें सावधानता से कार्य करना सिखाता है। सूक्ष्म दृष्टि से भाषा के ताने-बाने को समझना संस्कृत में ही सीखा जा सकता है। संस्कृत का व्याकरण कलामय है। जो व्यक्ति इसका ज्ञान प्राप्त कर लेता है वह भाषा के रहस्य का पता पा जाता है। संस्कृत व्याकरण में शब्द-शास्त्र के निर्मल और अनमोल मोती पिरोये हुए मिलते हैं। संस्कृत व्याकरण के निर्माता स्वनामधन्य श्रीपाणिनि मुनि की समता संसार का कौन सा वैयाकरण कर सकता है? पाणिनि-पद्धति अनुपम तथा अद्वितीय है। संस्कृत की वर्णमाला सरल और स्पष्ट है। प्रत्येक ध्वनि के लिए पृथक्-पृथक् चिह्न नियत है। संयुक्त अक्षरों का जिस क्रम से उच्चारण होता है उसी क्रम से वे लिखे भी जाते हैं। संस्कृत में अंग्रेज़ी के समान उच्चारण, लिपि, अक्षर-विन्यास, व्याकरण, वाग्धारा आदि की क्लिष्टता और संदिग्धता नहीं है। इन दोषों से संस्कृत सर्वथा मुक्त है। फिर भी वे लोग, जो दूसरों के मस्तिष्क से सोचते और दूसरों की आँखों से देखते हैं, संस्कृत तथा

संस्कृत व्याकरण पर 'कठिनतम भाषा और कठिनतम व्याकरण' होने का मिथ्या दोषारोपण करते हैं। यही भ्रम संस्कृत की उपेक्षा का कारण है। इन दोनों का आधार है मैकाले महोदय की कूटनीति और अस्वाभाविक शिक्षण-पद्धति का प्रचार। तनिक तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर उक्त भ्रम स्पष्ट प्रतीत हो जायगा। अंग्रेज़ी-भारत में राज-भाषा अंग्रेज़ी रही और प्रायः आज भी है। समस्त शिक्षण संस्थाओं में अंग्रेज़ी को अनिवार्य विषय का पद प्राप्त था और है। संस्कृत के अध्यापकों की अपेक्षा अंग्रेज़ी के अध्यापकों की संख्या कई गुणा अधिक होती थी और आज भी है। समय भी अंग्रेज़ी को पर्याप्त दिया जाता रहा। शिक्षा-विभाग भी इसी के निरीक्षण, परीक्षण और निर्देशन पर विशेष ध्यान देता रहा है। जनता भी राज-प्रलोभन और भय-वश इस सात समुद्रपार की विदेशी-भाषा को अपनाने के लिए तन, मन, धन से प्रयत्न करती रही और अंशतः आज भी यही दशा है। परन्तु इतना होते हुए भी छात्र अंग्रेज़ी में उतनी निपुणता प्राप्त नहीं कर पाते जितनी कि उन्हें प्राप्त करनी चाहिए। क्यों? इसलिए कि अंग्रेज़ी अंग्रेज़ों की है न कि भारतीयों की! यदि भारत-भारती—संस्कृत—के अध्ययन-अध्यापन पर इतना मनोयोग दिया जाय तो थोड़े समय में, थोड़े परिश्रम और व्यय से छात्र संस्कृत के पूर्ण विद्वान् बन सकते हैं। परन्तु आज तक भारत पराधीन था। पराधीनता में जो हुआ सो हुआ। अब भारत स्वतन्त्र है। स्वतन्त्रता की सफलता तथा शोभा अपनी वस्तुओं को पहचानने और उनके मान करने में है। अब तो वह समय है जब 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' इस श्रुति को स्मरण करते हुए उस पर आचरण करना होगा। संस्कृत तथा उसके व्याकरण की कठिनता के भय को मन से निकाल देना चाहिए। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ संकेत व्याकरण तथा भाषा-शिक्षण पर इस पुस्तक में दिये गये हैं जिनसे व्याकरण तथा भाषा का पाठ सरल, सरस और रुचिकर बन सकता है।

संस्कृत भाषा और उसका साहित्य मनुष्य को मानवता के पथ पर अग्रसर करते हैं। 'यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्' के अनमोल रत्न, जो संस्कृत-साहित्य में मिलते हैं, अन्यत्र कहीं नहीं मिलेंगे। यही कारण है कि गीता, पञ्चतन्त्र, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, बौद्ध ग्रन्थों और कालिदास की रचनाओं के अनुवाद संसार की सभ्य भाषाओं में मिलते हैं। संस्कृत-साहित्य का अनुशीलन मनुष्य को सभ्य बनाता है। संस्कृत की भावुकता विचारों को संस्कृत, परिष्कृत तथा दार्शनिक बनाती है। संस्कृत की आध्यात्मिकता की आवश्यकता केवल भारत को ही नहीं अपितु समस्त संसार को है। संस्कृत की सत्ता और महत्ता को परखने तथा पहचानने वाले व्यक्ति ही तो भारत के नेता बने हैं। स्वराज्य का पाठ पढ़ानेवाले लोकमान्य तिलक, भारतीय सभ्यता को प्रतिष्ठापित करने वाले महामना मालवीय, वेदान्त के व्याख्याता और स्वतन्त्र भारत के प्रथम भारतीय गवर्नर जनरल श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, ये सब संस्कृत के अनुरागी और प्रेमी भी हैं। भारत के नये विधान में भी संस्कृत को समुचित स्थान दिया गया है। संक्षेपतः, भारत की आत्मा संस्कृत में है। उसे ढूंढने के लिए संस्कृत की शरण में जाना होगा।

इस युग में ऋषि दयानन्द सरस्वती ने संस्कृत की जितनी और जैसी सेवा की है, उतनी और वैसी कदाचित् ही किसी ने की हो। वेद-सन्देश, समाज-सुधार तथा स्वतन्त्रता की सुरभि का प्रसार करने के कारण ही स्वामी जी का जीवन धन्य हुआ है। विशेषकर पञ्जाब स्वामी जी का चिरकाल तक ऋणी रहेगा। यहाँ भी संस्कृत का स्थान उर्दू और फ़ारसी ने छीनिया था। तक्षशिला के पतन और विध्वंस के उपरान्त पृथ्वीराज चौहान के समय तक संस्कृत का थोड़ा बहुत प्रचार रहा होगा, किन्तु मुस्लिम काल में तो संस्कृत पञ्जाब से उठ ही गई थी। ऐसी स्थिति में संस्कृत को पुनर्जीवित करना ऋषि दयानन्द के अनुयायियों तथा संस्कृत विद्यालयों का ही काम था। डी. ए. वी.

स्कूलों और कालिजों के सञ्चालकों तथा अन्य संस्थाओं ने इस क्षेत्र में स्तुत्य कार्य किया। इस सम्बन्ध में महात्मा हंसराज जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

स्कूल में भाषा-शिक्षण का लक्ष्य शुद्ध उच्चारण और भाषा में प्रवेश मात्र होना चाहिए। इसके लिए मनोवैज्ञानिक आधार पर लिखी हुई उत्तमोत्तम पुस्तकों की तथा भाषाशास्त्र के मर्मज्ञ और भाषाविज्ञान अध्यापकों की आवश्यकता होती है। पाठ्य विषय एवं पाठन-विधि के रहस्य का ज्ञान अध्यापक के लिए परमावश्यक है। वही अध्यापक छात्रों की शारीरिक तथा मानसिक अवस्था की परख कर सकता है जो मनोविज्ञान का विद्वान् होता है। इसलिए मनोविज्ञान से परिचय रखना भी अध्यापक के लिए अनिवार्य है। संस्कृत-अध्यापक स्वयं संस्कृत का पूर्ण विद्वान् होना चाहिए। उसमें साहित्यिक भावना और भावुकता का होना आवश्यक है। इन दोनों के बिना कोई अध्यापक अपने पाठ को रुचिकर, शिक्षोपयोगी तथा वैज्ञानिक नहीं बना सकता। अध्यापक के लिए देश और काल का ज्ञान अनिवार्य है, क्योंकि परिस्थिति-ज्ञान से साहित्यिक आनन्द और भी बढ़ जाता है। भाषा विज्ञान के सिद्धान्तों का परिचय भी आवश्यक है, क्योंकि तुलनात्मक-दृष्टि से भाषाओं का पारस्परिक सम्बन्ध तथा व्युत्पत्तिगत इतिहास छात्रों के सामने रखने से पाठ सरल, सरस तथा सुबोध बन सकता है। साहित्यिक सौन्दर्य के रस का आस्वादन करने के लिए काव्य-कला का अनुशीलन करना चाहिए। इस विधि से सब भांति सुसज्जित तथा पठन-पाठन की सामग्री से समन्वित अध्यापक को अपने कार्य में किसी भी विघ्न-बाधा तथा अड़चन का सामना न करना पड़ेगा। पाठ-विधि स्वयं अपना मार्ग उसे बतायेगी। बहता जल अपने लिए स्वयं मार्ग बना लेता है। उस में केवल सबलता और तीव्रता होनी चाहिए। उपर्युक्त उपायों का संक्षिप्त और सांकेतिक परिचय पाठकों को इस

पुस्तक में यथास्थान मिलेगा। इस पुस्तक के पांच अध्याय हैं। पहिले चार अध्यायों में सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है और अन्तिम अध्याय में कुछ प्रयोगात्मक संकेत दिये गये हैं। शिक्षा-पद्धति शिक्षक के अपने अनुभव और प्रेरणा का विषय है। यहां केवल निर्देशमात्र किया जा सकता है। जब तक उद्देश्य एक रहे, यथावसर और यथामति शिक्षा-विधि में परिवर्तन किया जा सकता है। लक्ष्य है—संस्कृत को वैज्ञानिक ढंग से पढ़ाना। देश-काल का ज्ञान रखते हुए अध्यापक प्राचीन और अर्वाचीन का यथायोग्य मेल करता हुआ उन्नति का भागी होगा। 'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्' का अनुसरण करते हुए अपनी नयी पद्धति और अपने नये सिद्धान्त ढूंढने होंगे तथा उनका प्रयोग करना होगा। कुछ एक सिद्धान्तों और प्रयोगों का परिचय इस पुस्तक में मिलेगा जो अनुभव पर आश्रित है।

संस्कृत का अध्ययन तथा अध्यापन ही मेरा जीवन है। सन् १६२४ से मेरी अध्यापक-वृत्ति चली आ रही है। इस काल में से अब तक २१ वर्ष—मुख्य भाग—गवर्नमेण्ट कालिज, लाहौर में कार्य करते बिताया है। बीच में 'सेंट्रल ट्रेनिंग कालिज लाहौर में संस्कृत अध्यापकों के प्रशिक्षण का कार्य भी किया है। इस के साथ ही गवर्नमेण्ट की आज्ञा से 'सर गङ्गाराम महिला ट्रेनिंग कालेज' में बी. टी. को संस्कृत-शिक्षण-विधि की शिक्षा देने का अवैतनिक कार्य करने का अवसर मिला है। इस पुस्तक में जो कुछ भी मैंने लिखा है वह मेरे अपने अध्ययन, अध्यापन और अनुभव का परिणाम है और इसमें बताए हुए उपायों का मैंने प्रयोग किया है और प्रयोगात्मक रूप में संस्कृत-शिक्षण नामक पुस्तक, जो तीन भागों में विभक्त है, संस्कृत में सरलता से प्रवेश करने के लिए लिखी है। पर—

"आ परितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्"

मैं चाहता हूं कि अध्यापक और इस प्रयत्न को सफल बनायें। इस

पुस्तक को पढ़ें और इस में निर्दिष्ट विधि के अनुसार श्रेणी में पढ़ाएं, जिससे मैं अपने २६ वर्ष के संस्कृताध्यापन कार्य को और अपने आप को सफल तथा कृतकृत्य समझूं। पण्डित-मण्डल और अध्यापक-वर्ग की समालोचना सदा सादर स्वीकृत होगी तथा उसमें प्रोत्साहन पाकर इस शिक्षा-विधि का नवीन एवं परिष्कृत संस्करण पाठकों को मिलेगा। मनुष्य अल्पज्ञ है। उसके हां सुधार और समुन्नति का सदा से स्थान रहा है। इसलिए जो इस पुस्तक में त्रुटियां रहीं हैं वे मेरी अपनी हैं।

इस भूमिका को समाप्त करने से पूर्व मैं आचार्य विश्वबन्धु जी का धन्यवाद करता हूं, जिन्होंने इस पुस्तक को 'श्री विश्वेश्वरानन्द-प्रकाशन' में स्थान दिया है। 'विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थान' का स्थापन आचार्य विश्वबन्धु जी ने वैदिक आश्रम, लाहौर में किया था। पाकिस्तान बनने पर संस्कृत-साहित्य को वहां से बचा लाने में जो स्तुत्य कार्य इन्होंने किया है उसके उपलक्ष्य में मैं इस पुस्तक का प्रथम संस्करण संस्थान की भेंट करता हूं और इस प्रथम संस्करण से जो आर्थिक लाभ होगा वह वैदिक संस्थान को समर्पित है। मेरा उस पर कोई स्वत्व नहीं। इस प्रथम संस्करण के पूर्णाधिकार संस्थान को दिये गये हैं।

मैं श्री पं० मोहनदत्त शास्त्री, प्रभाकर, बी. ए., प्रधान संस्कृता-ध्यापक, सनातनधर्म हाईस्कूल, होशयारपुर का विशेष आभारी हूं, जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर इस पुस्तक को लेखबद्ध किया। यह पुस्तक श्रुतलेख के रूप में विकसित हुई है। मैं सोचता और लिखाता था और पण्डित जी लिखते थे। यह उनका सौजन्य और सौहार्द था। मुझे भी सावधान रहना पड़ता था कि एक विद्वान् लेखक को लिखा रहा हूं। कहीं कोई अशुद्ध, असंगत, अनुपादेय बात न लिखा बैठूं। उनका लेखक होना मुझे सावधान रखता था। माननीय पं० नारायण दत्त जी रैना शास्त्री, प्रभाकर, बी. ए., आनर्स, प्राध्यापक, डी. ए. वी. कालिज, होशयारपुर का मैं विशेष अनुगृहीत हूं, जिन्होंने हस्तलिखित रूप में

यह पुस्तक पढ़कर कई नवीन सुझाव दिये और संशोधन किये। माननीय पं० रूपराम जी शास्त्री प्रधान संस्कृताध्यापक ब. इन्डैस्ट्र हाईस्कूल, जालन्धर भी धन्यवाद के पात्र हैं क्योंकि उन्होंने भी अपने विद्वत्तापूर्ण अनुभव द्वारा सत्परामर्श और प्रेरणा द्वारा इस पुस्तक के लिखने में प्रोत्साहन दिया है। अन्त में, श्री देवदत्त जी शास्त्री, विद्याभास्कर, अध्यक्ष, मुद्रण विभाग, वि. वै. शो. संस्थान को मैं हार्दिक धन्यवाद और बधाई देता हूं, जिन्होंने इस पुस्तक के मुद्रण में पूरा सहयोग दिया।

आशा है कि विद्वान् लोग इस पुस्तक के यथोचित पर्यालोचन से मुझे अनुगृहीत करेंगे।

गवर्नमैण्ट कालिज, होश्यारपुर, विदुषां वशंवदः
कार्तिक पूर्णिमा, २००७ विक्रमी। गौरीशङ्करः

विषय-सूची
सिद्धान्त

पृष्ठ

पहला अध्याय—संस्कृत साहित्य का परिचय— १-१५
वैदिक-साहित्य का महत्त्व—वाल्मीकि और व्यास—संस्कृत-साहित्य में कालिदास और उसके अनुयायी—अन्यविषयक साहित्य।

दूसरा अध्याय—संस्कृत-शिक्षण की प्राचीन और नवीन पद्धतियाँ— १६-३२
आधुनिक काल—मध्ययुग में संस्कृत का अध्ययन—अंग्रेजी राज में संस्कृत—नवीन शिक्षा-पद्धति का ध्येय—नवीन युग में प्राचीन शिक्षा-पद्धति—संस्कृत की वर्तमान शिक्षा-पद्धतियाँ और माध्यम।

तीसरा अध्याय—व्याकरण-शिक्षण— ... ३३-७५
संस्कृत वर्णमाला—हिन्दी आधार—निर्वाचन विधि—सन्धिप्रकरण—क्रियाप्रकरण—काल—क्रिया पद की रूप रचना—नामप्रकरण।

चौथा अध्याय—अनुवाद शिक्षण तथा अन्य विषय— ७६-१०६
संस्कृत भाषा और उस की विशेषता—अनुवाद के लिए आवश्यक गुण—अभ्यास की महत्ता—तथ्यानुवाद—अनूद्य और अनुवाद की भाषा का गम्भीर ज्ञान—अनुवाद और मूल में अन्तर—अनुवाद का महत्त्व—संस्कृत तथा हिन्दी आदि

आधुनिक भाषाएँ—योग्य अध्यापक और उसके कर्तव्य—प्रारम्भिक पाठ्य पुस्तकें और पाठविधि—संस्कृत का उच्चारण—आगमनात्मक और निगमनात्मक विधि—व्याकरण का महत्त्व—अनुवाद की विशेषता—आज का व्याकरण—संस्कृत शिक्षण में अन्य उपादेय सामग्री—इतिहास ज्ञान—भाषा-विज्ञान—कोश और पुस्तकालय—मान-चित्र—चित्र—अध्यापक—पंजाब और संस्कृत अध्यापक—शास्त्री और बी. ए. की तुलना—शास्त्री और शिक्षण-विधि—अन्य विषयों का ज्ञान।

प्रयोग

पाँचवाँ *अध्याय*—विशिष्ट पाठ्य विधि पर संकेत— ११०–२२१

(१) प्रकरण—भ्वादिगण के धातुओं के लट् में रूप।
(२) ,, ,, ,, लङ् में रूप।
(३) ,, दिवादिगण के धातुओं की लोट् में रूप-रचना।
(४) ,, भ्वादिगण के धातुओं के लृट् में रूप।
(५) ,, सन्धि-ज्ञान।
(६) ,, सन्धि के भेद।
(७) ,, स्वरसन्धि।
(८) ,, व्यञ्जनसन्धि।
(९) ,, विसर्गसन्धि।
(१०) ,, णत्व और षत्व का विधान।
(११) ,, कारक।
(१२) ,, कारक।

(१३) प्रकरण—उपपद विभक्ति ।
(१४) ,, उपपद विभक्ति ।
(१५) ,, उपसर्ग ।
(१६) ,, कृदन्त ।
(१७) ,, समास ।
(१८) ,, स्त्रीप्रत्यय ।
(१९) ,, वाच्यपरिवर्तन ।
(२०) ,, आत्मनेपद प्रकरण ।
(२१) ,, संख्यावाचक शब्द ।
(२२) ,, तद्धित प्रत्यय ।
(२३) ,, संस्कृत में एक गद्य अनुच्छेद ।
(२४) ,, संस्कृत सुभाषित ।
(२५) ,, भगवद्गीता के दो श्लोक ।
(२६) ,, नीतिशतक का एक श्लोक ।
(२७) ,, विष्णुसहस्रनाम का एक श्लोक ।
(२८) ,, श्रीराम-नाम-महिमा ।

परिशिष्ट—(क) व्याकरण-शिक्षण सम्बन्धी कुछ अवतरण २५२
(ख) शिक्षा-सम्बन्धी सुभाषित २५४

पहला अध्याय

संस्कृत-साहित्य का परिचय

यह बात निर्विवाद है कि मानव-जाति का प्राचीनतम साहित्य जो उपलब्ध है वह वैदिक साहित्य ही है। इस में वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और सूत्र सम्मिलित हैं। वेदों में ऋग्वेद संहिता सब से प्राचीन समझी जाती है। यजुः, साम और अथर्ववेद संहिताएँ भी कई अंशों में ऋग्वेद की ही समसामयिक हैं, क्योंकि ऋग्वेद के बहुत से मन्त्र यजुर्वेद और सामवेद में मिलते हैं। अथर्ववेद वैदिक काल के ऐहिक वातावरण को वर्णन करने में अधिक सहायक है।

ऋग्वेद में १०१७ सूक्त हैं। वालखिल्य मिलाकर १०२८ सूक्त हो जाते हैं। मन्त्रों के द्रष्टा पृथक् पृथक् ऋषि हैं और इन मन्त्रों के भिन्न-भिन्न छन्द हैं। मन्त्रों को सूक्तों में बाँटा गया है। समस्त ऋग्वेद संहिता के दस भाग किये गये हैं। इन भागों को मण्डल कहते हैं। इसे आठ भागों में भी बाँटा गया है जिन्हें अष्टक कहते हैं। ऋग्वेद में पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाश के देवताओं की स्तुति की गई है। इस में अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, सविता, पूषन्, उषा, सरस्वती आदि प्रमुख देवताओं का बड़ा उदात्त वर्णन है। इस में दार्शनिक तत्त्वों का दिग्दर्शन भी बड़ी मार्मिक रीति से कराया गया है। वैदिक-सभ्यता के स्रोत का उद्गम यदि ढूँढ़ना हो तो ऋग्वेद में ही मिलेगा। अद्वैतवाद

तथा सांख्य दर्शन का प्रथम निरूपण भी इसी में मिलेगा। इसीलिए अर्वाचीन शास्त्रों मे प्रत्येक सिद्धान्त का प्रमाण श्रुति को ही ठहराया गया है। श्रुति का महत्त्व इसी बात मे है कि इस के द्रष्टा हमारे आदि ऋषि थे, जिन की ज्योति से ही इन ऋचाओं का प्रादुर्भाव हुआ।

भारतीय ज्ञान का मूलाधार वेद को ही माना गया है और वेद का अर्थ भी ज्ञान ही है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि यह वैदिक साहित्य आने वाले साहित्य का आधार बना और हर एक सांस्कृतिक विचार-सन्दोह का आदिम स्रोत रहा। यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि वैदिक काल एक साहित्यिक युग का पर्याय-वाची है, जिस में विचारधारा लौकिक साहित्य के युग से कुछ विभिन्न थी। सामाजिक जीवन में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता अधिक थी। राजनीतिक व्यवस्था मे मानवमात्र की प्रिय स्वतन्त्रता को अभी छीना नहीं गया था। धर्म का राज्य पूर्ण यौवन पर था। विचारों के बन्धनों से जनता को अभी जकड़ा नहीं गया था। यज्ञ-याग आदि का प्रचार होते हुए भी उपनिषद् के रहस्य लोगों पर खुल गये थे 'अग्निमीळे पुरोहितम्' के साथ-साथ 'एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' तथा 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' और 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा' 'यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्' और 'नो सदासीत्' और 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चिञ्जगत्यां जगत्' का पाठ श्रुति-परम्परा से हमारा समाज पढ़ चुका था। वैदिक काल की महिमा जितनी गाई जाय उतनी थोड़ी है। इस काल में मन का विकास और हृदय का उच्चतम आदर्श तथा सभ्यता और संस्कृति की पराकाष्ठा सर्वोत्कृष्ट

है। वैदिक युग का सन्देश मानवधर्म को परमोच्चपद पर प्रतिष्ठित कराने योग्य है। यदि ऋग्वेद में देवताओं की स्तुति है तो यजुर्वेद में देवताओं के लिए यज्ञ का विधान है और सामवेद में देवताओं की स्तुति को गाया गया है। अथर्ववेद में सर्व लोक-प्रिय धार्मिक व्यवहारों का वर्णन है। कई सम्प्रदायों में तो वेदत्रयी का ही प्रचार है परन्तु साधारण जनता में 'चत्वारो वेदा:' और 'चतुर्मुखो ब्रह्मा' का ही प्रचार है।

वैदिक विचारों का विश्लेषण करने में ब्राह्मण ग्रन्थ बड़े सहायक हुए हैं। इन में ऋग्वेद का ऐतरेय ब्राह्मण और यजुर्वेद का शतपथ अति प्रसिद्ध हैं। इन्हीं ब्राह्मण ग्रन्थों से सम्बद्ध आरण्यक और उपनिषद् हैं। ये उपनिषद् ग्रन्थ बड़े ही महत्त्व के हैं। इन में वे तत्त्व बताये गये हैं जिन का आभास सात्त्विक प्रतिभा द्वारा ही हो सकता है। इन उपनिषदों के आधार पर उन दार्शनिक सिद्धान्तों की सृष्टि हुई जो कि आज-कल भी भूमण्डल में सर्वोपरि विराजमान हैं, तभी तो इन्हें 'वेदान्त' कहा गया है। प्रधान उपनिषद् दस हैं। वैसे तो इन की संख्या १०८ के लगभग गिनी जाती है। इन में जीवन के तत्त्वों का विशद रूप से वर्णन किया गया है। ये मानव-समाज का परम ध्येय तथा गौरव हैं। प्रधान उपनिषद् ये हैं—

ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड माण्डूक्य-तित्तिरिः ।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा ॥

इस विशाल वैदिक साहित्य में उन शास्त्रों का भी समावेश किया जाता है जिन्हें वेदाङ्ग कहते हैं। ये छः माने गये हैं। यथा—

'शिक्षा कल्पो व्यकरणं निरुक्तं' छन्दस्तथा ज्योतिषम् ।'

वेदार्थ ज्ञान के लिए इन छः शास्त्रों का जानना आवश्यक समझा जाता था। इन के ज्ञान के बिना वेद-वाक्य का ज्ञान पूर्ण नहीं होता था। इन मे विशेषता यह है कि चार अङ्गों का ध्येय भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना है। जैसे—शिक्षा द्वारा शुद्ध मन्त्रोच्चारण की शक्ति-सम्पादन करना; व्याकरण द्वारा भाषा का विश्लेषण करना; निरुक्त द्वारा शब्दों का निर्वचन तथा व्युत्पत्ति; उनका ऐतिहासिक ज्ञान तथा भाषा का वैज्ञानिक परीक्षण, छन्द'शास्त्र द्वारा उन शब्दों की काव्यमय रचना। जब कोई व्यक्ति इतना ज्ञान प्राप्त कर लेता था तभी वेद-ज्ञान-सम्पादन का अधिकारी समझा जाता था। इन के साथ ही कल्प मे यज्ञ-विधान का निरूपण हुआ करता था और ज्यौतिष द्वारा ग्रहों की चाल जाँच कर यज्ञ-याग आदि का समुचित काल और समय निर्धारित किया जाता था। इन छः वेदाङ्गों के अतिरिक्त श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र भी प्रचलित थे और इन्हीं के आधार पर विशाल धर्म-शास्त्र का विकास हुआ।

वैदिकसाहित्य विशाल तथा व्यापक है। यह आर्य-सभ्यता तथा हिन्दूधर्म का सर्वस्व है। हमारी प्राचीन संस्कृति और धर्म को जानने का एक मात्र साधन यही है। यह इतना प्राचीन है कि इस का ज्ञान बिना गुरु-मुख से सुने होना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इसी परम्परागत ज्ञान-पद्धति के कारण इसे श्रुति कहा गया है। और इससे भिन्न जितना भी और धार्मिक या दार्शनिक साहित्य है, उसे स्मृति के नाम से पुकारा गया है।

वैदिक युग के अनन्तर हम भारतीय साहित्य को एक नये

ढाँचे में ढला पाते हैं। वैदिक विचारों में विकास और परिणति आगई है। विपरिणाम स्वाभाविक है। समय बदलता है। रीति-रिवाज नये ढंग के आजाते हैं और मानव-विचार-धारा नये स्रोतों में बहने लग पड़ती है। परन्तु भारतीय साहित्य की विशेषता यही रही है कि परम्परागत वातावरण का प्रभाव अटूट रहा है। अब इस नये युग में भी श्रुति के प्रमाणरूप में रहते हुए भी इतिहास और पुराण नया रंग लाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आत्मा वैदिक होते हुए भी नया चोला बदलती है। यह युग वाल्मीकि और व्यास का है। यदि हम व्यापक दृष्टि से देखें तो मानना पड़ेगा कि वैदिक काल के अनन्तर दो महापुरुष, जिनका प्रभाव चिरन्तन काल से भारतीय विचार-धारा पर रहा है, वे वाल्मीकि और व्यास ही रहे हैं। यह अनवरत प्रभाव अब तक चला आरहा है। बाहर की शक्तियाँ और शासन इसे बदल न सके। वाल्मीकि का रामायण यदि वीर-काव्य है तो महाभारत उस से भी बढ़ कर भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रतीक बन चुका है। व्यास नाम तो हमें इतना प्रिय लगा है कि व्यास ही संहिता-कार, वही इतिहास-पुराण-कर्ता कहे जाते हैं। और व्यास पदवी गुरु की ही मानी गई है।

संस्कृत साहित्य पर वाल्मीकि और व्यास का प्रभाव अक्षुण्ण रहा है। काव्य, नाटक, कथा, चम्पू, आख्यायिका आदि में वाल्मीकि और व्यास ही छिपे हुए दीखते हैं। विद्वद्गण यदि संस्कृत साहित्यिकों को स्थूल दृष्टि से बाँटना चाहें तो वाल्मीकि और व्यास के दो दलों में ही बाँटसकते हैं। वाल्मीकि कहते हैं—

"यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ।
तावद्रामायण-कथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥"

उन की यह प्रतिज्ञा अक्षरशः सत्य निकली। इधर व्यास जी प्रतिज्ञा करते हैं कि मेरे 'भारत' में भारत का सर्वस्व है।

"धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् ॥"

इस में किञ्चिन्मात्र भी अत्युक्ति नहीं। इसलिए संस्कृत-साहित्य-इतिहासकार को चाहिए कि इन दो महापुरुषों के बाद के लिखे संस्कृत-साहित्य को वाल्मीकि-उपजीवि-कवि-शाखा और व्यासोपजीवि-कवि-शाखा, इन दो बृहत्खण्डों में बाँट दें। तभी विशाल संस्कृत-साहित्य का आत्मदर्शन और साक्षात्कार होगा। इन दो ग्रन्थों का जितना प्रभाव हमारे ऊपर अब तक रहा है उतना वेदों के अतिरिक्त और किसी का नहीं। वेद, वाल्मीकि और व्यास यही वृहत्-त्रयी हमारे विचारों पर प्रभाव डालती चली आरही है।

इस बाँट को ब्योरेवार करने के लिए कुछ उदाहरण ध्यान में रख लेने चाहिएँ। महाकाव्यों के लेखक कालिदास, भारवि, भट्टि, माघ और श्रीहर्ष माने जाते हैं। इन महाकवियों ने ऐसा ठान रक्खा प्रतीत होता है कि मानो आदि काव्य और इतिहास की प्रभावशाली कथाओं, गौरवान्वित आख्यानों तथा उदार इतिवृत्तों और वृत्तान्तों को महाकाव्य का रूप ही देना हो। यही बात एक दो नाटकों को छोड़ कर नाटक-साहित्य में भी पाई जाती है। वाल्मीकि और व्यास की आत्मा का रंगमञ्च पर

दर्शन कराना ही दृश्यकाव्य का ध्येय दिखाई देता है। यदि श्रव्य-काव्य में वाल्मीकि और व्यास की आत्मा की पुकार सुन पाते हैं तो नाट्य साहित्य में उन का साक्षात्कार हो जाता है। तभी तो दृश्यकाव्य को परमोत्कृष्ट काव्य कहा है। इसीलिए लौकिक व्यवहार में भी सुनने की अपेक्षा देखने को अधिक महत्त्व दिया जाता है। यदि सुनने से सत्य का ज्ञान होता है तो देखने से उस के दर्शन हो जाते हैं। भास, कालिदास, भवभूति ने जनता को नाट्यद्वारा श्रव्यकाव्य का दर्शन कराया है।

यह कहना अनावश्यक न होगा कि वेद, वाल्मीकि और व्यास के अतिरिक्त यदि किसी और व्यक्तिविशेष की विचार-परम्परा का प्रभाव हमारे साहित्य पर पड़ा है तो वह भगवान् बुद्ध का। इस महात्मा की प्रतिष्ठा न केवल भारत में ही हुई अपि तु एशियाभर में और उससे बाहर भी। यदि कहा जाय कि वेदव्यास और वाल्मीकि भारत की सम्पत्ति हैं, तो भगवान् बुद्ध के विचार एशियाभर की। परन्तु खेद की बात है कि अवैदिक होने के कारण बुद्ध को संकीर्णतावश हमने इतना नहीं अपनाया जितना कि उचित था, फिर भी अश्वघोष के बुद्ध-चरित और सौन्दरनन्द में, श्रीहर्ष के नागानन्द में, आर्य-शूर की जातक-माला में तथा ललितविस्तर, सद्धर्मपुण्डरीक और बौद्ध दार्शनिकों के ग्रन्थों में बुद्ध भगवान् के विचार अपने पूर्ण विकसित रूप में मिलते हैं।

संस्कृत-साहित्य का आधार रामायण, महाभारत और पुराण माने जाते हैं। मुख्य पुराण अठारह हैं। पुराण का लक्षण इस

प्रकार कहा गया है—

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥"

इन में सृष्टि-क्रम, राज-वंश और सब प्रकार की नीति आदि का वर्णन मिलता है। इन में आख्यान, कथा-वार्ता, तीर्थ-माहात्म्य व्रत-उपवास, उत्सव आदि भली भाँति वर्णित हुए मिलते हैं। तात्कालिक सामाजिक अवस्था का संकलन पुराणों के अध्ययन से ही हो सकता है। महाभारत तो आर्य-जाति का बृहत्कोष बन गया है। यह संसार की सब से बड़ी पद्यात्मक वीरगाथा है। इस में १००००० श्लोक हैं। इस के तीन संस्करण हो चुके हैं जय, भारत और महाभारत। यह वह ग्रन्थ है जिस में श्रीमद्भगवद्गीता हार में मध्यमणि के समान विराजमान है। गीता की महिमा सब को विदित है। यह ग्रन्थ भावी युग में मानव-धर्म का सन्देश देता रहेगा। इस के सातसौ श्लोकों में भारतीय-विचारों का सार है। इस के विचार सार्वभौम कहलाने योग्य हैं। श्रीकृष्ण भगवान् का कर्म-योग इस का बीजमन्त्र है। इस का ध्यान कैसा उत्तम है—

पार्थाय प्रतिबोधितां भगवता नारायणेन स्वयम्,
व्यासेन ग्रथितां पुराण-मुनिना मध्ये महाभारतम्।
अद्वैतामृतवर्षिणीं भगवतीमष्टादशाध्यायिनीं
अम्ब त्वामनुसन्दधामि भगवद्गीते भवद्वेषिणीम्॥

वाल्मीकि के अनन्तर संस्कृत में कालिदास का नाम आता है। वाल्मीकि से अनुप्राणित तथा उपजीवित कालिदास

हिन्दु-सभ्यता का प्रतिनिधि कवि हुआ है। किसी संस्कृति या सभ्यता का प्रतिनिधित्व इस बात में होता है कि उस सभ्यता के प्राणमय विचार किसी काव्य में आगये हों। कवि कालिदास का कुमार- सम्भव और रघुवंश हमारी सभ्यता के प्रतिनिधि इसलिए हैं कि उन में वर्णाश्रम-धर्म और राजधर्म का पूर्ण परिचय दृष्टान्त, निदर्शन और उदाहरण सहित ऐतिहासिक तथा आध्यात्मिक तत्त्वों के आधार पर दिया हुआ है। विवाह-मर्यादा को लीजिए—मानवता को पाशविकता से ऊपर उभारने के लिए कालिदास ने प्राचीन पौराणिक कथा-वस्तु के आधार पर अभिज्ञानशाकुन्तल और कुमार-सम्भव की नींव रखी है। स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध संसार में कई पहलुओं से होता है। पाशविक स्तर पर तो इसे एक भौतिक समागम ही कहेंगे। पर इसे आध्यात्मिक रंग देना इस प्रथा को गौरवान्वित करना है। पशु-बल के ऊपर आत्म-बल को ऊँचा प्रमाणित करना है। जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध संस्कार-वश पति-पत्नी के रूप में दो व्यक्तियों को आ खड़ा करता है। सती और शिव इसी बात के साक्षी हैं। सती ही जन्मान्तर में पार्वती के रूप में शम्भु का वरण करती है। शिव के लिए बाहरी सौन्दर्य में कोई आकर्षण नहीं, प्रभु इस पर न रीझते हैं न रूठते हैं, तप और त्याग से उन का हृदय प्रेम-प्रह्व हो जाता है, और आशुतोष भगवान् अर्धनारीश्वर के रूप में प्रकट होते हैं। इस सात्त्विक भावना को लेकर कवि कालिदास कुमार-सम्भव में अपनी लेखनी उठाते हैं और संसार के सामने पति-पत्नी प्रेम का आदर्श उपस्थित करते हैं। उस में पत्नी या पति के परित्याग का प्रश्न ही नहीं उठता। इसी आदर्श

को सामने रखकर, आगे चलकर शकुन्तला में कवि ने नारी-चरित का आदर्श स्थापित किया। उस में यह दिखाने की चेष्टा की है कि "सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरण-प्रवृत्तयः" वाली बात ठीक नहीं। दुष्यन्त की दुर्वासना ही दुर्वासा के शाप के रूप में प्रकट हुई। यह कवि की अनोखी सूझ थी। कर्म-फल भोगे बिना कोई नहीं रहता। दुष्यन्त अपने दूषित विचारों का फल अवश्य भोगेगा। उस के चरित्र को उच्च और उदात्त बनाने के लिए दुर्वासा की कल्पना की गई है। इसी नाटक में कण्व का सदुपदेश आज तक हिन्दु-घरानों में पति-गृह को जाती हुई पुत्रियों को उपदेश का काम कर रहा है। अपने काम में सावधान रहना चाहिए, कर्तव्य-च्युत न होना चाहिए, नहीं तो दुष्परिणाम होगा—इस विचार के आधार पर मेघदूत की सृष्टि हुई। अनवहित यक्ष को एक वर्ष का देश-निकाला दिया गया, क्योंकि वह स्वाधिकार-प्रमाद का दोषी ठहराया गया था। विक्रमोर्वशी में तो मानुषी और अतिमानुषी प्रवृत्तियों का संयोग दिखाया गया। पुरुरवा और उर्वशी उसके प्रतीक मात्र हैं। मनुष्य के कार्यों में दैव कहाँ तक कार्य करता है, इसका ज्ञान कालिदास के ग्रन्थों में भरपूर मिलता है। कहा भी है—

"अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवञ्चैवात्र पञ्चमम्"।

इस बात का स्पष्टीकरण इस महाकवि की कृतियों में पर्याप्त पाया जाता है। रघुवंश एक अनुपम महाकाव्य है। वह तो वाल्मीकि-रामायण का पूरक है। जो बातें आदि कवि से काल-वश छूट गई थीं उन को कालिदास ने

रघुवंश में पूरा कर दिया। भगवान् राम के पूर्वजों तथा उत्तराधिकारियों का विशद तथा काव्यमय वर्णन रघुवंश में मिलता है। दिलीप को नन्दिनी-वरदान, अजविलाप, रघु का दिग्विजय, उस का सर्वस्व-दान, रघुवर-चरित और उसके उत्तराधिकारियों का पतन तथा अग्निवर्ण के भग्नावशिष्ट राज्य तक का वर्णन रघुवंश में मिलता है। क्षत्रियत्व का विशेष उल्लेख इस काव्य में मिलता है। कोई भी सभ्यता या संस्कृति क्षात्रधर्म के बिना ठहर नहीं सकती। तभी तो विश्वामित्र यज्ञ की रक्षा के लिए राम-लक्ष्मण को लिवा लाये थे।

"क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्र क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढ"।

सारांश यह कि कवि कालिदास ने हिन्दु-सभ्यता के उन सब अङ्गों का विवेचन अपनी कृतियों में किया, जिन के आधार पर लोकमर्यादा स्थिर रह सकती है। आगे चल कर भवभूति ने कालिदास से कही गई बातों को सूक्ष्म-विवेचनात्मक दृष्टि से स्पष्ट किया। कालिदास से पहले भास ने भी वाल्मीकि और व्यास के ग्रन्थों को ही अभिनीत करने का बीड़ा उठाया था। उस के उपात्त तेरह नाटकों में रामायण और महाभारत रूपक के वेष में दिखाये गये हैं।

इस विवरण से पता लग गया होगा कि सूक्ष्म दृष्टि से वाल्मीकि, व्यास, भास, कालिदास और भवभूति एक ही दिव्यमणिमाला के मनके हैं, जो माला भारत-भारती के गले में अनादि काल से जगमगाती चली आरही है। इस माला में मध्यमणि का काम कौन कर रहा है इस का विवेचन सहृदय जन ही कर सकते हैं।

यदि कवि कालिदास भारत की वर्ण-व्यवस्था से अनुप्राणित हिन्दु-सभ्यता का प्रतीक है, तो अश्वघोष बौद्ध संस्कृति के प्रतिनिधि हैं। बुद्ध भगवान् ने तो पाली भाषा में उपदेश किये थे जो उनके अनन्तर विनय, धम्म और सुत्त नामक तीन पिटकों में संहित किये गए। जब बौद्धधर्म पर संस्कृत-शास्त्रों का प्रभाव पड़ा तब बौद्ध शास्त्र भी संस्कृतमय होगये। यह बड़ी ही विस्मयकारी घटना हुई। इसी संस्कृत बौद्ध धर्म को महायान अर्थात् उच्चगति वाला मार्ग कहते हैं तथा पाली बौद्धधर्म को हीनयान अर्थात् निकृष्ट मार्ग। पहले में बोधिसत्त्व का सिद्धान्त है तो दूसरे में अर्हत-वाद का। महायान बौद्धधर्म के बड़े-बड़े पण्डित हुए हैं, जिन्हों ने धर्म का प्रचार एशियाभर में किया। इन में अश्वघोष, नागार्जुन, शान्तरक्षित आदि प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं। इन में अश्वघोष सबसे प्रमुख हैं। इन्हें तो बौद्धधर्म का वाल्मीकि कह सकते हैं। इनके लिखे 'बुद्धिचरित' और 'सौन्दरनन्द' महाकाव्य जगद्विख्यात हैं। इन दोनों में बौद्धसिद्धान्त बड़े ही रोचक और ललित ढंग से लिखे गये हैं। इनकी पुस्तकों का अनुवाद चीनी और तिब्बती भाषाओं में मिलता है।

कालिदास द्वारा प्रतिष्ठापित महाकाव्य रचना पद्धति का अनुसरण करते हुए आगे आने वाले महाकवियों ने रामायण और महाभारत का आश्रय लेते हुए कई एक काव्य लिखे, जिनमें से मुख्य ये हैं—भारवि-कृत किरातार्जुनीय, जिसका आधार महाभारत में आया हुआ कथानक है। भट्टिकाव्य, जिसमें भट्टि कवि ने रामायण की कथा को व्याकरण का आश्रय लेकर लिखा है। शिशुपाल-वध या माघ में माघ कवि ने महाभारत के कथानक

का आश्रय लिया है। महाकवि श्रीहर्ष ने नैषध-चरित में नल-दमयन्ती के आख्यान को कविता के रंग में रँगा है। यह परम्परा अब तक जारी है। ऐतिहासिक काव्यों में कल्हण की राजतरङ्गिणी उल्लेखनीय है। गीति काव्यों में मेघदूत का नाम सर्वप्रथम आता है और इस श्रेणी के कई ग्रन्थ मिलते हैं। जिनमें भर्तृहरि के शृङ्गार, नीति, वैराग्य शतक और जयदेव का गीतगोविन्द प्रसिद्ध हैं। सुभाषितसंग्रह भी अनेक हुए। जिनमें वल्लभ देव की सुभाषितावली तथा आधुनिक सुभाषित रत्न-भाण्डागार ध्यान देने योग्य हैं।

नाट्य-साहित्य में भास और कालिदास के नाटकों का वर्णन हो चुका है। विशाखदत्त का राजनीतिक 'मुद्राराक्षस', भट्टनारायण का 'वेणीसंहार', शूद्रक का 'मृच्छकटिक' भवभूति के तीनों नाटक, (महावीर चरित, उत्तर-रामचरित और मालती-माधव) राजशेखर की 'कर्पूरमञ्जरी' और महाराज हर्षवर्धन की 'रत्नावली' 'नागानन्द' तथा 'प्रियदर्शिका' के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

गद्य साहित्य में भी संस्कृत पीछे नहीं रही। इस में दण्डी का 'दशकुमार चरित', बाणभट्ट की 'कादम्बरी' और सुबन्धु की 'वासवदत्ता' जगद्विख्यात हैं। कथा साहित्य में 'कथा सरित्सागर', क्षेमेन्द्र की 'बृहत्कथामञ्जरी' और जगद्विख्यात 'पञ्चतन्त्र' तथा बालोपयोगी 'हितोपदेश' मान्य ग्रन्थ हैं। पञ्चतन्त्र तो सार्वभौम ग्रन्थ है। पञ्चतन्त्र और भगवद्गीता संस्कृत के वे दो ग्रन्थ हैं, जिन का अनुवाद संसार की सब प्रमुख भाषाओं में हो चुका है।

काव्य-विवेचन के ग्रन्थों की भी संस्कृत में भरमार है। इन में अग्निपुराण, भरतनाट्यशास्त्र, काव्यादर्श, ध्वन्यालोक, काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण प्रसिद्ध हैं ।

मानव-जगत् में कोई ही बुद्धिगम्य विषय होगा जो कि संस्कृत-साहित्य में न मिलता हो । धर्मशास्त्र में मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति; दर्शनशास्त्रों में छहों दर्शन; नीतिशास्त्र मे अनेक ग्रन्थ, अर्थशास्त्र में सर्वोत्कृष्ट कौटिल्य-अर्थशास्त्र; व्याकरण-शास्त्र मे यास्क, पाणिनि, पतञ्जलि इत्यादि व्याकरणाचार्य लब्धप्रतिष्ठ हैं । सर्वतोमुखी-प्रतिभाशाली शङ्कराचार्य का नाम विशेष मान-योग्य है, जिन्होंने केवल तीस-बत्तीस वर्ष की आयु-काल में वह काम कर दिखाया जो कि एक मनुष्य कई जन्म पाकर भी सम्पन्न नहीं कर सकता। कोश-साहित्य मे अमरसिंह 'अमरकोश' के रचयिता का नाम अमर कीर्ति का पात्र है। वैज्ञानिक साहित्य में भी विशेषकर ज्योतिष और वैद्यक में संस्कृत किसी से पीछे नहीं रही। चरक और सुश्रुत तथा भास्कराचार्य का सूर्यसिद्धान्त मान्य ग्रन्थ हैं।

ऊपर संक्षेप से संस्कृत-साहित्य का संक्षिप्त इतिवृत्त दिया गया है । संस्कृत का भूतकाल बड़ा गौरवमय रहा है और इस का भविष्य उज्ज्वल है। भारत अब स्वतन्त्र हो चला है। संस्कृत स्वतन्त्र भारत की संस्कृति की भाषा थी । उस समय के साहित्य में वे रचनाएँ हुई जिनकी समता अन्य भाषाओं में विरले ही मिलेगी । वेद, वाल्मीकि, व्यास, व्याकरण और वेदान्त भारत की आत्मा हैं। यह वह सम्पत्ति है जिसे भारत संसार भर की संस्कृति को दे सकता है। अतः

भारत के बालकों की सब शिक्षा अधूरी रहेगी, जबतक यहां के पाठ्य-क्रम में इन का अध्ययन अनिवार्य न ठहराया जायगा। भारत की आध्यात्मिकता जाने बिना भारतीय अपने आपको खोखला पायेगा। शिक्षा का आधार जब तक परम्परागत जातीय संस्कार न बनाये जायँगे तब तक जाति की उन्नति और विकास असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। क्योंकि 'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत.' । इसलिए सब प्रकार की ऐहिक और आमुष्मिक जिज्ञासा में हमे अपने ऋषि-मुनियों का ही आश्रय लेना पड़ेगा। इसी में हमारी शिक्षा-पद्धति का श्रेय और कल्याण है, कहा है—तस्माच्छास्त्र प्रमाण ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। संस्कृत के अध्यापक को चाहिए कि शिक्षा-विधि को रोचक और वैज्ञानिक बनाए। क्योंकि किसी भी पाठ्य-विषय के अध्ययनाध्यापन की सफलता अध्यापक की योग्यता पर निर्भर है। साहित्य वही है जो हितसहित हो और सदा साथ दे। इन बीती शताब्दियों में जिन लेखकों और ग्रन्थों को भारत अब तक भुला नहीं सका, उन में कुछ महत्ता है। उन्हें हमें अपने शिक्षा-क्रम में अपनाना होगा, जिस से हम ऋषि-ऋण और देव-ऋण तथा पितृ-ऋण से मुक्त हो सकें और 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के सच्चे उपासक बन सकें। विद्यार्थियों को संस्कृत पढ़ाते समय इस के इतिहास की ओर अवश्य ध्यान दिलाना चाहिए जिस से वे आत्म-गौरव, जातीय तथा देश-सम्मान का अनुभव कर सकें।

दूसरा अध्याय

संस्कृत-शिक्षण की प्राचीन और नवीन पद्धतियां

आधुनिक भारत—अपना गौरव सम्भालने को चला है। इस वृद्ध-भारत ने कई क्रान्तियाँ देखीं—सामाजिक, राजनीतिक, व्यावहारिक, साहित्यिक इत्यादि। हमारा सम्बन्ध भाषा और साहित्य से ही है। इसलिये हम प्रस्तुत विषय को ही लेते हैं। प्राचीन-से-प्राचीन काल से लेकर संस्कृत भाषा ही भारत की साहित्यिक, धार्मिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी भाषा रही है। अर्थात् आदिम काल से लेकर श्रीहर्षवर्धन (सातवीं शताब्दी ई०) तक यह भाषा राजकीय रही। इस के अनन्तर भारत छोटे-छोटे रजवाड़ों में बँट गया। इसी काल में इस्लाम का अभ्युदय हुआ और उसका भारतवर्ष में प्रवेश हुआ। इस्लाम का साम्राज्य और वैभव बड़ी जल्दी बढ़ा और भारत में केन्द्रीय शासन के सबल न होने से इस्लामी रियासतों का भारत में स्थापित होना आरम्भ हो गया। इस्लाम के इस प्रारम्भिक युग में संस्कृत-साहित्य का सिलसिला कुछ-कुछ जारी रहा। वराहमिहिर, भवभूति और श्री शंकराचार्य इस मुस्लिम क्रान्ति के आरम्भिक काल में हुए। अन्तिम हिन्दू राजाओं में भोज का नाम विद्या-प्रचार के लिए अब तक प्रसिद्ध है। इस काल में संस्कृत और प्राकृत में पढ़ना-लिखना चलता ही रहा और इसी युग में हमारी

आजकल की देशी भाषाओं का प्राचीन पूर्वरूप भी प्रारम्भ हो गया था और इस में साहित्य-रचना भी होने लग पड़ी थी।

मध्ययुग में संस्कृत का अध्ययन—पृथ्वीराज चौहान के पराजय के उपरान्त भारतीय मौलिक-विचार-प्रवृत्ति लुप्त-सी होने लगी। साहित्य में वह मौलिकता, वह सजीवता और वह स्वतन्त्र विचारशीलता नहीं पाई जाती जो कि पहले की रचनाओं में होती थी। यह युग टीका-टिप्पणियों का है। नई वस्तु की कल्पना करने की शक्ति भारतीय मस्तिष्क में न रही। भारतीय विचार आगे बढ़ना छोड़ कर जहाँ तक पहुँच चुका था उतने में ही चक्कर काटने लगा। ऐसी रुझान लोगों में क्यों हुई? इस का मुख्य कारण अपनी राजकीय सत्ता का ह्रास ही था। क्षात्र-बल क्षीण हो चुका था। लोगों में भीरुता छा गई थी। संकीर्णता ने जोर पकड़ लिया था। जीवन का प्रवाह बन्द हो चुका था। परतन्त्रता की बेड़ियाँ कसी जाने लगी थीं। एक नये युग का जन्म होने को था। और यह युग मुगल-साम्राज्य का युग था। इस युग में हिन्दुसमाज में संकीर्णता अधिक बढ़ गई। सामाजिक ऊँच-नीच और जात-पाँत के बन्धन कड़े होने लगे थे। जब स्वराज्य-बल न रहा तब हिन्दु-जाति ने संकुचित रहने में ही अपना बचाव समझा। खान पान, स्पर्शास्पर्श के कट्टर विचारों ने ही इस मुगल-पराधीनता के युग में भारतीय सभ्यता को सर्वनाश से बचाया। राजकीय भाषा फारसी हो चुकी थी। देशी भाषाओं में राज-दरबारी कवि वाह-वाह की प्राप्ति के लिए नायक-नायिका-भेद, नख-शिख-वर्णन तथा ऋतु-वर्णन किया करते थे। राज-दरबारों के विलासमय

वातावरण में और हो भी क्या सकता था ! जो कुछ दिल्ली और आगरा के मुगल दरबारों में होता था वही रजवाड़ों और नवाबों के महलों में अनुकरण किया जाता था। परन्तु इतना होते हुए भी भारतीय आत्मा अभी तक इतनी नहीं कुचली जा चुकी थी। क्योंकि यह विदेशी मुगल-साम्राज्य धर्मान्ध तो अवश्य था, पर इस विशाल भारत में अपनी कट्टरता को इतना पूरा नहीं निभा सका जितना कि मिश्र, फारस और अफगानिस्तान आदि देशों में। जब भारतीय आत्मा चकनाचूर हो गई और राणा संग्रामसिंह की तलवार भी इसे बचाने में समर्थ न हुई तब इस ने भगवद्-आराधना की शरण ली। हमारी देशी भाषाएँ जगमगा उठीं। भारतीय आत्मा का सन्देश हमारे भक्तों की वाणी में भरा पड़ा है। तुलसी का रामचरित-मानस, सूर का सागर, मीरा की पदावली, विद्यापति की पदावली, ज्ञानेश्वर की गीता और नानक का आदि ग्रन्थ इस बात का प्रमाण हैं कि भारतीय आत्मा अभी मरी नहीं थी। आत्मा मरती भी तो नहीं। कर्म-वश मोह-ग्रस्त अवश्य हो जाती है। इन ऊपर लिखे महात्माओं को यह अमर संदेश कहां से मिला? मुगल-साम्राज्य ने राजसत्ता तो छीन ली, परन्तु लोगों की धार्मिक आस्था में जरा भी अन्तर न पड़ा। सभ्यता और सँस्कृति का स्रोत राजदरबारों से हट कर साधारण जनता में उमड़ पड़ा था। वेद-वेदान्त की कथा-वार्ता, रामायण-महाभारत का पारायण, पुराण-इतिहास की चर्चा, व्रत-उपवास, चार-धाम की तीर्थयात्रा, धर्म-कर्म, यम-नियम, स्नान-संस्कार सब उसी तरह चले आ रहे थे, जैसे कि भारत में इस्लाम के उदय से पहले थे। इस संस्कृति के अनवरत प्रवाह का मूलाधार हमारी शिक्षा-पद्धति

थी। गाँव-गाँव में पण्डित, उपाध्याय, आचार्य पाठशालाएँ लगाते, अध्यापन का कार्य करते, कर्मकाण्ड से जीवन-वृत्ति सम्पादन करते, रामायण, महाभारत, पुराण और इतिहास की चर्चा करते, अपनी सभ्यता और संस्कृति का स्रोत संचरण-शील रखते चले आरहे थे। इस सजीव सामाजिक संस्कृति की ही उपज हमें महाराणा प्रताप और वीर शिवाजी मुगल काल की पराधीनता के युग में मिलेंगे।

अंग्रेजी राज में संस्कृत—समय ने पलटा खाया। भारत मुगलों के भाड़ से निकल कर यूरोपियनों के चूल्हे में जा गिरा। इस्लाम धर्म-प्रचार के लिए आया था और यूरोपीय जातियाँ व्यापार विस्तार के लिए। परन्तु अपनी फूट के कारण भारत यूरोपियों के चंगुल में फँस गया। मुगल-साम्राज्य के खण्डहरों को स्वायत्त करने के लिए जाट और सिक्ख तथा मरहट्टे एकता के सूत्र में न बँध पाये। यूरोपियों के पौबारह हुए। डच और फ्रांसीसियों से अंग्रेज अधिक नीति-कुशल निकले। उन्होंने भेद-नीति, कूट-नीति सब प्रकार की राजनीतियों को व्यवहार में लाकर भारत को पकड़ लिया और इस प्रकार ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुई। अंग्रेज जाति बड़ी बुद्धिमान् है। राज करना इन्हें ही आता है। बात के तत्त्व को पहचानती है। जो बात इस्लाम न कर सका वह इन्हों ने भारत में कर दिखाई। शिक्षा-पद्धति को अपने हाथ में लेकर भारत की सभ्यता और संस्कृति के मुख्य स्रोत को बन्द कर दिया और भारत के जीवन को यूरोपीय ढाँचे में ढालना आरम्भ कर दिया। संस्कृति का आधार विचार हुआ करते हैं और विचारों का आधार भाषा। मुगल-काल की पतित अवस्था तक भी संस्कृत ही हिन्दुओं की

शिक्षा-दीक्षा की भाषा रही। इस्लामी सल्तनतें इस पदवी से इसे च्युत न कर सकीं। परन्तु काल-चक्र बड़ा प्रबल है। अंग्रेजों ने बड़ी बुद्धिमत्ता की नीति से संस्कृत को नीचा दिखाया। मीठी छुरी से काम लिया। साँप भी मर गया और लाठी भी न टूटी। पहला कार्य जो ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने शिक्षा-विस्तार के बहाने किया, वह यह उद्घोषित करना था कि 'भारत अशिक्षित है'। संस्कृत-फारसी पढ़ा मूर्ख समझा जाने लगा। अंग्रेजी राज-भाषा तथा शिक्षा की भाषा बनाई गई। संस्कृत को पद-दलित करने के लिए अमोघास्त्र जो इन्होंने छोड़ा, वह डंके की चोट से यह विचार फैलाना था कि संस्कृत मृत-भाषा है। बस, अब क्या था भारत मर गया। क्योंकि इसकी साँस्कृतिक भाषा मुर्दा ठहराई गई। ब्रिटिश साम्राज्य की नींव गहरी खोदी गई। भाषा, भाव और भूषा विदेशी रंग में रँगे जाने लगे। संस्कृत-शिक्षण का महत्त्व पीछे डाल दिया गया। संस्कृत के दर्शन, संस्कृत के इतिहास-पुराण सब विस्मृति के गड्ढे में पड़ गए। अंग्रेजी का दौर-दौरा चला। हाँ, इतना अवश्य था कि ब्रिटिश शासक संस्कृत पर उपकार करने के लिए तैयार थे। प्रचार किया गया कि संस्कृत मृत हो चुकी इसका पुनरुज्जीवन किया जाय। इस शासक-वर्ग के लिए संस्कृत का पढ़ना-पढ़ाना केवल अपने शासन को दृढ करने का साधन था। भारत की संस्कृति को नीचा दिखाना और अपनी संस्कृति को श्रेष्ठतम बताना इनका ध्येय था। राजकीय सत्ता को तो वे अधीन कर ही चुके थे, अब साहित्य-वैभव पर हाथ फेरने को उतारू हो रहे थे। भारत का

गौरव उन स्वाभिमानी संस्कृतज्ञों पर आश्रित था, जो प्राचीन काल से इसकी संस्कृति के संरक्षक चले आ रहे थे। इस्लाम की क्रान्ति के समय भी भारतीय संस्कृति को बचाने का श्रेय इन्हीं लोगों को था, जिन्होंने अपनी जान पर खेल कर भी अपनी संस्कृति, अपनी भाषा और अपने साहित्य को बचाये रखा। ब्रिटिश अधिकारी वर्ग इन का स्वाभिमान कब तक सह सकता था। यूनिवर्सिटियों की स्थापना हुई। प्रत्येक विषय के आचार्य नियत हुए। शिक्षा के केन्द्र बनारस, बम्बई, इलाहाबाद, लाहौर, कलकत्ता, मद्रास बनाये गये। इन में अंग्रेजी का आधिपत्य तो था ही पर संस्कृत का अधिकार भी विदेशियों को दिया गया। प्रो० ब्यूलर, प्रो० पैटर्सन बम्बई में, प्रो० वीनस बनारस में, प्रो० वूलनर लाहौर में भेजे गये। इस योजना का एक मात्र ध्येय यही था कि भारत की अपनी भाषा पर भी विदेशियों का ही अधिकार जमाया जाय और साधारण जनता पर यह धाक जमायी जाय कि भारत बिना यूरोप की सहायता के कुछ कर ही नहीं सकता। यहाँ तक कि संस्कृत की शिक्षा-दीक्षा के लिए विदेशी प्रोफेसरों का ही आश्रय लेना अनिवार्य समझा जाने लगा। अवनति की हद हो चुकी थी। भला अंग्रेज प्रोफेसर से अंग्रेजी पढ़ना तो युक्ति-संगत प्रतीत होता है, पर संस्कृत का मुख्याध्यापक भी अंग्रेज हो, इस में क्या रहस्य? बस, काशी की विद्वत्ता समाप्त हो चुकी। आत्म-गौरव चल बसा। भला यह बात गुलाम जाति के अतिरिक्त और कौन सह सकता था? जख्म पर नमक छिड़कने का काम एक दूसरे ही आयोजन ने किया। वह संस्कृत को अन्ध से अन्ध कूप में फेंकने वाला था। और वह था संस्कृत का इँग्लिश-माध्यम

द्वारा पढ़ाया जाना। इससे अधिक अनर्थ क्या हो सकता था? यह तो एक धोखाधड़ी थी। भाषा भारतीय, भाव भारतीय, पढ़ने वाले भारतीय और पढ़ाने वाले भी प्रायः भारतीय, पर संस्कृत पढ़ाने का माध्यम इँगलिश! यह अनर्थ-परम्परा असहनीय थी। संस्कृतज्ञ बेचारे—निरी संस्कृत जानने वाले करते भी क्या? उनके वश की बात न थी। क्योंकि उनके भाई-बन्धु विदेशी स्वार्थियों के प्रभाव में पड़े हुए इस भेद को छिपाये रखते थे। संस्कृत का एक दिग्गज विद्वान्, सर्व-शास्त्र-पारंगत, वेद-वेदाङ्ग-निष्णात पचीस-तीस रुपये पर भी भारी मालूम होता था। परन्तु एक अधकचा एम्. ए. जो कि संस्कृत के श्लोक का शुद्ध उच्चारण भी न कर सके संस्कृत-अध्यापक की पदवी पर नियत किया जाय—यह अन्याय की पराकाष्ठा थी।

संस्कृत मृत भाषा ठहराई गई। उस को पुनर्जीवित करने का सेहरा अंग्रेजों के गले में डाला गया। संस्कृत के उच्च कोटि के विद्वान् अंग्रेज ठहराये गये। संस्कृत पढ़ाने का माध्यम अंग्रेजी को बनाया गया। ये वे बातें थीं जो इस्लामी सल्तनत न कर पायी थी। देव-मन्दिर गिराना, यज्ञोपवीत उतारना, बरबस इस्लाम-मतानुयायी बनाना, पुस्तकालय जलाना, अन्य मतावलम्बियों को तलवार के घाट उतारना भारत के लिये इतना हानि-कारक नहीं हुआ था जितना कि यूरोपियों का संस्कृत और संस्कृतज्ञों के विरुद्ध यह दुरूह षड्यन्त्र। पर शोक तो इस बात का है कि इस षड्यन्त्र के पोषक हमारे भारत के ही लोग थे। अंग्रेजों ने तो कहना ही था कि लेटिन और ग्रीक हमारे लिए मृत भाषा हैं। पर भारतीय विद्वान् केवल अपने शासक वर्ग का

अन्ध अनुकरण करते हुए कहने लगे कि भारत के लिए संस्कृत भी मृत भाषा है। पर इन महानुभावों को कुछ सोचना चाहिए था कि अंग्रेजी की वंश-परम्परा ग्रीक और लेटिन की परम्परा से बहुत दूर की हो चुकी है। और इन भाषाओं का सम्बन्ध अँग्रेजी संस्कृति, अंग्रेजी विचार-धारा से इतना नहीं रहा जितना कि संस्कृत का आधुनिक भारतीय भाषाओं और भारतीय आचार-विचार से है। जब तक हमारी देशी भाषाएँ जीवित हैं संस्कृत मृत नहीं कही जा सकती। संस्कृत का ध्वनि-समूह, इस का वर्ण-क्रम, इस का शब्द-भण्डार, इसके भाव-विचार हिन्दी में ज्यों के त्यों पाये जाते हैं। अंग्रेजी बोलने वाले लेटिन और ग्रीक को मृत भले ही कहें पर हिन्दीभाषी, या उत्तरी भारत की किसी भी भाषा के बोलने वाले संस्कृत को मृत नहीं कह सकते। क्योंकि संस्कृत आधुनिक भारतीय भाषाओं में इस प्रकार पिरोयी हुई है जैसे मणियों में सूत्र।

इस प्रकार मोह मे पड़ी हुई भारतीय जनता स्वराज्य-सत्ता के नाश होने पर परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ी हुई अपने -आप को पूर्णरूप से खो बैठी थी। शिक्षण-पद्धति इस उद्देश्य से चलाई गई कि जिसके द्वारा भारतीय अपने गौरव को भूल जायें। यहाँ तक कि भारत की निजी सम्पत्ति व्याकरण-शास्त्र और दर्शन शास्त्र मिट्टी में मिला दिये गये। संसार में कोई ऐसी जाति नहीं है जिसने 'कपिल' और 'कणाद' जैसे दार्शनिक, 'पाणिनि' और 'पतञ्जलि' जैसे वैयाकरण उत्पन्न किये हों। परन्तु अंग्रेजों द्वारा चलाई गई शिक्षण-पद्धति ने उनका नाम ही ओझल कर दिया। ऐसे तो भारतीय दर्शन और भारतीय

भाषा-मीमांसकों की प्रशंसा में यूरोपीय विद्वानों ने पुल बाँध दिये पर उनका अध्ययनाध्यापन, उनका विधि-विधान, उनकी शिक्षा-दीक्षा का कहीं नाम नहीं। बड़ा ही खेद होता है कि संस्कृत-शिक्षक-वर्ग ने संस्कृत-व्याकरण-शिक्षण-पद्धति को उलट दिया। पाणिनि मुनि की पद्धति, जिसकी उपादेयता और जिसका महत्त्व सदियों मे प्रमाणित हो चुका था, का सर्वनाश 'मैक्स-मूलर' 'कीलहौर्न' 'मोनियर विलियम' और 'मैक्डौनल्ड' द्वारा चलाई गई प्रणाली ने कर दिया। यदि बात यहाँ तक ही रहती तो ठीक थी। क्योंकि यूरोपियों ने अपने देशवासियों को संस्कृत-व्याकरण पढ़ाने की ऐसी पद्धति चलाई तो इस में कोई दोष नहीं है। परन्तु पाणिनि-व्याकरण के होते 'गोपालकृष्ण भाण्डारकर' जैसे विद्वान् विदेशियों का अनुकरण करें यह बड़े अनर्थ की बात है। क्योंकि 'मैक्समूलर' ऐसा व्याकरण लिखता है तो भाण्डारकर को भी वैसा ही लिखना चाहिए यह न्याय-संगत प्रतीत नहीं होता। यह अन्धपरम्परा और दासतावृत्ति की चरम सीमा है। चाहिए तो यह था कि पाणिनीय पद्धति का प्रचार होता, उसे सरल और सुबोध किया जाता, उस का नवीन संस्करण होता, न कि उस का नाम तक मिटाने की कोशिश की जाती। यह सारा यत्न इस लिए था मानो कि पढ़ने वाले जानें कि संस्कृत-व्याकरण-वेत्ता और लेखक अभिनव विद्वान् विदेशी मैक्समूलर आदि और देशी भाण्डारकर आदि ही हुए हैं। ऐसी पद्धति का चलाना ही स्कूलों, कालिजों और यूनिवर्सिटियों में संस्कृत के ह्रास का कारण था। यदि किसी काम को ठीक विधि अनुसार किया जाय तभी वह फलीभूत होता है, नहीं तो, उसका फल विपरीत हुआ करता है।

हमने ऊपर के विवरण मे इस बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि संस्कृत भारत की शिक्षा-दीक्षा की भाषा ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना तक रही। १८३५ में ही इसको इस पदवी से च्युत किया गया और संस्कृत-शिक्षा का ह्रास उस दिन से अब तक बढ़ता चला गया। इन सवा सौ वर्षों में अंग्रेजी का खूब प्रचार हुआ। नवीन शिक्षा-पद्धति में संस्कृत को खूब नीचा दिखाने का प्रयत्न किया गया, किन्तु संस्कृत की ज्वाला अब भी बूढ़े भारत के हृदय में टिमटिमा रही है। इसे जगमगाना हमारा जातीय कर्तव्य है। यह ऋषि-मुनियों का ऋण हमारे ऊपर है और इससे हम इसी प्रकार उऋण हो सकते हैं कि हम उनके विचारों का स्वाध्याय करें, उन का मनन करें और आधुनिक परिस्थितियों की उलझनों को सुलझाने में उनसे लाभ उठाएँ। यह तभी होगा जब संस्कृत की शिक्षा ठीक ढंग से होगी, उसका व्याकरण ठीक विधि से पढ़ाया जाएगा। जिससे अपने पूर्वपुरुषों के विचार ठीक रीति से समझ में आ सकें।

नवीन शिक्षा-पद्धति का ध्येय—ऐसी परिस्थिति हमें ब्रिटिश गवर्नमेण्ट द्वारा भारत में चलाई गई नवीन शिक्षा-पद्धति में मिलती है। जिसका ध्येय मैकाले महोदय के अपने शब्दों में यह था कि इस नवीन शिक्षा-कला की उपज ऐसे भारतीय नवयुवक होंगे जो बाह्य दृष्टि से तो हिन्दुस्तानी दिखाई देंगे परन्तु उनका मन, मस्तिष्क और हृदय अंग्रेजों से भी अधिक अंग्रेजियत से भरपूर होगा। इस पद्धति द्वारा संस्कृत पढ़ो, चाहे अंग्रेजी या और कोई वैज्ञानिक विषय, परिणाम एक सा ही है। उपाधि-धारी भले ही हो जायँ परन्तु भारतीयता को

ये नवयुवक सर्वथा भूल बैठते हैं। दूसरे विषयों की अभिज्ञता प्राप्त करते हुए भी भारतीय लोग अपनी संस्कृति के ज्ञान से अनभिज्ञ रहते हैं। ऐसी शिक्षा-पद्धति उस स्तूप या पिरैमिड के समान है जिसका शिखर नीचे को हो और विस्तृत आधार-भूत वास्तु ऊपर को हो। बस, यही दशा इस शिक्षा-पद्धति की है, इस का उद्देश्य यही था कि भारतीय भारत को बजाय जानने के किसी प्रकार भूल जायें।

भारतीय यूनिवर्सिटियों में संस्कृत पढ़ाई जाने लगी पर, उसका माध्यम था अंग्रेजी। संस्कृत थी भी एक वैकल्पिक विषय, प्रधान थी अंग्रेजी। स्कूलों में, जो कि यूनिवर्सिटियों के आधार हैं, अंग्रेजी प्रति सप्ताह बच्चों को चौथी श्रेणी से, पन्द्रह से अठारह पीरियड तक पढ़ाई जाती है, जब कि संस्कृत सातवीं से प्रति सप्ताह छः पीरियड। अंग्रेजी का गवर्नमेंण्ट द्वारा यह प्रचार सारे संसार में अपना-सा एकमात्र ही अति अनोखा उदाहरण है। और जातीयता की जड़ काटना जितना इस साधन से सुकर हुआ है उतना तलवार की धार से भी मुगल नहीं कर पाये थे। संस्कृत में एम्. ए. होने लगे, परन्तु संस्कृत के ज्ञान से हीन, व्युत्पत्ति का उनमें नाम नहीं, व्याकरण से उनका काम नहीं, शास्त्रों से उनका परिचय नहीं। यहाँ तक कि कई संस्कृत-श्लोकों का शुद्ध उच्चारण भी नहीं कर सकते, अर्थों का लगाना तो दूर रहा। अंग्रेज चाहते भी तो यही थे कि ऐसी शिक्षा-प्रणाली का प्रचार हो, जिससे भारत मे संस्कृत विद्या का ह्रास हो और उससे जानकारी रखने वाले ऐसे पैदा किये जायँ जो कि कहने में तो संस्कृतज्ञ हों पर वास्तव में हों संस्कृत से अनभिज्ञ और अंग्रेजी से अभिज्ञ। ऐसी मर्यादा

को स्थापित करने का उद्देश्य केवल ब्रिटिश-साम्राज्य की जड़ भारत में दृढ करने का था। परन्तु भारत की स्वता और अपनी सत्ता, निजी सत्त्व तथा सर्वस्व अपनी संस्कृति और सभ्यता की सम्पत्ति में है। और इन सबका आधार संस्कृत है। संस्कृत भाषा को गौण बनाना साम्राज्यवादियों का सिद्धान्त रहा है। अंग्रेजी का प्रचार इसलिए किया गया था कि इसके द्वारा भारत को विज्ञानोपार्जन में सहायता मिलेगी। परन्तु यह युक्ति न्याय-संगत नहीं। क्या जिन स्वतन्त्र या परतन्त्र देशों में अंग्रेजी नहीं थी वहाँ विज्ञान का प्रचार नहीं हुआ? इसमें एक जापान का उदाहरण ही पर्याप्त है।

नवीन युग में प्राचीन शिक्षा-पद्धति—ब्रिटिश शासन के इस नवीन युग में यूनिवर्सिटियों के अतिरिक्त संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन प्राचीन पद्धति के द्वारा भी होता रहा। छोटी-छोटी बस्तियों, गांवों, कस्बों, नगरों और शहरों में पण्डित, उपाध्याय, आचार्य अपनी प्राचीन परम्परा को बनाये हुए थे। उनकी निःशुल्क संस्थाओं में गाँवों, नगरों और जनपदों से बच्चे पढ़ने के लिए आते थे। कहीं-कहीं गुरुकुल भी चलते थे जहाँ कुलपति पर्याप्त संख्या में छात्रों को संस्कृत में निःशुल्क शिक्षा-दीक्षा देते थे। आचार्य लोग सर्व शास्त्र-निष्णात, अगाध पाण्डित्य से परिपूर्ण, दर्शन शास्त्रों की दिव्य-दृष्टि से विभूषित संस्कृत विद्या का गौरव रखे चले आरहे थे। समस्त देश में चटसार और पाठशाला, टोल, मठ और व्यासगद्दियां स्थान-स्थान पर विद्यमान थीं। काशी शिक्षा का केन्द्र था। जब तक किसी की विद्वत्ता पर काशी के पण्डितों की मोहर न लग जाती थी तब तक ऐसे विद्वान् की विद्वत्ता प्रमाणित नहीं समझी जाती थी।

जहाँ यूनिवर्सिटियों में संस्कृत को अँग्रेजी से कम दर्जा दिया जा रहा था वहाँ इन शिक्षा-संस्थाओं में संस्कृत का महत्त्व वैसा ही बना हुआ था। पर बकरे की माँ कब तक खैर मनायेगी? शासक-वर्ग ने आयोजना ही ऐसी बनायी कि आर्थिक दृष्टि से संस्कृतज्ञों को फिर नीचा दिखाया गया। प्राचीन पद्धति से पढ़ा हुआ प्रकाण्ड पण्डित इस शासकवर्ग द्वारा यदि दो सौ रुपये मासिक वेतन पर आँका गया तो एक अर्धदग्ध, अधकचरा, नौसिखिया यूरोपियन यूनिवर्सिटी की डिग्री संस्कृत में रखता हुआ बारह सौ रुपये पर रखा जाता। इस आर्थिक वैषम्य ने संस्कृत को और धक्का पहुँचाया। भारत के उच्च कोटि की योग्यता रखने वाले नवयुवक इम्पीरियल सर्विसिज् में, मेडिकल लाइन में और बैरिस्टरी में जाते। बस जिन के पास इतनी सम्पत्ति न होती वे अध्यापक-वृत्ति को स्वीकृत करते। ब्रिटिश-शासन-विधान ने जान-बूझ कर अपनी कुटिल नीति का अनुसरण करते हुए संस्कृत विद्या को अर्थकरी विद्या न रहने दिया था। इस को पढ़ने-पढ़ाने वाले स्कूल और कालिजों में अंग्रेजी पढ़ने-पढ़ाने वालों के समकक्ष नहीं समझे जाते थे।

ऐसी परिस्थिति के होते हुए भी जब कि विदेशी शासकों ने संस्कृत को मृत भाषा घोषित कर दिया था अर्थात् यह मुर्दा भाषा है या मुर्दों की भाषा है, जब संस्कृत को अर्थकरी विद्या न रहने दिया था, जब इसे शिक्षा-दीक्षा के साधन की पदवी से च्युत किया गया था. और जब इसे पढ़ाने का माध्यम भी विदेशी भाषा को नियत किया जा चुका था, तब भी उन प्राचीन पण्डितों ने भूखे रहकर, अपमान सहकर भी उस अपनी संस्कृति को जीवित रखने के लिए अपने जीवन के स्नेह से संस्कृत विद्या की ज्योति को जगाये

रखा। उन का यह धर्म था और उस पर उन्हें निष्ठा थी कि बिना संस्कृत के हमारी संस्कृति नहीं। इस के बिना हमारे प्राण नहीं। इस के बिना भारत जी नहीं सकता। इस की रक्षा करना हमारे लिए निःश्रेयस्कर है। बस, इन्हीं प्राण-पण पर खेलने वाले नैष्ठिक महात्मा विद्वानों की प्रकाण्ड तथा निष्काम तपस्या का फल ही गोखले, लोकमान्य तिलक, महामना मालवीय, गांधी, नेहरू और राधाकृष्ण हुए हैं जिन्हों ने अपनी संस्कृति की सत्ता के आधार को संस्कृत ही स्वीकार किया है। आधुनिक जनता को चाहिए कि वह संकट के समय में भी संस्कृत की ज्योति को जगाये रखने वाले उन मनस्वी संस्कृत-विद्वानों के परिश्रम को न भूले। उन की ओर अकृतज्ञता प्रकट करने से हमारी हानि होगी और हम श्रेय के भागी न रहेंगे।

संस्कृत की वर्तमान शिक्षण-पद्धतियां और माध्यम—आजकल, जैसा कि ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि, संस्कृत-शिक्षा की दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं। एक पाणिनि-प्रणाली—जो कि पाठशालाओं में प्रचलित है और दूसरी वह जो कि स्कूलों और कालिजों में चलाई गई है। दोनों का माध्यम हिन्दी है। और संस्कृत सिखाने का मुख्य साधन अनुवाद है अर्थात् जो कोई भी आजकल संस्कृत सीखना चाहता है उस के लिए तीन साधन हैं। पाठ्य-पुस्तक, व्याकरण और अनुवाद। हिन्दी-युग से पहले संस्कृत पढ़ाने का माध्यम क्या था? इस का पता भारत के भाषा-विकास से ही लग सकता है। शिष्ट-समाज की भाषा क्या थी? इस प्रश्न के उत्तर पर संस्कृत नाटकों की भाषा भी पर्याप्त प्रकाश डाल सकती है। तात्पर्य यह हुआ कि संस्कृत-शिक्षा का

माध्यम शिष्ट-समाज की भाषा ही रहा होगा। संस्कृत और प्राकृत का भेद इतना नहीं था जितना कि संस्कृत और हिन्दी का है। इसलिए प्राकृत-काल में संस्कृत का पढ़ना-पढ़ाना इतना कठिन न रहा होगा जब कि लोग संस्कृत-प्राकृत-भाषी थे। संस्कृत और प्राकृत का व्याकरण बहुत अंशों में समान है। भेद केवल मुख्यतः उच्चारण में है और ये दोनों भाषाएं संश्लिष्ट हैं अर्थात् नाम और आख्यात में प्रकृति और प्रत्यय सम्मिलित हैं। हिन्दी में भाषा-विकास के नियमों के अनुकूल प्रकृति और प्रत्यय पृथक् दिखाई देते हैं इसी लिए हिन्दी-युग में संस्कृत कठिन प्रतीत होती है। परन्तु माध्यम हिन्दी ही है।

पाठशालाओं की संस्कृत पढ़ाने की पद्धति में क्रम इस प्रकार है—संस्कृत-वर्णमाला लिखने के अनन्तर कुछ हिन्दी पढ़ना लिखना सिखाया जाता है और तदनन्तर अष्टाध्यायी या लघु-सिद्धान्तकौमुदी और रघुवंश तथा अमरकोश बच्चे के हाथ में दिये जाते हैं, जब कि उस की आयु आठवें वर्ष के लगभग होती है। संस्कृत पढ़ाने की इस से अच्छी और पद्धति नहीं निकाली जा सकती; जब कि उद्देश्य संस्कृत का परम विद्वान् बनाना हो। किसी भी भाषा का सुचारुरूप से ज्ञान प्राप्त करने के लिए उस का व्याकरण पढ़ना परम आवश्यक है। विशेषकर उन भाषाओं के लिए जो कि सीखने वाले की बोलचाल की भाषा से भिन्न हों। इसलिए व्याकरण की अनिवार्यता का नियम सब भाषाओं पर समानरूप से लागू होता है। केवल उस भाषा को छोड़ कर जिसे बच्चा बचपन में अपने वातावरण और परिस्थिति के वश में रह कर सीखता है। फिर भी उस भाषा में भी पूर्ण योग्यता प्राप्त

करने के लिए उसका व्याकरण पढ़ना उसके लिए परमावश्यक होता है। नहीं तो उसमें वह निष्णात नहीं हो सकता। इस पाठशाला-पद्धति में व्याकरण पर ठीक जोर दिया जाता है। बालक की अवस्था के अनुरूप उसकी स्मरण-शक्ति का उपयोग किया जाता है। व्याकरण-सम्बन्धी परम्परा-प्राप्त सिद्धान्तों को रट लिया जाता है और बाद में उन सिद्धान्तों का प्रयोग यथासमय किया जाता है। आज-कल के शिक्षक इसे अवहेलना की दृष्टि से देखते हैं। कोई इस प्रणाली को 'सुग्गा' प्रणाली कहता है, कोई घोटा प्रणाली। परन्तु ऐसे लोगों को याद रखना चाहिए कि बालक की शिक्षा में उसकी स्मरण-शक्ति का सदुपयोग उतना ही आवश्यक है जितना कि उसकी अन्य मानसिक शक्तियों का। यह सूत्र-प्रणाली व्याकरण सिखाने के लिए उतनी ही आवश्यक है जितने कि गणित में पहाड़े, बीजगणित में गुर और रेखागणित (ज्योमैट्री) में अनुशासन (प्रेपोजिशन) और भौतिक शास्त्र व रसायन शास्त्र (फीजिक्स) (कैमिस्ट्री) में आवश्यक फार्मूले हैं। स्मरण-शक्ति को निःश्रेयस-सिद्धि के लिए योग-शास्त्र में साधन माना गया है। जिन व्यक्तियों की स्मृति ठीक नहीं रहती वे उन्नति नहीं कर पाते और जो बिल्कुल स्मृतिहीन हो जाते हैं उनके लिए सरकार ने समाज की भलाई के लिए पागल खाने खोल ही रखे हैं। श्री कृष्ण भी तो यही कहते हैं— स्मृति का नाश बुद्धि नाश की ओर संकेत करता है जो कि सर्वनाश के लिए बुलावा है। "स्मृति-भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्-प्रणश्यति"॥

पता नहीं लोग रटने से क्यों डरते हैं और रटने वाले की हँसी क्यों उड़ाते हैं? हाँ इतना अवश्य ठीक है कि प्रत्येक

बात का सदुपयोग होना चाहिए। युक्ति-युक्त व्यवहार से सुख मिलता है। इस प्रणाली में जो दोष हमें प्रतीत होता है वह इतना मात्र है कि बिना समझे-बूझे या बिना समझाये-बुझाये बच्चों के मस्तिष्क पर जो अनावश्यक बोझ लादा जाता है वह अन्ततोगत्वा हानिकर हो जाता है। क्योंकि इससे रुचि में कमी होने की सम्भावना होती है। जो भोजन हम अपने पेट में ऐसे ही बिना चबाए और बिना स्वाद के भर देते हैं, वह एक तो सुपच नहीं होता और दूसरे हमारे शरीर का अङ्ग नहीं बन सकता। ठीक यही दशा मन की है। जो कोई भी विचार हमारी विचार-शृङ्खला में बैठ नहीं जाते और जिन का हम यथेष्ट प्रयोग नहीं कर सकते, वे हमारे मन पर बोझ-सा बने रहते हैं। इसलिए जो विचार हमारी मानसिक सामग्री में ओत-प्रोत हो जाते हैं अर्थात् जिन्हें हम अपना लेते हैं, वे ही हमारे लिए उपयोगी और लाभकारक सिद्ध होते हैं। मस्तिष्क को ऐसे ही अजीर्ण विचारों से लादना मनो-विज्ञान की दृष्टि में असम्मत है। इसलिए पाठशालाओं में पढ़ाने वालों के लिए यह मान्य होगा कि वे अपनी व्याकरण-पाठ्य-पद्धति को जितना भी हो सके मनोवैज्ञानिक ढंग पर चलाएँ जिससे संस्कृत पढ़ने वालों में संस्कृत के लिए रुचि और उसके ज्ञान में यथेष्ट अभिवृद्धि हो। यह परिणाम प्राप्त करने के लिए अध्यापक-वर्ग शिक्षा-सम्बन्धी साधनों का यथाकाल उपयोग करें।

तीसरा अध्याय

व्याकरण-शिक्षण

संस्कृत-व्याकरण सिखाने की सर्वोत्तम पद्धति पाणिनीय शैली है। इसके आधार पर हम थोड़े से समय में संस्कृत-व्याकरण सुचारु रूप से विद्यार्थियों को हृदयङ्गम करा सकते हैं। इसी कारण इस पद्धति से पढ़ा हुआ विद्यार्थी अपठित संस्कृत श्लोकों का अर्थ लगाने में सफलप्रयत्न हो सकता है। परन्तु स्कूलों में कम समय होने के कारण हमें पाणिनीय शिक्षा में कुछ परिवर्तन की आवश्यकता है। और हमें मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार कुछ परिवर्तन उसमें करना वाञ्छनीय है। यथा—

संस्कृत-वर्णमाला—अध्यापक को चाहिए कि व्याकरण पर पहला पाठ वर्ण-माला से प्रारम्भ करे। संस्कृत-वर्ण-माला की तुलना और भाषाओं की वर्ण-मालाओं से करता हुआ इसकी वैज्ञानिकता पर छात्रों का ध्यान आकृष्ट करे। वर्णों का वर्गीकरण विश्लेषण-विधि से समझाये। पहले स्वर अर्थात् वे ध्वनियाँ जिनका उच्चारण केवल सुरमात्र है। जो वायु प्राणरूप में अन्तःकरण की प्रवृत्ति द्वारा फेफड़ों से होती हुई कण्ठ में झङ्कार पैदा करके मुख या नासिका द्वारा निकलती है और जिसका अवरोध मुख के किसी भाग में भी मुख के

किसी भी अवयव द्वारा नहीं होता उसे स्वर कहते हैं जैसे—अ, ई, उ, इत्यादि। फिर व्यञ्जन अर्थात् जो ध्वनियाँ पूर्णतया व्यक्त हैं वेही व्यञ्जन हैं। स्वर गायन में बड़ी अच्छी तरह प्रकट होते हैं। एक अच्छा गायक आरोहावरोह द्वारा मूर्च्छना आदि गतियों में से एक ही स्वर का आलाप करता हुआ उसे अनेक रूपों में प्रकट कर देता है। बस, यही स्वर का रूप है। परन्तु व्यञ्जन में यह बात नहीं। वहाँ तो जिस ध्वनि को अभिव्यक्त करने की इच्छा होती है उसे वैसा ही व्यक्त किया जा सकता है। इसीलिए इनका नाम व्यञ्जन है। स्वर और व्यञ्जनों से ही वर्ण बनते हैं। अर्थात् ध्वनि (प्राण-वायु) अन्तःकरण के मेल से इन दो रूपों में प्रकट होती है। तात्पर्य यह कि ध्वनि इन दो रूपों में रँगी जाती है। तभी तो इसका नाम वर्ण पड़ा है।

इस प्रकार वर्ण-माला का अर्थ समझा कर अध्यापक उसके विशेष वर्गी-करण की ओर चले। इस बात की ओर विशेष ध्यान रखे कि स्थान, प्रयत्न, काल और आघात की दृष्टि से जो वर्गी-करण ध्वनि का है वह बच्चों को अच्छी तरह समझ में आ जाय। प्रायः देखा जाता है कि स्कूलों में अध्यापकवर्ग वर्ण-माला के पाठ को अनावश्यक सा समझ कर छोड़ देते हैं और झट सन्धि या नामोच्चारण से संस्कृत व्याकरण प्रारम्भ करते हैं। यह उनकी भारी भूल है। जल्दी करने की आवश्यकता नहीं, वर्ण-माला को समझने पर पर्याप्त समय लगाना चाहिए। यह भाषा की आधार-शिला है। यह वह मूल है जिसको सींचने से व्याकरण-वृक्ष अच्छी तरह पनपेगा। "छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्"। अनुभव बतायेगा कि इस पद्धति का प्रयोग करने से व्याकरण-शिक्षा सरल, सरस और

सबल तथा रोचक और अल्प समय में सफल होती प्रतीत होगी। बस, जड़ से ही यह शिक्षा ठीक होनी चाहिए, ऊपर की लीपा-पोती से कुछ सिद्धि नहीं होगी। हिन्दी की वर्ण-माला बच्चों को आती है। उसी को आधार मान कर ज्ञात से अज्ञात की ओर चलना होगा। सरल से कठिन की ओर जाने का भी नियम यहीं लागू होगा।

वर्ण-माला के क्रम और उस की नियति पर विद्यार्थियों का ध्यान विशेष रूप से दिलाना चाहिए जिस से उन्हें आगे आने वाले ध्वनि-परिवर्तन यथावत् समझ में आ जायें। जैसे—स्थान, प्रयत्न के आधार पर जो 'चार्ट' तैयार करवाया जाय उस से यह स्पष्ट पता लगे कि एक कोष्ठ की ध्वनियों का परस्पर विनिमय सुगम तथा सुलभ है। इ, ए, ऐ, य्, अय् और आय्, एक कोष्ठ में हैं। वैसे ही उ, ओ, औ, व्, अव् और आव् एक कोष्ठ में है। विद्यार्थी को यह अवगत होजाना चाहिए कि 'इ' का परिवर्तन वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक ढंग से इन्हीं कोष्ठगत रूपों मे होना स्वाभाविक तथा निरापद है। कारण-कार्य का सम्बन्ध स्थापित करना बताना अत्यावश्यक है। व्याकरण पढ़ाने के उद्देश्यों मे यह भी एक प्रधान उद्देश्य है कि बच्चे के मानसिक विकास में तथा बौद्धिक विनय मे यह शास्त्र भी सहायक प्रमाणित हो। वैसे तो व्याकरण के सभी विषय इस उद्देश्य की पूर्ति कर सकते है पर, वे प्रारम्भिक अवस्था के विद्यार्थियों के लिए कठिन होंगे। वर्ण-माला इस मनोवैज्ञानिक शिक्षण-पद्धति द्वारा यदि पढ़ाई जाय, तो यह कार्य-कारण का सम्बन्ध बच्चों को भलीभाँति समझ मे आजायगा। बिना कारण के कोई कार्य इस संसार-चक्र में नहीं होता, यह प्रकृति का अटल नियम है।

यह नियम भाषा में भी इतना ही लागू है जितना गणित या भौतिक शास्त्र, (फीज़िक्स) रसायन शास्त्र (कैमिस्ट्री) या और विज्ञानों में। एक सुबोध संस्कृत-अध्यापक पाठ की अच्छी तरह तैयारी करके बच्चों को इस नियम का पालन व्याकरण में भी होता स्पष्ट दिखाए जिस से बच्चों की रुचि भाषा-शास्त्र की ओर अग्रसर होगी।

"व्याकरण रूखा विषय है" यह उक्ति उन लोगों की है जो भाषा में अनुराग नहीं रखते। उन का मन भाषा के रहस्य को नहीं जानता। भाषा एक सुरीला गीत है। चाहे वह भाषा प्राचीन हो या नवीन। उस गीत के सुरीलेपन को व्यक्त करना ही अध्यापक का कर्तव्य है। यदि वह यह नहीं करता तो मानिये वह कर्तव्य को नहीं समझता है। इस माधुर्य को, इस लय को स्पष्ट करने के लिए मनन, स्वाध्याय और लगन की आवश्यकता है। अध्यापक को भाषा-शिक्षण में स्वयं जब तक आनन्द नहीं आता वह छोटे बालकों में रुचि कैसे पैदा कर सकता है? आजकल संस्कृत की अवहेलना का उत्तरदायित्व बहुत अंश तक अध्यापक-वर्ग पर है। उन्हें स्वयं पढ़ाने के ढंग पर अपने निजी विचार उत्पन्न करने चाहिएँ। प्रत्येक अध्यापक अपना स्वयं नियामक है। साधारण पद्धति का संकेत केवल किया जा सकता है। पाठ की विशेषता, विद्यार्थियों की विभिन्नता, देश-काल की आवश्यकता अध्यापक को शिक्षण पद्धति नियत करते समय अवश्य ध्यान में रखनी होंगी।

हिन्दी-आधार—हिन्दी को आधार बनाओ। इस का लाभ यह होगा कि संस्कृत कोई अज्ञात वस्तु न रह पायेगी।

हमारे जीवन से इस का निकटतम सम्बन्ध स्थापित हो जायगा। यह उस आगन्तुक के समान न रहेगी जो कि हम से पूर्णतया अपरिचित हो। इस बात को जताने के लिए संस्कृत-अध्यापक भाषा-शास्त्र-वेत्ता अवश्य होना चाहिए। भाषा का इतिहास जानना इतना ही आवश्यक है जितना कि राजनीतिक इतिहास का। हिन्दी और संस्कृत का सम्बन्ध मूल से ही बताना लाभ प्रद होगा। विद्यार्थी को कितना आनन्द होगा जब उसे यह पता लग जाय कि संस्कृत कोई नई भाषा नहीं है अपि तु हिन्दी का प्राचीन रूप है। इस ऐतिहासिक तत्त्व को वह जब जान लेगा तब उस की रुचि संस्कृत सीखने में अधिक बढ़ेगी। इसलिए संस्कृताध्यापक के लिए साधारण भाषा-विज्ञान से परिचित होना अनिवार्य है। नहीं तो, वह संस्कृत का अन्य भाषाओं में स्थान निश्चित नहीं कर पायेगा और संस्कृत के अध्यापन में असफल रहेगा।

निर्बाधविधि (डाइरेक्ट मैथड)—संस्कृत-शिक्षा के लिए कई विद्वान् निर्बाधविधि को अच्छा कहते हैं। उनका कथन है कि यह स्वाभाविक विधि है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्राकृतिक नियमों के अनुसार भाषा की शिक्षण-विधियों में यह विधि परमोपयोगी है। इसे बोलचाल की विधि या डाइरेक्ट मैथड भी कहते हैं। देखा जाय तो बच्चा जो भाषा सब से पहले सीखता है इसी विधि से सीखता है जो कि सीधी और सरल है। भाषा है क्या? भाषा मनोगत भावों का शब्दमय प्रतीक है। जिन शब्दों का आर्थिक सम्बन्ध उन मानसिक अनुभवों से जुड़ा होता है जो कि बोलने वाला बाह्य-पदार्थों से तदागत संस्कारवश मन में प्रतिपादित करता है। यह भी एक प्रकार

की अनुवाद-क्रिया है जो कि प्रतिक्षण हमारे मन और मस्तिष्क द्वारा होती रहती है। जब एक बच्चा इस बाहरी अनुभव को अपनी वाणी द्वारा प्रकट करता है तब कहा जाता है कि वह भाषा का प्रयोग कर रहा है। हृत्तन्त्री मुखवीणा द्वारा बज उठती है। यह एक बड़ा अचम्भा है कि हृदय की मूक भाषा वाचाल हो उठती है, दार्शनिक दृष्टि से देखा जाय तो यह सारा भाषाडम्बर शब्दब्रह्म की माया है। जो माया ध्वनिसमूह का आश्रय लेकर सर्वत: प्रचलित और प्रसरित होकर अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना द्वारा इस संसार में व्याप्त हो जाती है। मनोगतभाव कहाँ तक भाषा द्वारा प्रकट हो सकते हैं यह मनोविज्ञान और भाषाविज्ञान का गूढ़तम विषय है। हृदय की इस मूक भाषा को वर्णोच्चारण द्वारा प्रकट करना ही शिक्षा कहलाता है। इसी शिक्षा पर हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि जोर देते थे। इसीलिए शिक्षा को वेदाङ्गों में मुख्य स्थान देते हैं। 'मूकं करोति वाचालम्' का भी यही अर्थ है। एक मूक प्राणी कैसे सुलक्षण, सुसम्बद्ध, मधुर, उदात्त, ओजस्वी, सार्थक और सुन्दर शब्दों द्वारा अपने मनोगत भावों को प्रकट कर सकता है, यही उसके सुशिक्षित होने की कसौटी है।

वास्तव में माता की गोद में जिस विधि से बच्चा भाषा सीखता है उसी विधि को डाइरेक्ट मैथड (अबाधित या प्रत्यक्षमन्त्र विधि) कह सकते हैं। इस विधि में अनुकरण, अभ्यास, विषयों की विविधता और प्रतिक्षण संशोधन का अवसर मिलता है। ऊबने का कहीं स्थान नहीं। विषय-वैचित्र्य इतना कि मन उकता नहीं सकता। सब से बड़ी बात यह कि बन्धन कोई नहीं। अमुक समय श्रुतलेख होगा,

अमुक समय सुलेख, अमुक समय शब्दबोध तथा व्याकरण, अमुक तिथि पत्रलेख, अमुक वार प्रस्ताव—इस का कोई विचार नहीं, बस अबाधित विधि का यही ढंग है। बच्चा अबाधित क्रम से भाषा-प्रयोग सीखता जाता है। यह वह स्कूल है है जिसमें बच्चे के लिए दत्तात्रेय की तरह एक अध्यापक नहीं सारा वातावरण, परिस्थिति और परिवार अध्यापक का काम कर रहा है। मनोरञ्जन इतना कि निरन्तर शिक्षा प्राप्त करते रहने पर भी छुट्टी का कहीं नाम नहीं। खाता पीता, चलता-फिरता, सोता-जागता बच्चा सीखता चला जा रहा है। नये संस्कार चक्रवत् परिवर्तन कर रहे हैं। हृत्तल से यन्त्रवत् विचारघटिका शब्दों का जल भरे हुए चेतना के तलपर उँडेलती चली आ रही है। वाणी का स्रोत निरन्तर बह रहा है। इसी को सरस्वती कहते हैं। तभी तो सरस्वती शब्द नदी और वाणी का वाचक है। जब वाणी की कुल्या धारा रूप में बह उठती है, तब बच्चा अपने परिश्रम में सफल हो जाता है। परिणाम उसका शतप्रतिशत ठीक निकलता है। यह है उत्तीर्ण होने की प्राकृतिक मर्यादा। सौ में से सौ अंक। इसमें उत्तीर्ण होने के लिए आजकल के तैंतीस प्रतिशत वाली बात नहीं। इस पर और अचम्भे वाली बात यह है कि तीन वर्ष में बच्चा सबसे पहले सीखी जानेवाली भाषा का अधिकारी हो जाता है। प्रकृति की इस पाठशाला में तीन साल का कोर्स है। तीन वर्ष के पाठ्य-क्रम से बच्चा भाषा पर अधिकार जमा लेता है। इससे आगे यदि उसने विशेषज्ञ बनना है तो उसे साहित्य का आश्रय लेना होता है। इसीलिए भाषा को साहित्य में प्रवेश का साधन कहते हैं।

अब देखिये—यदि ये सारी बातें जो ऊपर के स्कूल के लिए अनिवार्य बताई गई हैं, संस्कृतशिक्षण-विधि में ठीक उतर सकती हैं तब तो यह शिक्षण-विधि ठीक है, नहीं तो आधा तीतर आधा बटेर "इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः" वाली बात है। भला, संस्कृत पढ़ाने में यह विधि कैसे प्रयुक्त हो सकती है? न तो संस्कृत बच्चे के चारों ओर बोली जाती है, और न वैसा वातावरण बन सकता है। मान लो कि अध्यापक मार-पीट कर स्कूल में (डायरेक्ट मैथड) निर्बाधविधि का वातावरण संस्कृत की घण्टी में उत्पन्न कर ले पर दूसरे विषयों की घण्टियों में क्या होगा? खेल की घण्टी में क्या होगा? अवकाश (Recess) की घण्टी में क्या होगा? घर में, बाजार में, खेत में, वन में, उपवन में, टाँगे में, गाड़ी में, गोष्ठी में, समवयस्कों में, वृद्धों में, स्कूल में बान्धवों में और नौकर-चाकरों में क्या होगा? यहाँ तो वह संस्कृत की घण्टी की अबाधितविधि प्रयुक्त नहीं कर सकता। क्योंकि यह परिस्थिति के अनुकूल नहीं। युक्ति दी जाती है कि क्या अंग्रेजी इस विधि से नहीं सिखाई जाती? संस्कृत में क्या दोष है? पर यह ध्यान रखना चाहिए कि हरएक बात का नियम हुआ करता है। एक ही बात सब पर लागू नहीं हो सकती। अंग्रेजी या हिन्दी पढ़ाने का ध्येय भिन्न-भिन्न है। इतना होते हुए भी अंग्रेजी पढ़ाते समय अनुवाद का आश्रय लिया जाता है। अनुवाद प्रणाली का आश्रय लिए बिना आधुनिक भाषाओं को पढ़ाना जहाँ कठिन माना जाता है वहाँ प्राचीन भाषा संस्कृत पढ़ाने में यह प्रणाली कैसे अनुपयुक्त समझी जा सकती है। इसीलिए इन युक्तियों द्वारा संस्कृत पढ़ाने के लिए अनुवाद-प्रणाली ही सर्वोत्तम ठहरती है।

सन्धिप्रकरण—सन्धिप्रकरण अवश्य वर्णमाला सिखाने के बाद पढ़ायें। कठिनाई एक सापेक्ष विचार है। केवल कठिनाई की ओर ही ध्यान नहीं देना चाहिए। कौन विषय कब और कैसे पढ़ाया जाना चाहिए यह बात अधिक ध्यान देने योग्य है। जब ध्वनि-समूह अच्छी तरह समझा-बुझाकर सिखा दिया तो ध्वनि-संसर्ग से जो परिवर्तन होने वाले हैं उनके समझाने में किसी भी कठिनाई की कल्पना करना भूल है। हाँ, इतना अवश्य हो कि सन्धि के विषय को रोचक अवश्य बनाया जाय। व्याकरण का यह वह अङ्ग है जो आगमनात्मक शिक्षण-रीति (inductive method) से भलीभाँति पढ़ाया जा सकता है।

सरल से कठिन की ओर अध्यापक चले। दीर्घ-सन्धि, गुण-सन्धि, वृद्धि-सन्धि, यण-सन्धि, अय्, अव् आय्, आव्-सन्धि—ये प्रधान ध्वनि-परिवर्तन बच्चों को बड़ी रोचकता से आगमनात्मक ढंग पर सिखाये जा सकते हैं। उदाहरण हिन्दी में आये हुए तत्सम शब्दों से जहाँ तक लिये जा सकें, लिये जाने चाहिये। पाठ को रोचक बनाने का यह अनुपम ढंग है। वर्तमान का अतीत से सम्बन्ध जोड़ने का यह एक निराला साधन है। इससे कभी नहीं चूकना चाहिए। एक तो भाषा का वह मुख्य अङ्ग जिसे शब्दभण्डार कहते हैं समझ में आ जायगा और उसकी तत्समता अतीव रुचिकर और प्रसन्नता का कारण बनेगी। कठिनाई का आभास भी दूर होता दिखाई देगा। शब्दों के चुनाव में ही अध्यापक की निपुणता होगी। शिष्य को यह पता नहीं लगेगा कि वह संस्कृत की सन्धियाँ सीख रहा है या हिन्दी तत्सम शब्दों की व्याख्या कर रहा है।

एक बात और—सन्धि समझाते समय विद्यार्थी के मन में यह भाव भलीभाँति बिठा देना चाहिए कि सन्धि वह साधारण प्रक्रिया है जो सब भाषाओं में मिलती है, चाहे आधुनिक हों या प्राचीन, चाहे देशी हों या विदेशी। संस्कृत की विशेषता इसी बात में है और इस बात पर हमें गौरव है कि इन सन्धियों को अर्थात् इन ध्वनियों के मेल को केवल उच्चारण तक ही नहीं रहने दिया, परन्तु उनको यथावत् सन्ध्यक्षरों द्वारा लेखन में भी प्रकट किया। यह संस्कृत की ही एक मात्र विशेषता है जो और भाषाओं में नहीं मिलती। अब हमें यह बताना होगा कि स्वर-संयोग से जो परिणाम निकलता है वह वैज्ञानिक उपज है। व्याकरण के पाठ को रोचक बनाने का यही एक मात्र साधन है कि प्रत्येक परिवर्तन के कारण बताये जायें। संस्कृत-अध्यापक को यह नहीं समझना चाहिए कि ऐसा करने से पाठ में कठिनाई आयेगी और सुकुमारबुद्धि बालकों के लिए पाठ दुरूह हो जाएगा। प्रत्युत बालकों में केवल नियम बता देने से जिज्ञासा का दमन हो जाता है जिससे उनकी रुचि कम होती जाती है और विषय शुष्क और नीरस प्रतीत होने लगता है। यहाँ तक कि वे उससे मन चुराने लगते हैं। इसलिए जिज्ञासा को तृप्त करना ज्ञान-वृद्धि का बड़ा सुगम तथा वैज्ञानिक नियम है। जहाँ तक हो सके संस्कृत-अध्यापक को इसका पालन प्रारम्भिक श्रेणियों में ही कर देना चाहिए।

दो समान स्वरों के संयोग से एक दीर्घ स्वर सुनाई देता है—यह नियम सर्वसाधारण रूप से संसार की समस्त भाषाओं

पर लागू है। यह नियम गणित के नियमों जैसा है। जैसे १+१=२ वैसे ही अ+अ=आ। यह समान तथ्य है जिसका कोई अपवाद नहीं होसकता। हिमालय, सतीश, पुरुषार्थ, विद्यार्थी, तथापि, विद्यालय, रामायण, हताश, महाशय, जलाशय, मुनीन्द्र, महीश, नदीश, लक्ष्मीश, हरीच्छा आदि इस नियम के यथावत् उदाहरण हैं। तुलनात्मक दृष्टि से भी इसका प्रतिपादन और भाषाओं से करना चाहिए। 'कमान' और 'वीट' अंग्रेजी के कम+आन और बी+इट के ही परिणाम स्वरूप हैं। हिन्दी से तत्सम और तद्भव शब्द तथा विद्यार्थी की मातृ-भाषा से उदाहरण देकर इस नियम का प्रत्यक्षीकरण और स्पष्टीकरण हो सकता हैं।

नरेन्द्र, हितोपदेश, महेश, सूर्योदय, भाग्योदय, इत्यादि कतिपय उदाहरण देकर अ+इ और अ+उ का मेल स्पष्ट हो सकता है। तथा राजर्षि, देवर्षि, सप्तर्षि, महर्षि आदि उदाहरणों से क्या यह समझाया नहीं जा सकता कि अ+इ, अ+उ, अ+ऋ के मेल से ए, ओ, अर् क्रमशः सुनाई देना एक स्वाभाविक बात है। यह ऐसा ही सिद्धान्त है कि जैसे आग से पानी का भाप बन जाना या बाष्प का ठंडक से जलस्वरूप होजाना। वैसे ही इ+अ, उ+अ, ऋ+अ, य् व् र् ही सुनाई पड़ते हैं। बालकों के मन में यह बात भलीभाँति बैठ जानी चाहिए कि व्याकरण कोई कृत्रिम चीज नहीं है। वैयाकरण नियम नहीं गढ़ा करता न ही शब्द बनाता है। वह तो भाषा का विश्लेषण करता है और उसमें से वह नियम निकालता है जो उस भाषा के बोलने वाले उसे बोलते समय प्रयुक्त करते हैं। यदि संस्कृत

भाषा में ऐसे स्वर-संयोग के नियम व्याकरण में मिलते हैं तो क्या यह सिद्ध नहीं कि संस्कृत किसी समय इसी रूपमें बोली जाती थी। यदि बोली नहीं जाती थी तो ऐसे परिवर्तनों के नियम बताने की आवश्यकता ही क्या थी? स्वर-सन्धि में यह कारण-कार्य का नियम जल्दी दिखाई देता है। थोड़ी सी गवेषणा से व्यञ्जन-सन्धि में भी यह विशद रूप से दिखाया जा सकता है। उसमें भाषा के इतिहास और उसके विज्ञान से अधिक जानकारी की आवश्यकता है। अघोष से घोष और अल्प-प्राण से महाप्राण या इन दोनों का विपर्यय कारण कार्य रूप में समझाना कोई कठिन नहीं। तवर्ग का चवर्ग में बदलना और तवर्ग का टवर्ग में बदलना भी स्वभाव-सिद्ध ही समझा जा सकता है। सत्य से सच और अद्य से अज्ज वैसे ही उदाहरण हैं जैसे तत्+च=तच्च या सद्+जन=सज्जन हैं। अध्यापक में रुचि चाहिए। पाठ को उपयुक्त बनाने का उसे ढंग आना चाहिए, जो कि लगन और अभ्यास का फल है। "जिन ढूंढा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ" की उक्ति यहां चरितार्थ होती है।

इस विषय को हम विसर्ग-सन्धि की समस्या सुलझाते हुए समाप्त करना चाहते हैं। अध्यापक की प्रतिभा, उसकी खोज, उसकी छान-बीन की रुचि, उसका स्वाध्याय, उसकी लग्न भूठे उपालम्भ से अभियुक्त व्याकरण के रूखेपन को ललित और सरस बनाने योग्य है। व्याकरण का कोई दोष नहीं यदि अध्यापक उसे रसीला न बनादे, "नाय सूर्यस्य दोषो यदन्धस्त न पश्यति"।

वि+सर्ग अर्थात् वह ध्वनि जिसकी सृष्टि विशेषरूप

से की जाती है। अध्यापक जब भी कोई पारिभाषिक शब्द प्रयोग में लाए उसका अर्थ अवगत कराना उसका प्रथम कर्तव्य है। शिक्षा-पद्धति के अनुसार हमें चाहिए कि विद्यार्थियों के सामने कठिनाइयाँ तो उपस्थित करें, परन्तु जिनको विद्यार्थी कठिनाइयाँ समझें उनको सरल बनाना हमारा ध्येय होना चाहिए। कठिनाइयों से आँख मूँदना शिक्षा नहीं। शिक्षा का अर्थ ही (कर) सकना है। कठिनाइयों को पार करना ही शिक्षित होना है। विसर्ग-सन्धि को ठीक तरह पढ़ाने से यह शिक्षा का उद्देश्य किस तरह पूरा किया जा सकता है। विसर्ग की परिभाषा समझाने के अनन्तर हम उसकी परिणति पर आते हैं। विसर्ग के रूपान्तर ये हैं—ओ, र्, स्, और लोप। विसर्ग को ओ क्यों होगया यह बड़ी कठिन समस्या है। इतिहास और विज्ञान यहाँ सहायक बनते हैं। उदाहरण रूप में देखिये जब ह्रस्व अकार के बाद विसर्ग अकारान्त प्रथमान्त शब्द में आती है, अर्थात् ऐसी अवस्था में यह कर्तृपद की द्योतक विशेषध्वनि पुँल्लिङ्ग अकारान्त शब्दों में व्यवहृत होती थी, परन्तु पाली भाषा में यह देखा गया है कि कर्तृविभक्ति में ओ मिलता है। और वैसे ही आधुनिक भारतीय भाषाओं में कहीं ओ दिखाई देता है और उसी ओ की लघुतर श्रुति के रूप में उ दिखाई देता है, जिसका कि अन्त में लोप हो जाता है। पाली का रामो, तुलसीदास का रामु और हिन्दी का राम इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि प्राचीन काल में कर्तृपद के वाचक अकारान्त शब्दों के आगे अकार समान विशेष ध्वनि विसर्ग जोड़ी जाती थी या ओ जोड़ा जाता था, यह नियम समानता नियम के आधार पर सब जगह लागू

होने लगा। वैयाकरणों ने विश्लेषण करते समय कतिपय परिस्थितियों में यह नियमरूप में दिखाने की चेष्टा की कि विसर्ग के पूर्व ह्रस्व अकार हो और उनके बाद अकार या कोई घोष वर्ण हो तो विसर्ग को ओ हो जायगा। वास्तव में यह है इसका परिणति-रहस्य, जिसे जान कर हमारी जिज्ञासा की तृप्ति हो सकती है।

विसर्ग का लोप एक और दूसरी समस्या है। वैयाकरण के कहने से तो कोई आवाज उड़ नहीं सकती। यह कोई ऐन्द्रजालिक तो नहीं और उसका व्याकरण भानमती का पिटारा भी नहीं कि जो चाहे बनाए जिसे चाहे उड़ाए और जैसा चाहे मन-मानी हाँके और लोगों को विश्वास दिलादे कि जो वह कहता है सच है और शेष सब झूठ। यह व्याकरण है, यह कोई अन-भिज्ञों की आँखों में धूल झोंकने वाली बात नहीं। 'सत्यदेवाः स्याम इत्यध्येयं व्याकरणम्' सच के पुजारी बनना, सच को ढूंढ़ निकालना, सच की खोज में लगे रहना ही व्याकरण का परम पुनीत तथा श्रद्धेय ध्येय है। 'रामः अस्ति' तो ऊपर के ब्योरे से 'रामोऽस्ति' बनता कुछ समझ में आ गया पर, 'रामः इह' 'रामाः गताः' 'राम इह' 'रामा गताः' कैसे होगए? जब अ, आ के उपरान्त हमने विसर्गों का उच्चारण किया और झट उनके उपरान्त कोई अ से भिन्न स्वर (अः के बाद) या कोई स्वर या घोष वर्ण (आः के बाद) उच्चारण करने को प्रस्तुत हुए तो प्राण-वायु अः या आः के उच्चारण में जो खर्च हुई थी वह इस बात में बाधा उपस्थित करती है कि आगे आने वाले स्वर के उच्चारण में स्वरयन्त्र को फिर से तैयार कर सके। इनका लोप थान्ति

का परिणाम है। संहितरूप में बोलने से वह विसर्ग-ध्वनि ऐसी परिस्थिति मे कानों तक ही नहीं पहुँचती, प्रत्युत वह मुख से भी उच्चरित नहीं हो पाती। इसी का नाम लोप है। 'अदर्शन-लोप.'। वह वहाँ दिखाई नहीं पड़ती। यदि है नहीं, तब उसका चिह्न ही क्यों न मिटा दिया जाय? यह है भेद विसर्ग के लोप का। अंग्रेजी भाषा वाले इसे साइलेण्ट कहेंगे।

विसर्ग का 'र्' 'स्' या 'श्' 'ष्' में परिवर्तित होना समझ में आना सुगम है। विसर्ग का अपना व्यक्तित्व ही ऐसा है कि वह 'र्' 'स्' या 'न्' का पर्यायवाची है। 'निस्' और 'निर्', 'दुस्', और 'दुर्' प्रातः, दुःख, निर्णय, निःसंशय दुस्साहस, दुःशासन, अहः, अहर्गण, अहर्पतिः इत्यादि शब्द इस बात का प्रमाण हैं। संस्कृत का ऐतिहासिक व्याकरण इन उलझनों को सुलझाने में अध्यापक का सहायक होगा। अध्यापक को चाहिए कि अपने विद्यार्थियों को व्याकरण का पाठ पढ़ाते समय यह पहले बता दे कि मैं पाठ पढ़ाऊँगा। आपके मन में जो कोई भी शङ्का हो उस का निवारण मेरे जिम्मे है। जब इस भावविनिमय और सहयोग से पाठ पढ़ाया जायगा तो कोई कारण नहीं कि बच्चों में व्युत्पत्ति और रुचि जागृत न हो। हमारे यहाँ व्याकरण द्वारा ईश्वर-साक्षात्कार होना कहा गया है। श्री काशी-विश्वनाथ-मन्दिर के सामने अभी भी पण्डित लोग सिद्धान्त का मौखिक पारायण करके मोक्षपद के लिप्सु दिखाई देते हैं। व्याकरण-शास्त्र भारतीयों की निजी सम्पत्ति है। खेद इस बात का है कि जब से इस में भारतीयों की अभिरुचि शिथिल हुई तभी से अपनी भाषा, भाव, भूषा और

संस्कृति की अवहेलना प्रारम्भ हुई। अब भारत स्वतन्त्र है। फिर नये सिरे से अभ्युत्थान की सीढ़ी पर चढ़ना है। पुरानी सम्पत्ति सारी-की-सारी कभी भी त्याज्य नहीं होती। उस में से गुणमय अशों को तो ग्रहण करना ही होगा। वैदिक सम्पत्ति तो हमारी है ही। लौकिक सम्पत्ति में से भाषाशास्त्र और दर्शनशास्त्र ये दो ऐसे विषय हैं जिन्हें छोड़ना हमारा राष्ट्रीय ह्रास होगा। भाषाशास्त्र को तो अपनाना ही होगा, इस के संस्कार जगाने ही होंगे तभी अध्यापक और अध्येता अपने प्रयत्न मे सफल होंगे। तभी हम कह सकेंगे—'परस्परं भावयन्त श्रेय. परमवाप्स्यथ' तथा 'तेजस्वि नावधीतमस्तु'।

क्रिया-प्रकरण—इस प्रकरण मे क्रिया-पद पर विचार होगा। प्राचीन प्रणाली के अनुसार 'नामाख्यातोपसर्गनिपातादव' यही क्रम अभीष्ट है। पर, सुगमता और सुन्दरता तथा सरलता के लिए अनुभव से ज्ञात होता है कि आख्यात यदि पहले आ जाय तो कोई विशेष विपर्यय न होगा। वाक्य में देखा गया है कि क्रिया-पद ही प्रधान कार्य करता है। क्रिया-पद वाक्य का आधार है जिस पर अन्य पद आश्रित हैं। क्रिया-पद वाक्य की आत्मा है जिस के बिना वाक्य-शरीर निर्जीव-सा है। पाणिनि मुनि ने भी कहा है—'सुप्तिङन्त पदम्' यहाँ सुबन्त को प्रथम स्थान दिया है। इस व्यत्यय के लिये हम विद्वानों से क्षमा चाहते हैं। इसलिए कि हिन्दी जानने वाले विद्यार्थी को यदि क्रिया-पद से संस्कृत प्रारम्भ कराई जाय तो उस का संस्कृत-वाक्य पर पूरा अधिकार हो जाता है। संस्कृत की क्रिया-पद-रचना ही ऐसी है। एक तिङन्तरूप से

कर्ता का स्वतः ही बोध हो जाता है अर्थात् भवति, पठति, वदति, लिखति, गच्छति, हसति स्वपिति इत्यादि अपने में एक पूर्ण वाक्य का काम दे सकते हैं। अनुवाद-विधि से पढ़ने-पढ़ाने वाले भलीभाँति समझ सकते हैं और समझा सकते हैं कि ऊपर के वाक्यों में कर्तृ-पद का अध्याहार करने में किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। इसी सुगमता का ध्यान रखकर यह क्रम रखने का विचार किया है। इस में यदि किसी सज्जन को आपत्ति हो तो वह लेखक से विचार-विनिमय करके शिक्षकवर्ग की सहायता करे।

संस्कृत-व्याकरण कितना सरल और सुबोध है। इस की कठिनाई का हौआ तो लोगों ने वृथा ही बना रखा है। और कुछ हमारे अनिष्टचिन्तक विदेशीय (अंग्रेज) पाठकवर्ग ने यह एक ढकोसला खड़ा कर दिया कि संस्कृत एक दुर्गम भाषा है और इसका व्याकरण नीरस, रूक्ष तथा कठिन है। भला, यह तो सोचिये कि जिस भाषा का शासन, जिसका संस्कार, जिसका विकास, जिसका प्रचार, जिसका परिष्कार समस्त भूमण्डल के पुस्तकालय के आदिम ग्रन्थ ऋग्वेद से होता चला आया है क्या उसका व्याकरण दुर्गम और दुरुह ही रहेगा? इस भूल को भुलाना होगा। यह तो ऐसी ही एक धोखाधड़ी है जैसा यह कहना कि भारतीय सब चीजें विदेशी चीजों से निकृष्ट हैं। जिन लोगों ने संस्कृत भाषा को मृत-भाषा कह दिया क्या वे उसके व्याकरण को सदोष ठहराने में चूक सकते थे? और कुछ न बन पड़ा तो यही प्रतिपादन करना आरम्भ कर दिया कि यह रूखा है, नीरस है। 'द्वादशवर्षमधीयते व्याकरणम्' इत्यादि कपोल-कल्पित बातें हैं।

वास्तव में संस्कृत-व्याकरण की पद्धति बड़ी ही वैज्ञानिक और सरल है। वैसे तो सरलता या कठिनता सापेक्ष है। हिन्दी-व्याकरण हमारे लिए सरल है और अंग्रेजी-व्याकरण कठिन। अंग्रेजों के लिए बिल्कुल इस से उलट। यदि हम यह धारणा विद्यार्थी के मन में प्रारम्भ से ही भरदें कि हिन्दी-व्याकरण का प्राचीनतम रूप संस्कृत-व्याकरण है तो उसकी रुचि इस इतिहास के विषय को जानने में अत्युत्कट हो जायगी। जिज्ञासा तीव्र हो जायगी। जिज्ञासा को जगाना ही रुचि को चमकाना है। एक बार रुचि हो जाय तो समझिये कार्य सिद्ध हो गया, शिक्षा का उद्देश्य पूर्ण होगया। बच्चे को ठीक रास्ते पर लाया गया। क्रिया-पद लीजिये। हमारे ऋषि मुनियों ने भाषा-शिक्षण को सरलतम बनाने के लिए इस का इतना सूक्ष्म विश्लेषण तथा विवेचन किया कि इस का सार दो हजार, एकस्वरात्मक धातु-समूह में रख दिया। इनमें से एक हजार के लगभग अर्थात् आधे एक श्रेणी के हैं। शेष अपवाद हैं। तभी तो पाणिनि ने कहा 'भूवादयो धातवः'। इन समकक्ष एक हजार धातुओं का पारायण इन की विविध रूप-रचना सहित जिस विद्यार्थी की समझ में आगया उसे मानो आधी संस्कृत आगई। इस से अधिक आप क्या सरलता चाहते हैं? ध्यान रखिये अठारह-बीस साल के अथक परिश्रम द्वारा अनेकानेक साधनों, प्रलोभनों और सहायक ग्रन्थों के होते हुए भी हम अंग्रेजी के इतने पारङ्गत नहीं हो पाते जितने कि अल्प परिश्रम से एक संस्कृत विद्वान् भाषा पर पूर्ण अधिकार जमा लेता है। इसका रहस्य पाणिनीय शिक्षाविधि है। धातुओं का वर्गीकरण किस अनूठे ढंग से किया गया है! धातुओं को बोल-चाल में विविध रूप-रचना को देखते हुए उन्हें दस समवायों

में समाम्नात कर दिया। पाणिनीय धातु पाठ के अनुसार संस्कृत में १६४४ धातु हैं। जिन मे १०११ भ्वादि, ७२ अदादि, २४ जुहोत्यादि, १३६ दिवादि, ३५ स्वादि, १५७ तुदादि, २५ रुधादि, १० तनादि, ६१ क्र्यादि, और ४१० चुरादि (स्वार्थणिजन्त) हैं। इन में भ्वादि, दिवादि, तुदादि और चुरादि एक कक्षा में तथा शेष दूसरी कक्षा में हैं। उन मे भी अदादि और जुहोत्यादि एक वर्ग में और स्वादि, रुधादि, तनादि तथा क्र्यादि इतर श्रेणी में बाँटे जा सकते हे। पहले चार वर्ग की विशेषता यह दीखती है कि उनमे प्रत्यय से पूर्व अकार सुनाई देता ह और धातु के मूलरूप और प्रत्यय क मध्य मे अ, य्, अ और अय विकरण रूप में पड़े दिखाइ देते हे। भ्वादि और तुदादि के समान अ में यह भेद पड़ता ह कि भ्वादि के अ से पूर्व आने वाले स्वर में गुण विकार हो जाता ह जो कि तुदादि में नहीं होता। अदादि मे और जुहोत्यादि धातु क मूलरूप और प्रत्यय क बीच में कोई भी ध्वनि विकरण रूप में नहीं आती। इस पर भी जुहोत्यादियों में धातु के मूल रूप का अभ्यास अर्थात् द्विरुक्ति हो जाती है। अवशिष्ट चार गणों में अनुनासिक नकार किसी न किसी रूप में चलता है। एक और भेद भी है—पहले चार गणों में तिङ् प्रत्ययों के पूर्व विकरण-सहित धातु का रूप एक समान रहता है और शेष छः गणों की मूल धातुओं के स्वर में तिङ् प्रत्ययों से पहले कहीं गुण विकार होता है कहीं नहीं।

इन दस गणों में विभक्त धातुओं का एक और वर्गीकरण है। एक वे जिनका क्रिया-फल कर्तृ-गामी है और एक वे जिनका फल पर-गामी है। एक ऐसी कियाएँ हैं जिन्हें कर्ता केवल अपने लिए ही करता है और दूसरी ऐसी हैं जिन को दूसरों

के लिए और तीसरी ऐसी हैं जो दोनों के लिए। इसी लिए इनका नाम आत्मनेपदी, परस्मैपदी और उभयपदी हैं। जैसे—पचति, पचते, यजति, यजते। यह भेद बड़ा सूक्ष्म है। भाषा की प्रारम्भिक अवस्था मे यह भेद भलीभाँति अनुसृत होता होगा, पर बाद मे यह दृष्टि से ओझल होता दिखाई देता है। क्योंकि पाली प्राकृत में यह भेद हमारे व्यवहार से उठ गया दीखता है। संस्कृत में कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य इस बात के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं कि कर्मवाच्य में आत्मनेपद का प्रयोग होता है।

इससे अधिक धातुओं का सुस्पष्ट वर्गीकरण क्या हो सकता था? भाषा को दर्पण की भाँति हमारे सामने रख दिया। यह वह आइना है जिस में संस्कृतवाणी अपने स्वाभाविक रूप में चलती फिरती दिखाई देती है। अध्यापक को चाहिए कि यह शीशा बच्चों के सामने रखे जिससे वे संस्कृत की झाँकी सुचारु रूप मे देख सकें और समझ सकें। इस प्रकार भारती के दर्शन से उन्हे आह्लाद होगा और संस्कृत-भाषा का रहस्य समझ मे आयेगा। पूर्ण चित्र उनके सामने आजायगा। वे उसे पहचान जायँगे और उस परिचय से ज्ञान की वृद्धि होगी। किस रीति से यह वर्गीकरण बालकों के सामने रखा जाय, यह तो अध्यापक की अपनी योग्यता पर निर्भर है। साधारणतया संस्कृत सिखाने का माध्यम तो राष्ट्रभाषा हिन्दी है, और उसको सिखाने की सरल तथा सुगम विधि अनुवाद प्रणाली है। क्रमानुसार ऐसे अभ्यास चुने जायँ जिन में एकमात्र एक २ गण का बोध कराया जाय और उनका विद्यार्थी के मन में निदिध्यासन हो जाय। केवल इतना मात्र कहदेना पर्याप्त न होगा कि "संस्कृत

में दस प्रकार के धातु हैं, उन के ये विकरण हैं, उनकी ये रूपरचनाएँ हैं, याद करलो"। धातुओं के वर्गीकरण का ज्ञान अनुवाद-सरणि द्वारा आगमनात्मक रीति से देना होगा। इस आगमनात्मक रीति में यह गुण है कि पाठ रोचक बन जाता है और अचिरकाल में अवगत हो जाता है।

काल—काल-भेद और उस के वाचक क्रियापद के रूप बतलाने के लिए स्वनामधन्य पाणिनि मुनि ने कैसी अच्छी युक्ति निकाली! वैसे तो पाणिनि का प्रत्येक शब्द विस्मयकारक है। पर, काल का विश्लेषण तथा वर्गीकरण अत्यनुपम हुआ है। 'ल' काल का वाचक है। काल-वाचक शब्दों की रूपरचना में जो भेद तथा विकार हमारी बोल-चाल में आते हैं उनका विशदीकरण क्या ही सुन्दर ढंग से किया है।

लट्	लोट्
लिट्	लङ्
लुट्	लिङ्
लृट्	लुङ्
लेट्	लृङ्

ल, में स्वरों के संयोग से और अन्तिम ध्वनि के योग से सारे भेद और विकार प्रत्यक्ष करा दिये हैं। अध्यापक का यह कर्तव्य है कि इस वर्गीकरण को यथावत् समझाने के लिए जितने भी शिक्षा-साधनों की और युक्तियों को प्रयोग में ला सके, लाये। पर इस में ऐतिहासिक दृष्टि बड़ी सहायक होगी। यदि संस्कृत हिन्दी का प्राचीनतम रूप है तो इस कालवाचक धातुओं की रूपरचना में कहाँ तक साम्य है। इतनी बात बच्चों

की समझ में आजाय तो व्याकरण का यह मुख्य भाग सरस और रोचक बन जाय। भाषा में परिवर्तन होता है, होता आया है, हो रहा है और आगे होता रहेगा। प्रकृति की और वस्तुओं की तरह भाषा परिवर्तनशील है। इन काल-वाची लकारों में भी परिवर्तन हुआ। उनकी रूप-रचना बदल गई। आज हिन्दी में इन दस विभिन्न कालवाचक लकारों में से केवल चार, और यह भी बिगड़े हुए रूप में मिलते हैं—लट्, लृट्, लोट् और विधि-लिङ्। शेष लकारों का व्यवहार उठ गया जैसे हमारे समाज में से कई प्रथायें उठ गईं, कई नई आ गईं और कई अप्रत्यक्ष रूप में आ रही हैं। लेट् तो रामचन्द्र जी के आने से पहले ही हम बोलना छोड़ बैठे थे और लिट्, लुट्, लङ्, लुङ् और लृङ् तुलसीदास से कई शताब्दियाँ पूर्व हम भूल बैठे थे।

अध्यापक को इस बात का स्मरण रहे कि शिक्षा में ज्ञात से अज्ञात की ओर जाने का सिद्धान्त बड़ा सहायक होता है। इस सिद्धान्त को लकार-शिक्षा में इस प्रकार चरितार्थ कर सकते हैं। यह तो मानी हुई बात है कि हिन्दी संस्कृत से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है। तब क्या लकारों में भी यही हाल है? यदि अध्यापक इस सम्बन्ध को स्थापित करदे तो क्या ही कहना। पाठ रोचक तथा सुबोध और सुगम हो जायगा। हिन्दी में तीन काल हैं। वर्तमान, भूत और भविष्यत्। इन कालों के साथ क्रिया के प्रकार भी हैं। जैसे—आज्ञार्थक, विध्यर्थक, निश्चयार्थक, सम्भाव्य। वर्तमानकाल के हिन्दी में सामान्य और सम्भाव्य दो भेद माने जाते हैं इसी प्रकार भविष्यत् में भी सामान्य और सम्भाव्य दो भेद होते हैं। भूतकाल में सामान्यभूत,

आसन्नभूत, पूर्णभूत, अपूर्णभूत, सन्दिग्धभूत और हेतुहेतुमद्भूत। इस प्रकार हिन्दी में दस रूप मिलते हैं। पर यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि ये दस रूप संस्कृत के ही दस लकार हैं। वास्तव मे बात यह है कि समय के फेर से हिन्दी में इस विषय में बड़ा अन्तर हो गया है। प्रत्यय आदियों का अन्तर तो आगे देखा जायगा जो कि रूपरचना का विषय है। संस्कृत के दस लकार अपने निजीरूप में भी हिन्दी में नहीं दिखाई देते। तुलना से पता लगेगा कि लट्, लोट्, विधिलिङ् और लृट् हिन्दी में मिलते हैं। शेष लकारों का प्रयोग हिन्दी से उठ गया। उनके लोप का कारण भाषाविज्ञ ऐतिहासिक दृष्टि से बतायेगे। वर्तमान में लट्, लोट् तथा विधिलिङ् और भविष्यत् में लृट् का प्रयोग हिन्दी में मिलेगा। अर्थात् यह लकार हिन्दी में तत्सम रूप में मिलते हैं। और शेष आधुनिक क्रिया-पद के कालवाचक क्रियारूप नई उपज हैं जो कि देश-काल के अनुसार हिन्दी में आगये। यह बात ऐसे हुई जैसे वैदिक संस्कृत से बदलते-बदलते लौकिक संस्कृत में आने तक लेट् लकार का प्रयोग लोकव्यवहार से उठ गया था। परन्तु जो विशेष घटना हुई वह थी भूतकाल के सारे रूपों का लोप होजाना। यथा—पठति, पठतु, पठेत्, पठिष्यति तो पढ़ता है, पढ़ो, पढ़े, पढ़ेगा, हिन्दी में मिलेगा परन्तु शेष का हिन्दी में तत्सम रूप में लोप है। इससे यह समझना चाहिए कि लङ्, लुङ् और लिट् तत्सम रूप में हिन्दी में नहीं आ पाये। भाषा का प्रवाह उस यात्री के समान है जो कि एक पड़ाव से चलता हुआ एक चीज यहाँ भूलता है दूसरी वहाँ छोड़ता है और कई एक नई साथ लेकर चलता बनता है। संस्कृत के

भूतकाल के रूपों का स्थान शनैः-शनैः कृदन्त प्रक्रियाओं ने ले लिया है। और यह शैली कृदन्त-बहुला संस्कृत साहित्य के अर्वाचीन काल में प्रचुर रूप में दिखाई देती है। वैदिक काल में क्रियापदों का बाहुल्य है, कृदन्तों का कम। ब्राह्मण ग्रन्थों में क्रिया-पदों का बाहुल्य है। बाणभट्ट तक पहुँचते-पहुँचते कादम्बरी के कई पृष्ठ उलटने के बाद कहीं एक क्रिया-पद मिलता है। क्रिया-पदों का काम कृदन्तों से अधिक लिया जाता है। गत्वा, गच्छत्, गन्तुम्, गतः का प्रयोग अगच्छत्, अगमत्, जगाम से कहीं अधिक है। परन्तु इनमें भी भूतकाल का विपाक बड़े ही विचित्र ढंग से हुआ है। उनका हिन्दी में कोई भी नाम लेवा न रहा। कहीं तो इन तीनों के स्थान में संयुक्त क्रियापद आगये। पर विशेषतः क्तान्त रूप ने ही आधिपत्य लेलिया है, और विचित्र घटना यह हुई जो संस्कृत में कभी नहीं हुई थी कि क्रियापदों में भी लिङ्ग भेद आगया। वह गया, वह गई, यह गः गन' और सा गता की ही देन है।

अध्यापक को चाहिए कि लकार का चित्र बाँधते हुए यदि यह आनुपूर्वी सम्बन्ध जोड़ दे तो लकार-ज्ञान भलीभाँति समवगत हो सकेगा। संस्कृत-व्याकरण पढ़ाने वाले को भाषा विकास का यह सिद्धान्त अवश्य दृष्टिगोचर रखना होगा कि भाषा बदलती है और बदलती भी सूक्ष्मरूप से है। और उस सूक्ष्मता को प्रकट करना ही व्याकरण पढ़ने-पढ़ाने का परम ध्येय है नहीं तो केवल तोता-रटन्त से न तो रुचि होगी और न भाषा रहस्य ही खुलेगा। इस विषय को समाप्त करने से पहले इतना बतादेना आवश्यक होगा कि हिन्दी में जो काल

वाचक अवान्तर भेद आये हैं वे इस की निजी सम्पत्ति हैं। भाषा का प्रयोजन-सम्पादन करने के लिए इन नए रूपों की समयानुसार प्रतीति होती रही। जब-जब बोलने वालों ने वे-वे अर्थ द्योतन करने के लिए नये नये ढग निकाले तो नये-नये रूपों की रचना होती गई। तभी तो हिन्दी में कालवाचक रूप कम हैं, परन्तु क्रिया के प्रकार (Moods) अधिक हैं। देखिये संस्कृत मे सातत्यबोधक क्रियारूप कोई नहीं, बाद में आवश्यकतानुसार हिंदीमें यह क्रिया-पद आगया। 'पढ़रहा है' 'पढ़रहा था' 'पढ़रहा होगा' का संस्कृत में अनुवाद होना असम्भव है। पठन् अस्ति या पठन् आसीत् और पठिष्यति इन हिन्दी के वाक्यों के बोधक नहीं हो सकते। हमारे पूर्वज लट् लकार के रूपों से ही सातत्य क्रिया का बोध करते होंगे। गच्छन् अस्ति या गच्छन् आसीत् यह ठीक संस्कृत नहीं जँचती और न ही ये साहित्यिक प्रयोग हैं।

इसी प्रकार आशीर्लिङ्, लुट् और लृङ् का प्रयोग वैदिक काल के लेट् की तरह हिन्दी से जाता रहा इनका स्थान वाक्यांशों या अन्य क्रिया-पदों और कृदन्त रूपों ने ले लिया। इसीलिए कहीं-कहीं तो हिन्दी से संस्कृत में अनुवाद करते समय कठिनाई उपस्थित हो जाती है।

संस्कृत संश्लिष्ट भाषा है। हिन्दी का रूप विश्लेषणात्मक है। संश्लिष्ट का अर्थ यह है कि संस्कृत में अव्ययों को छोड़कर शेष सब शब्द एक वाक्य में अपना अर्थ बताते हुए अपनी रचना के अनुसार उस सम्बन्ध को भी बताते हैं जो कि उन शब्दों का उस वाक्य के अन्य शब्दों से है। विशेषतः क्रिया-पद से। पद या तो सुबन्त होते हैं या तिङन्त होते हैं।

प्रस्तुत विषय के अनुसार तिङन्त लिए जाते हैं—

क्रिया-पद की रूपरचना अब हम क्रिया-पद की रूप-रचना की ओर आते हैं। यह तो साधारण नियम है कि अर्थ-भेद का द्योतन करने के लिये ही शब्द-भेद हुआ करता है। इसी अर्थ-भेद को बताने के लिए संस्कृत-क्रियापदों के साथ प्रत्यय लगते हैं। प्रत्यय कहते भी प्रति+अय को हैं। ये प्रत्यय क्या हैं? इस का पता लगना कठिन है। ये चिह्न मात्र क्या पूर्ण शब्दों के अवशेष हैं या स्वतः ही इन विभिन्न अर्थों के वाचक हैं इस बात का इदमित्थं ज्ञान होना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। कई इन्हें तद्, युष्मद् अस्मद् के रूपों के साथ जोड़ते हैं।

इन लकार-द्योतन करने वाले प्रत्ययों को हम दो भागों में बाँट सकते हैं। एक वे जिनको हम मुख्य कहते हैं दूसरे वे जो गौण कहलाते हैं। नीचे के ब्योरे से पता चलेगा कि लट् के प्रत्यय ही मुख्य हैं और शेष सब गौण अर्थात् लट् के प्रत्ययों में थोड़ा सा परिवर्तन करके दूसरे लकारों के प्रत्यय बनाये गये हैं।

ति	तः	अन्ति
सि	थः	थ
मि	वः	मः

लोट्, लिङ्, लङ्, लृट्, लृङ्, लुट् (प्रथम पुरुष को छोड़ कर) लुङ् (एक रूप को छोड़ कर) सब इन्हीं से निकले हुए हैं। लिट् वास्तव में काल-वाचक होने की अपेक्षा कर्ता की चरम पात्र दशा का वर्णन करता है जहाँ पहुँचने के लिए

यह क्रिया की गई हो। 'जगाम' का अर्थ भूत काल की अपेक्षा कर्ता की "पहुँची हुई दशा" का द्योतक है।

भविष्यत् की रूपरचना देखने मे पता चलता है कि संस्कृत बोलने वाले वर्तमान में अधिक रहते थे तभी तो लट् और लृट् के प्रत्यय एक ही हैं। केवल स्य मात्र से भेद दिखाया गया है। 'स्य' सन्नन्त के 'स' और कर्मवाच्य के 'य' का प्रतीक मात्र दिखाई देता है। वैसे ही लुट् के रूप भी प्रथम पुरुष में तृच् के ही हैं और मध्यम तथा उत्तम पुरुष में तृच् के साथ अस् के लट् के रूप हैं। लट् और लुट् का ऐसा उपेक्षात्मक प्रयोग यह जतलाता है कि ऐसा बोलने वाले की संस्कृति वर्तमान से अधिक सम्बन्ध रखती थी। इस प्रकार यदि देखा जाय तो लट् के प्रत्ययों के विकार से और कालवाची रूप बनते हैं। वस्तुतः है भी ठीक। व्यक्ति का अनुभव वर्तमानकालिक ही तो होता है। वर्तमान की अतीत स्मृति का नाम ही तो भूत काल है, और वर्तमान की आकाङ्क्षा को ही भविष्यत् कहते हैं। संस्कार-वश वर्तमान को अतीत की स्मृतिरूप में भूत कहा जाता है, और उस के आने की याद में भविष्य का आवाहन करते हैं। वर्तमान केन्द्र है। यह वह प्रकाश-बीज है जो भूत और भविष्य पर प्रकाश डालता है। इस व्यक्तमध्य का नाम ही जीवन है। इस व्यक्तमध्य में सब कर्म होते हैं। यह हमारे दर्शनशास्त्र का रहस्य है, जो भाषा-शास्त्र द्वारा प्रकट होता है क्योंकि विचार और वाणी का अटूट सम्बन्ध है। इस विवेचना-बुद्धि से यदि हम व्याकरण का अध्ययन-अध्यापन करें तो उस में रोचकता और सरलता लाना कोई कठिन

कार्य नहीं। कठिनता कहने से दूर नहीं होती। उसके लिए उपाय सोचने पड़ते हैं।

इस संस्कृत क्रिया-पद के वर्गीकरण में एक और बात ध्यान देने योग्य है। वह है आत्मनेपद और परस्मैपद का विवेक। इनका भेद इन शब्दों के अर्थ में छिपा हुआ है। आत्मनेपद–यहाँ चतुर्थी अलुक् तत्पुरुष समास है अर्थात् वह पद जो अपने आपके लिए प्रयुक्त हो और परस्मैपद—वैसे ही वह पद जो पर के लिये प्रयुक्त हो। संस्कृत बोलने वालों के मन में यह भेद शीशे की तरह स्पष्ट था कि अमुक क्रिया-पद का अमुक रूप परस्मैपद में प्रयोजनीय है और अमुक रूप आत्मनेपद में। जैसे कि यजति, यजते, पचति, पचते, बोलने वाला यह समझता था और सुनने वाला यह जान जाता था कि जब यजते का प्रयोग हुआ है तब अभिप्राय यह है कि कोई व्यक्ति यज्ञ-क्रिया कर रहा है जिसका फल कर्तृपदगामी है। वैसे ही यजति के प्रयोग से यह तात्पर्य समझा जाता था कि यज्ञ-क्रिया किसी दूसरे के निमित्त की जा रही है। इस से यह नहीं समझना चाहिए कि सारे ही क्रिया-पद दोनों पदों में होने चाहिएँ। बहुत से उन में हैं जिन्हें उभयपदी कहते हैं। भाषा व्यवहार पर अधिक आश्रित होती है। जैसे कि हमारी क्रियाएँ, आँख खुलने से आँख मीचने तक अर्थात् जन्म से मरण तक रूढ़ि के आधार पर चलती हैं। इस का प्रमाण हमें क्रियापदों का विशेष उपसर्गों के साथ विभिन्न पदों में मिलेगा। जैसे—विजयते, पराजयते, उपतिष्ठते, सन्तिष्ठते, उपयच्छते आदि। रूढ़ि की बात सर्वथा सिद्ध हो जायगी जब उपसर्गों द्वारा पदभेद और तदनन्तर अर्थभेद समझ में आजायगा। यथा—रतम् आदत्ते, मुखं व्याददाति।

इसी को अंग्रेजी में ईडियम अर्थात् रूढ़ि कहते हैं। समय पाकर यह आत्मनेपद परस्मैपद का भेद बोल-चाल से उठ गया। प्राकृतों में दीखता ही नहीं, हिंदी में भला कहाँ से मिलेगा? काल क्या नहीं करता। यह समय का हेर-फेर तो इतिहासवेत्ता इतिहास पढ़ कर बता सकेंगे, परन्तु भाषा इस का इतना स्पष्ट प्रत्यक्ष और अक्षरशः न्याय-सङ्गत प्रमाण है।

कर्मवाच्य में आत्मनेपद के प्रत्यय आते हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि क्रियाका फल कर्तृगामी ही है। मया पुस्तक पठ्यते अर्थात् मेरे से ही पुस्तक पढ़ी जाती है और किसी से नहीं। पर समय के फेर से प्राकृतों में यह भेद भी जाता रहा और कर्मवाच्य में भी परस्मैपद के प्रत्ययों का ही प्रयोग होने लगा। इस भेद का ज्ञान हमें अभ्यास से ही हो जाना चाहिए। कहते हैं—व्याकरण की अशुद्धियाँ सभी भाषाओं में लोगों को वैसे ही खटकती हैं जैसे कि खोटा सिक्का किसी भी देश में। जब तक सिक्के पर टकसाली मोहर नहीं लग जाती तब तक वह लोगों में चालू नहीं हो सकता। इस लिए घबराने की कोई बात नहीं। विद्यार्थियों को अभ्यास से नहीं डरना चाहिए। अभ्यास से बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ सिद्ध होती हैं। संस्कृत में अभ्यास होने से स्वतः ही यह भेदभाव स्पष्ट होता चला जायगा और नीरसता की अपेक्षा सरसता आती चली जायगी। साधारण से साधारण व्यक्ति के कान भी इस भेद से परिचित होते जायंगे और दुष्ट प्रयोग सुनने वाले के कानों में खटकने लगेंगे। यथा—'भारो न बाधते राजन् यथा बाधति बाधते' वाली बात हो जायगी।

परस्मैपद, आत्मनेपद समझाते-समझाते कर्मवाच्य भी साथ ले लेना चाहिए, क्योंकि इन दोनों अन्तिम प्रयोगों में प्रत्ययों की समानता है। रही बात 'य' लगाने की। यह चिह्न कैसे इस अर्थ का वाचक हुआ हम कह नहीं सकते। परस्मैपद में यह चिह्न दीखता है पर दिवादियों में ही। सम्भवतः दिवादिगण के क्रिया-पद भी कर्तृगामी फल वाले हों। नृत्यति दीव्यति, ऐसे दीखते तो हैं। वैसे ही कुप्यति, हृष्यति, पुष्यति, भी। और चुरादियों में भी जो 'य' दीखता है उसका सम्बन्ध भी कुछ न कुछ दिवादि और कर्मवाच्य के 'य' से अवश्य होगा, यों देखा जाय तो चुरादियों का 'अय्' प्रेरणार्थक है और एक स्वरात्मक धातु को द्विस्वरात्मक बनाने में सहायक होता है। इसलिए पठति, पठ्यते, पाठयति, पाठ्यते, नृत्यति, नृत्यते, नर्तयति, नर्त्यते, परस्पर कुछ मिले-जुले से शब्द दिखाई देते हैं। और ये वस्तुतः 'य्' या 'अय्' क्या 'इ' का रूपान्तर नहीं है? जो कि हमें आर्धधातुक लकारों में कई रूपों में व्यवहृत हुई दीखती है, और धातुओं को सेट्, अनिट् और वेट् के विभागों में बाँटती है, जिनका सम्भवतः आत्मनेपद, परस्मैपद और उभयपद से सम्बन्ध है। यह तो दिङ्मात्र है। विशेष जानकारी के लिए अधिक गवेषणा ही अभीष्ट है।

क्रिया-पद समझाते-समझाते हमें चाहिए कि हम क्रिया-पद का पूर्ण चित्र विद्यार्थियों के सामने रखें। जब आप किसी मूर्ति को देखें, तो पूर्ण आनन्द पूरी मूर्ति को देखने से ही मिलता है न कि खण्डित मूर्ति को। इसलिए क्रिया-पद का पूर्ण रूप पूर्ण ही कर देना चाहिए। क्या ही अच्छा हो कि अध्यापक वर्ग

भवति, अभवत्, भवतु, भवेत्, भविष्यति, भूयात्, भविता अभूत्, बभूव, अभविष्यत्, के साथ-साथ भूयते, भावयति, बुभूषति और बोभवीति का भी प्रयोग संकेत रूप में दिखादें।

इससे पहले कि आगे चला जाय, आवृत्तिरूप में हम ऊपर लिखे रूपों का अर्थ भली भाँति विद्यार्थियों के मन में बिठा दें और साथ में यह भी स्पष्ट करदें कि थोड़ा-थोड़ा रूप-भेद से अर्थ-भेद कैसे सम्पन्न होता है, तो यह प्रकरण रुचिकर हो जायगा और उसके संस्कार विद्यार्थी के मन में दृढ़ हो जायेंगे। यथा—ति 'लट्' से ही 'लोट्' विधिलिङ्' 'लङ्', 'लुङ्' 'लुट्' और 'लृट्' के प्रथम पुरुष एकवचन का सम्बन्ध है। 'लृट्' में तो केवल 'स्य' की अधिकता है और 'लुट्' में धातु से 'तृच्' प्रत्यय का योग हुआ है और 'लृङ्' में 'लङ्' 'लृट्' का समावेश है। 'लिट्' के प्रत्यय यह दिखाते हैं कि इसका वाच्यार्थ विशेषण के अर्थ का बोध कराता है। अर्थात् कर्ता कोई क्रिया करके किसी विशेष अवस्था में पहुँच चुका हुआ है और क्रिया समाप्त हो चुकी है। यह बात इसके विशेष प्रत्ययों से ही टपकती है।

रही बात कृदन्तों की ये वे साधन हैं जिसके द्वारा क्रियापद नाम का रूप धारण करते हैं और अनेक अर्थों के बोधक होजाते हैं। 'भू' से भवान्, भवन्, भवती, भविष्यन्, भविष्यत्, भविष्यन्ति, भवितव्य, भवनीय, भव्य, भूत, भूतम् भूता, और यजमान, दधान, जग्मिवस्, दास्यमान, भूत्वा भवितुं, स्मारम्-स्मारम्, इत्यादि प्रयोग उपेक्षणीय नहीं हैं।

इनका अर्थ और रूप-रचना संकेत रूप से समझा देना पाठ्य-पुस्तक के पढ़ाने में लाभकारक होगा।

संस्कृत में एक क्रिया-पद के कितने रूप हो सकते हैं इसका ब्योरा जरा सुनिये। उभयपदी धातु के सामान्यतः तीन पुरुष × तीन वचन × दश लकार × दो पद × तीन प्रक्रियाएँ = ५४० रूप होंगे। और कृदन्तों के मेल से प्रत्येक कृदन्त में ७२ बहत्तर रूप बनेंगे। इसलिए बात बड़ी सरल होगई। केवल रूप-रचना की कुञ्जी अपने पास हो तो धातुओं के प्रयोग सुगम हो जाते हैं। इसलिए अध्यापक को चाहिए कि व्याकरण की वृथा ही दिखाई देने वाली कठिनता को सरलता में बदले। अध्यापक की रुचि, उस की भाषा से जानकारी, उस का अध्यवसाय इस उद्देश्य के परम साधक हैं। व्याकरण की कठिनाई को रट लगाने से वह दूर न होगी। अध्यापक ऐसा वैद्य है जो अपनी दवाई सुचारु रूप में प्रयुक्त कर सकता है। जैसे वैद्य के पास विष और अमृत दोनों पदार्थ विद्यमान होते हैं। पर उनका सदुपयोग जीवन देता है और उनका दुरुपयोग मृत्युकारक होता है। केवल पढ़ाने की विधि जानने से यह समस्या नहीं सुलझ सकती। अध्यापक को व्याकरण का गम्भीर विद्वान् होना चाहिए और कुछ मनोविज्ञान से भी परिचय होना चाहिए। उसे शिक्षा-पद्धति से जानकारी होनी चाहिए। 'जहाँ चाह वहाँ राह'। जब अध्यापक मन में यह निश्चय करले कि व्याकरण जैसे विषय को रोचक बनाना है तो वह उस के लिये तैयारी करेगा और भाषा-शास्त्र का अध्ययन करेगा। तुलनात्मक दृष्टि अपनायेगा

तथा स्वाध्याय और अन्य भाषा-ज्ञान से अपने ज्ञान में वृद्धि करेगा जिससे कि वह अपने व्याकरण के पाठ को शिक्षा का पूर्ण अङ्ग बना सके। क्योंकि भाषा, चाहे नवीन हो या प्राचीन, वह विषय है, जिससे हमें आत्मज्ञान होता है। प्रकृति में दो ही चीजें हैं। नाम और रूप। नाम हमें भाषा सिखाती है और रूप साइंस। इसलिए नाम का महत्त्व बड़ा है। नाम से आत्मज्ञान, आत्मदर्शन और भगवत्प्राप्ति होती है। नामरूप-ज्ञान को ही पूर्ण ज्ञान कहते हैं।

संसार प्रकृति का खेल है। और प्रकृति मनुष्य द्वारा नाम और रूप से व्यक्त की जाती है। बिना नाम के कुछ नहीं, और यही नाम हमारे शास्त्रों में आत्मदर्शन का साधन बताया गया है। इसी नाम के आधार पर सारा संसार-चक्र चल रहा है। दार्शनिक विचार तो यह कहेंगे कि यह कल्पना है। दूसरे शब्दों में इसी को हम मानसिक सृष्टि भी कहते हैं। नाम पहले है या कर्म, यह कहना कठिन है। कर्म ही नाम का रूप धारण करता है। और निरुक्त मत के अनुसार 'सर्वाणि नामानि आख्यातजानि' हैं ? शब्द-भेद बताते समय नाम को पहले स्थान दिया गया है। परन्तु संस्कृत की रचना की दृष्टि से देखा जाय तो क्रिया-पद पूर्ण वाक्य का बोधक हो सकता है। इसलिए हमने सुगमता के लिए संस्कृत-शिक्षा-विधि में यही अभीष्ट समझा है कि पाठक्रम नाम की अपेक्षा आख्यात से करना ठीक बैठेगा। क्रिया-पद का बोध हो गया तो वाक्य आधे से अधिक या कई अंशों में पूरा ही समझ में आजाता है।

नाम-प्रकरण—इस क्रम के अनुसार आख्यात पढ़ाने के अनन्तर नाम की वारी आती है। क्योंकि "भाव-प्रधानमाख्यातं सत्वप्रधानानि नामानि" अर्थात् होने का नाम क्रिया है और जिसका अस्तित्व बन चुका वह नाम है। पहली कठिनाई जो हमें विद्यार्थी के मन से दूर करनी है वह है शब्दों का विभिन्न लिङ्गों में बँट जाना। यह ऐसी कठिनाई है जो सहज में ही सुलझाई जा सकती है। तनिक सावधानता से चलिये। ज्ञात से अज्ञात की ओर जाने की आवश्यकता है। वर्तमान से अतीत की ओर संकेत करना है। बालकों से पूछिये—बेटा-बेटी, कृष्ण-सरला, ब्रह्मपुत्र-गङ्गा, दुर्योधन-द्रौपदी, पिता-माता, भाई-बहिन, आत्मा-महिमा, देवता देवी, पवन-दही, राजा-रानी, वर-वधू, मां-बाप, समाज, तार, रेल, डाक, अखबार इत्यादि हिन्दी में लिङ्गदृष्टि से किन विभागों में पड़ते हैं और क्यों? उत्तर मिलेगा—यह विभाजन मनमाना है। ठीक है, आचार्यप्रवर पतञ्जलि मुनि भी ऐसा ही कह गये हैं। "लिङ्गमशिष्य लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य" 'महाभाष्य'। लोकाचार पर यह विभाजन छोड़ दिया गया। जैसा जिह्वा पर चढ़ गया वैसा प्रचलित होगया और प्रमाणित माना गया। पर यह होते हुए भी एक तत्त्व को खोजने की दृष्टि से हमें कार्य-कारण का सम्बन्ध अवश्य जोड़ना होगा, क्योंकि सत्य की खोज ही व्याकरण का ध्येय है। सत्यदेवाः स्यामेत्यध्येयं व्याकरणम्। सत्य का रहस्य तो संसार की अणु से अणु वस्तु में भी छिपा पड़ा है, भाषा का तो कहना ही क्या जो कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म मानसिक सृष्टि है।

संस्कृत नामों के विश्लेषण से पता चलेगा कि आख्यातज नाम होने के कारण प्रत्येक नाम के साथ प्रत्यय लगा हुआ है। और यह प्रत्यय लिङ्ग-भेद का सूचक है। पर इन प्रत्ययों से इस भेद का सम्बन्ध कैसे जुड़ा, यहाँ फिर मौन ही साधना पड़ता है। यह वह पहेली है जिस को सुलझाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। उपनिषद् स्त्रीलिङ्ग हैं तो सभासद् पुंलिङ्ग हैं। वाच् स्त्रीलिङ्ग तो पयोमुच् पुलिङ्ग हैं। आत्मन् पुंलिङ्ग है तो ब्रह्मन् नपुंसक लिङ्ग हैं। मनस् नपुंसकलिङ्ग है तो आशिष् स्त्रीलिङ्ग है। वैसे ही वासर पुल्लिङ्ग है, दिन नपुंसकलिङ्ग है। देह पुंल्लिङ्ग है तो इस के कई अवयवों के नाम पुंल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग अथवा नपुंसकलिङ्ग हैं। जैसे—नेत्रम, कर, जंघा, जिह्वा, शिरस् इत्यादि। ऐसे कई उदाहरणों से पता लगेगा कि यह शब्दों का जादू है जो बोलने वालों पर सवार हो जाता है और उन से मनमानी करवाता है।

मोटी दृष्टि से संस्कृत-भाषा की तह में प्रायः ऐसा दीखता है कि जो चीजें विशाल, प्रगतिशील, ओजस्वी, तेजस्वी, सत्त्वगुणप्रधान हों उन के साथ पुंल्लिङ्ग-वाचक प्रत्यय आते हैं। और जो वस्तुएँ सुन्दर, कोमल, लावण्यमय, शृङ्गाररसोत्पादक हों और रजोगुणप्रधान हों उन के वाचक शब्द स्त्रीलिङ्ग में आते हैं और जो चीजें निश्चेतन, कुरूप, मलिन, तमोगुण-प्रधान हों उन के वाचक नाम नपुंसकलिङ्ग में आते हैं। स्त्री-पुरुष वाचक शब्दों के प्रत्ययों में अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, आते हैं। जैसे—पिता, माता, भ्राता, स्वसा, राजा, राज्ञी, नदी, भगिनी, लता, धेनु, वधू, भानु, मनि, कवि आदि। इन में से प्रायः आ, ई, का सम्बन्ध स्त्रीलिङ्गवाची शब्दों से अधिक रहा

होगा। इसीलिए टावन्त और डीबन्त शब्द स्त्रीलिङ्गवाची हैं। ऐसे शब्द पुंलिङ्गवाची अधिक नहीं दीखते। यह आ और ई का मेल स्त्रीलिङ्ग से क्यों हुआ ? यह हम नहीं कह सकते। हाँ; इस का लाभ हिन्दी-भाषियों ने उठाया है। रस्सा और रस्सी गड़ा और गड़ी इस के उदाहरण हैं। जो चीज स्थूल और बड़ी है वह पुंल्लिग-वाचक शब्द से द्योतित होती है और जो सुन्दर, हल्की होती है वह स्त्रीलिङ्गवाची शब्दों से।

बच्चों के लिए कठिनता यह है कि वे अंग्रेजी की ग्रामर सीखते हैं और अंग्रेजी ढंग पर लिखा हुआ हिन्दी-व्याकरण पढ़ते हैं। और जब संस्कृत-व्याकरण प्रारम्भ किया जाता है तो वे बड़े उलझ जाते हैं। अंग्रेजी में लिङ्ग-भेद पुरुषत्व और स्त्रीत्व-वाचक हैं। हिन्दी वालों को चाहिए था कि वे हिन्दी की बनावट को पहचान कर व्याकरण लिखते। और बातों की तरह अंग्रेजीपन की यहाँ भी अन्धा-धुन्ध नकल की गई है।

वास्तव में हिन्दी में भी संस्कृत की देन के आधार पर लिङ्ग-भेद शब्दों की रूपरचना पर ही है। अर्थात् लिङ्ग-भेद प्रत्ययों से ही निर्धारित किया जासकता है। इसलिए बच्चों को प्रारम्भ से यह समझाना चाहिए कि संस्कृत में नामों की तीन वर्गों में बाँट मिलती है। जिस बाँट का आधार प्रत्यय हैं। इस बाँट में स्त्रीत्व-पुरुषत्व का भेद भी प्रत्ययगत भेद के अन्तर्गत दिखाई देता है। इसलिए इस बात को विशदरूप से स्पष्ट करना होगा कि यह लिङ्ग-वर्गीकरण अभ्यास से समवगत हो सकता है।

इसके अनन्तर जो विशेषता संस्कृत-नामोच्चारण में दिखाई देती है वह है वचन-भेद। एक और बहुवचन तो

सुगमता से समझ में आसकते हैं। एक और अनेक तो ठीक है। यह दो का बखेड़ा कैसा? घबराने की बात नहीं। जरा सोचिये। जैसे एक और अनेक का ज्ञान स्वाभाविक है वैसे ही दो का भी। युगल का ज्ञान तो प्रकृति-प्रदत्त है। दिन और रात, पृथ्वी और आकाश, माता-पिता, भाई-बहन, रथ के दो चक्र, जुवे के दो बैल, शरीर के दो हाथ, दो आँखें, दो पैर, दो कान, इत्यादि जोड़ों ने ही तो द्विवचन का ज्ञान मनुष्य को दिया है। इसी ज्ञान को संस्कृत-भाषियों ने भाषा में प्रकट किया; कोई अनोखी बात नहीं की। हां, इतना अवश्य है कि इसमें अतिव्याप्ति का दोष आगया है। ठीक भी है। वैयाकरण को जब किसी नियम का पता लगता है तब वह उसे सर्वत्र लागू करता है चाहे वैसी शब्दरूप-रचना साहित्य में प्रयुक्त न भी दिखाई दे या बोल-चाल में न भी आती हो। इसलिए द्विवचन का व्यवहार नामों में कुछएक शब्दों को छोड़ कर बहुत कम है, जो कि प्राकृत काल में ही लुप्त हो गया। विभक्तियों में यदि तीनों वचन एक समान होते या ऐसा कहिये कि उन का एकसा प्रचार बोलने वालों में होता तो भिन्न कारकवाची चौबीस के चौबीस शब्द विभिन्न होते। पर ऐसा नहीं हुआ। यह क्यों? इसका कारण यह है कि एकवचन में तो प्रायः भिन्न रूप थे ही। इनसे कम बहुवचन में और सबसे कम द्विवचन में। द्विवचन में प्रायः तीन ही रूप आठ का काम दे रहे हैं। मालूम होता है कि जिन शब्दों में द्विवचन का प्रयोग स्वाभाविक था उनमें उस नियम की अतिव्याप्ति और शब्दों पर प्रभाववती हुई है। यह विचार स्वरान्त और व्यञ्जनान्त दोनों प्रकार के नामों पर लागू होंगे।

आप पूछेंगे कि यह पद्धति क्रिया-पदों पर लागू नहीं? यह

क्या बात ? यदि द्विवचन नामों में विकसित नहीं हुआ तो क्रिया-पदों में क्यों ? क्योंकि तिङन्त प्रत्यय इसके साक्षी हैं कि उनमें द्विवचन एक और बहुवचन के सदृश पूर्णतया विकसित है। सम्भवतः इसका कारण यह हो कि तिङन्तों का सम्बन्ध नामों से कम है और बोलने वाले के मन में नाम के स्थान पर क्रिया के साथ सर्वनाम का सम्बन्ध नेदिष्ठ—समीपतम—है और इसीलिए तीन पुरुष वहाँ हैं और तीन यहाँ। अस्मद्, युष्मद् जैसे तीनों वचनों में प्रायः भिन्न प्रकृतियों से बने दीखते हैं वैसे ही क्रिया में भी इन पुरुषों के साथ आने वाले कालवाचक प्रत्यय अपना विभिन्न अस्तित्व रखते हैं। क्योंकि मैं और तुम 'दो तुम' या 'दो मैं' नहीं हो सकते और यह भेद दिखाने के लिए दो प्रकृतियों की आवश्यकता है वैसे ही कालवाची शब्दों में भी। तभी तो द्विवचन का विकास नाम की अपेक्षा सर्वनाम और तत्सम्बद्ध क्रिया-पदों में अधिक दिखाई देता है।

साधारणतया वाक्य में प्रधानपद कर्ता, कर्म और क्रिया ही समझे जाते हैं। क्योंकि क्रिया-पद का सम्बन्ध कर्ता और कर्म से ही अधिक होता है। कई वाक्यों में तो केवल क्रिया ही दीखती है, कइयों में कर्तृपद-सहित क्रिया और कर्तृ और कर्म सहित क्रिया, कभी तो सकर्मक, द्विकर्मक, अकर्मक आदि का भेद दीखता है। इनके अतिरिक्त क्रिया का सम्पादन कई साधनों द्वारा कई प्रयोजनों के लिए होता दीखता है। इसलिए इन सब क्रिया-साधनादि को कारक कहते हैं अर्थात् जिन के द्वारा क्रिया की अभिव्यक्ति की जाय। प्रत्येक क्रिया के लिए "अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्। विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं

चैवात्र पञ्चमम् ।" अमुक शब्द का क्रिया से कैसा सम्बन्ध है यह बात नाम के रूपान्तर द्वारा दिखाई जाती है। हमारे वैयाकरणों ने नाम के ऐसे आठ रूपान्तर कहे हैं जिन को कारक या विभक्ति की परिभाषा दी जाती है। नाम का प्रातिपदिक रूप आठ रूपों में विभक्त किया जाता है तभी इसको विभक्ति कहते हैं। सम्बन्ध और सम्बोधन कारकों मे नहीं गिने जाते।

"कर्ता कर्म च करणं सम्प्रदानं तथैव च ।
अपादानाधिकरणमित्याहुः कारकाणि षट् ।।"

नाम की विभक्तियों में रूपरचना से ज्ञात होता है कि संस्कृत बोलने वालों में नाम के प्रत्ययों के अनुसार रूपरचना होती थी। पाणिनि मुनि ने इन विभक्तिप्रत्ययों को 'सुबन्त' कहा है। 'स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस् ङेभ्याम्भ्यस् ङसिभ्याम्भ्यस् ङसोसाम् ङ्योस्सुप्'। जैसा पहले भी कहा गया है इन विभक्तिरूपों में एकवचन में आठ विभक्तियों के लिए छः विभिन्न चिह्न हैं, द्विवचन में केवल तीन और बहुवचन में पाँच । इसका अर्थ यह हुआ कि समानरूप वाले विभक्तिपदों में अर्थ-भेद का ज्ञान केवल प्रकरण द्वारा ही होता होगा। कारकों का पारस्परिक व्यत्यय और प्रकरणों के व्यत्ययों की तरह पाणिनि के कारक प्रकरण में देखिये। प्राकृत-काल में विभक्तिरूप और भी कम होगये और विभक्त्यर्थ उतने ही रहे। आधुनिक काल में शब्दों के विभक्तिरूप केवल दो रह गये—कर्तृ-रूप और कर्तृ-भिन्न। इसीलिए तो हिन्दी में तथा संस्कृत-सम्बद्ध अन्य भाषाओं में कर्तृ-भिन्न अन्य विभक्त्यर्थ दिखाने के लिए स्वतन्त्र शब्दों का प्रयोग करना पड़ा, जो बाद में केवलमात्र प्रत्ययों जैसे दिखाई देते हैं। जैसे–को, से, लिये, पर, में आदि।

व्यञ्जनान्त शब्दों से प्रत्यय सीधे जुड़े मालूम देते हैं। स्वरान्त शब्दों के साथ सन्धियोग होना स्वाभाविक था। इस शब्दोच्चारण में समानता के नियम ने काफी काम किया ऐसा प्रतीत होता है। तभी तो चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी एकवचन में 'मति' शब्द के दो रूप; 'धेनु', 'शुचि', 'धी' के दो-दो रूप मिलते हैं। इस रूपसिद्धि का अध्ययन बड़ा रोचक है। अस्मद्, युष्मद् को छोड़ कर सर्वनामों के उच्चारण की नामों के उच्चारण से तुलना करने पर यह ज्ञात होता है कि सर्वनामों में स्मै, स्मात्, स्मिन् और स्यै, स्याः स्याम् का प्रयोग नामों से भिन्न था। और तृतीया के बहुवचन का ऐ और भि इन दोनों रूपों की ओर संकेत करता है। नमेरैः, एभिर्मुनिभि इत्यादि शब्द इसके उदाहरण हैं।

सर्वनाम पढ़ाते समय इस बात की ओर ध्यान देना चाहिए कि उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुष को छोड़ कर शेष सब सर्वनाम अन्य पुरुषवाचक हैं। बोल-चाल में कहने वाला उत्तम पुरुष की परिभाषा द्वारा संकेतित होता है और जिसे कुछ कहा जाता है उसे मध्यम पुरुष कहा जाता है और इन दो से भिन्न को प्रथम पुरुष के नाम से पुकारा जाता है, अर्थात् इन दो से परे। प्रथम वैसे भी प्रतम का ही रूपान्तर है। जिस का अर्थ यह हो सकता है कि कहने वाले और सुनने वाले से अन्यतम जो कोई भी व्यवहार में आया पदार्थ हो वह प्रथम पुरुष से कहा जाता है। वास्तव में पुरुष दो ही होते हैं। तभी तो संकेतवाचक, सम्बन्धवाचक आदि जितने भी सर्वनाम हैं वे सब प्रथम पुरुष में रूपरचना में समानता रखते हैं। और इन में सूक्ष्म अर्थ-भेद से ही इदम्, एतत्, अदस् आदि विभिन्न

सर्वनाम मिलते हैं। बच्चों को इन का भेद भलीभाँति समझा देना चाहिये।

'इदमस्तु सन्निकृष्टे, समीपतरवर्ति चैतदो रूपम्।
अदसस्तु विप्रकृष्टे तदिति परोक्षे विजानीयात्॥'

सर्वनाम पढ़ाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ये सर्वनाम बड़े ही लाभ-दायक हैं। शब्द-रचना में इनसे बड़ी सहायता ली जा सकती है। विशेष कर अव्यय सर्वनामों से बनते हैं, यह संस्कृत की ही विशेषता है। –त्र, –तः,–था, –दा, प्रत्यय लगाने से कितने ही अव्यय बन जाते हैं। सर्वत्र, यत्र, तत्र, कुत्र, अत्र, परत्र, सर्वत, यतः, ततः, कुतः, अतः, सर्वथा, यथा, तथा, कथम्, इत्थम्, सर्वदा, कदा, तदा, एकदा, इत्यादि उदाहरण दिये जा सकते हैं। सम्भवतः इसलिए भी इनको सर्वनाम कहा जाता हो।

स्कूलों में प्रचलित संस्कृत-व्याकरण की पुस्तकों में अंग्रेजी व्याकरणों का अनुकरण देखा गया है, यह उचित नहीं। शब्द-विभाग प्रत्येक भाषा का अपने ढंग का होता है। संस्कृत में नाम के प्रकरण में विशेषण, क्रिया-विशेषण दोनों अन्तर्गत हैं। शब्द की रूप-रचना तथा प्रकरण पर ही यह अर्थ-भेद निर्भर है। किसी विशेष प्रत्यय की सहायता की आवश्यकता नहीं। विशेषण, विशेष्य की समानता होनी स्वाभाविक है। नपुंसकान्त विशेषण क्रिया-पद विशेषण का काम दे देता है। विशेष अव्यय क्रिया-विशेषणवाची हैं ही। सारांश यह कि संस्कृत-भाषा में हमारे वैयाकरणों ने भलीभाँति सोच-विचार कर यह निर्धारण किया हुआ है कि संस्कृत में शब्द चार प्रकार

के ही हैं। यथा—'नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च' इसी विभाजन पर हमें दृढ़ रहना चाहिए और बच्चों को इसी पद्धति पर चलाना चाहिए। वृथा आडम्बर से बच्चों पर बोझ ही पड़ेगा।

कारक पढ़ाते समय उप-पद विभक्ति और कारकों के विशेष प्रयोग की ओर विद्यार्थियों का ध्यान अवश्य दिलाना चाहिए। क्योंकि ये वे प्रकरण हैं जिनसे संस्कृत-वाग्धारा का पता लगता है और भाषा में रूढ़ि का ज्ञान होता है। वाग्धारा के ज्ञान के बिना बच्चे के मन में साहित्यिक उन्नति का अङ्कुर पनप नहीं सकता। जैसे कि क्रिया-पदों में उपसर्गों का प्रयोग महत्त्व रखता है वैसे ही नाम के प्रयोग में कारक अपना महत्त्व रखते हैं। किस विभक्ति में कौन शब्द किसलिए आया इसका ज्ञान उतना ही रोचक तथा शिक्षात्मक होगा जितनी कि इस बात की जानकारी कि अमुक क्रिया-पद के साथ अमुक उपसर्ग अमुक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

ऊपर कहा गया है कि शब्द चार प्रकार के हैं। इनमें से नाम आख्यात, उपसर्ग की व्याख्या किये जाने पर निपात शेष रह जाते हैं। पाणिनि के मतानुसार अव्ययों को ही निपात कहा जाता है। अर्थात् वे शब्द जो भाषा में ऐसे ही पड़े हुए हैं और जिनके प्रयोग के विषय में कोई रूपरचना-भेद नहीं करना पड़ता। वे भाषा में प्रयुक्त चले आते हैं। प्रधानतया वे क्रिया-विशेषण हैं। कई तो प्रातिपदिक के रूप हैं और कई विभक्त्यन्त रूप हैं, जिनका रूप शेष विभक्तियों में नहीं मिलता। परन्तु इनका निर्वचन तो अवश्य होगा ही। जो कि अतिकालान्तरित होने के कारण अन्तर्हित सा दिखाई

देता है। इनका निर्णय आधुनिक भाषावैज्ञानिक संस्कृत-सम्बन्धी अन्य भाषाओं से तुलना करके कर सकेंगे। जिस तरह कश्चित्, 'हुट्', सामि, 'सेमि', अन्तर 'इएटर,' दिवा 'वाइडे', तत्कृते 'फार दी सेक आफ' इत्यादि से सम्बद्ध दिखाये जा सकते हैं।

चौथा अध्याय

अनुवाद-शिक्षण

संस्कृत भाषा और उसकी विशेषता—संस्कृत धार्मिक, साहित्यिक तथा व्यावसायिक भाषा थी इसीलिए इसका अध्ययन मध्ययुग तक निरन्तर होता रहा। यही संस्कृत बोल-चाल की भाषा भी थी जिसका रूपान्तर पाली और प्राकृत हुआ। भारतीय संस्कृति को समझने का एकमात्र साधन संस्कृत है। भारत की सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक तथा लौकिक व्यवस्था की जानकारी के लिए संस्कृत का ज्ञान परमावश्यक है। बुद्धि-विकास के लिये भाषा का जानना अनिवार्य है। संस्कृत भाषा होने के नाते वे सब गुण रखती है जो कि भाषा पर लागू होते हैं। भावमय जगत् की व्याख्यात्री होने के कारण भाषा जनसाधारण के लिए उपादेय है। अपनी भाषा का ज्ञान सम्पादन करने के लिए उसके इतिहास, उद्गम और तत्त्वों की जानकारी होनी चाहिए। किसी भी जाति की आत्मा उसकी भाषा में छिपी होती है। यूनानियों का सौन्दर्य-प्रेम और विचारशीलता, रोम वालों की संगठननिपुणता और राजनीतिक विधानक्षमता, आर्यों की दार्शनिकता और विवरणात्मक प्रक्रिया इन देशों की अपनी अपनी भाषा में छिपी है।

अनुवाद के लिए आवश्यक गुण—संस्कृत पढ़ने से आधुनिक भाषाओं में प्रौढ़ता तथा वैदग्ध्य आ जाता है। ये

गुण अनुवाद मे आते हैं। अनुवाद वह प्रक्रिया है जिसमें विचारों का स्पष्टीकरण, विश्लेषण और रूपान्तर करते समय तुलनात्मक तथा सच्चे शब्द, अर्थ, और भाव का ज्ञान होना अनिवार्य होता है। अनुवाद एक कला है जो शिक्षापद्धति का मुख्य अंग है। इसमें तथ्य सिखाया जाता है। इसमें "नामूलं लिख्यते किंचित् नानपेक्षितमुच्यते" इस सिद्धान्त का अनुसरण किया जाता है।

अनुवाद एक कठिन अभ्यास है। कोष से हमें शब्द-भंडार मिल जाता है। व्याकरण शब्दों की रूप-रचना बताता है। कोष से शब्दार्थ का ज्ञान भी हो जाता है। इतनी सामग्री के प्राप्त हो जाने पर भी जब विद्यार्थी अनुवाद करने बैठता है तो उसका मानसिक संघर्ष आरम्भ हो जाता है। कौन सा शब्द किस अर्थ में ठीक बैठेगा, अनेक पर्यायों में से कौन-सा पर्याय उचित जँचेगा; इसका विवेक, इसका विचार, इसका तारतम्य उसे करना होगा। यह ठीक-ठीक शब्द चुनने की कुशलता, प्रवीणता तथा निपुणता अनुवादक में योग्यता और क्षमता लाने में सहायक होती हैं। इस प्रयोग से बुद्धि का संस्करण स्वाभाविक है। स्थल-प्रकरण, देशकाल, परिस्थिति, अवस्था, के अनुसार कौन-सा शब्द ठीक रहेगा इसके लिए विचारों की विशदता तथा नियतीकरण अनिवार्य है। इन्हीं अभ्यासों के कारण उसकी शैली बनेगी जो कि एक व्यक्ति का व्यक्तीकरण है। मूल-वाक्य की रचना सरल हो, निश्चित हो, जटिल हो, भाव व्यंग्यात्मक हों, लाक्षणिक हों, इसकी रूढि और मुहावरा भिन्न हो,—अनुवाद करते समय इन सब बातों को ध्यान में रखना पड़ता है।

अभ्यास की महत्ता—अनुवाद कोई खिलवाड़ नहीं। यह एक गभीर अनुसन्धान है। इस क्रियाकलाप से जो विद्यार्थी गुजरता है उसे भाषा के मर्म का पता चल जाता है। भाषा पर उस का प्रभुत्व हो जाता है। वाणी में सरलता, स्पष्टता, यथार्थता, सबलता और स्वाभाविकता की पुट इसी अनुवाद के प्रयोग से वाग्धारा में आ सकती है। अनुवाद के अभ्यास से शक्ति, उत्तेजना और बल आता है। भाषा एक बड़ा सूक्ष्म और मार्मिक व्यापार है। अन्तःकरण को छुभने वाले, हृदय को छूने वाले शब्दों पर जिसका अधिकार होता है उसी को लेखक या कवि कहते हैं। भाषा की रोचकता और लालित्य की व्याख्या दार्शनिक क्या करेगा। भाषा ही साहित्य का स्रोत है। यदि भाषा पर अधिकार होगा तो साहित्य में प्रवेश पाना सरल होगा। ठीक जँचने वाले शब्द की खोज साहित्यिक स्वास्थ्य के लिए परमोपयोगी है सत्य का अन्वेषण साहित्य का आदर्श है तो सौन्दर्य का अनुष्ठान उसका अंग है।

तथ्यानुवाद—तथ्यानुवाद वह है जिसमें न केवल शब्दोंके पर्याय ही दिये गये हों वरन्, मूल के भाव और आत्मा की प्रतिछाया भी अनुवाद में पड़ रही हो। अर्थात् जब हम कालिदास के किसी श्लोक का अनुवाद हिन्दी में करते हैं तो वह ऐसा होना चाहिए मानो कालिदास स्वयं हिन्दी में लिख रहा है। शब्दों का चुनाव, उनकी छान-बीन, स्वर और ध्वनि की अनुरूपता, अर्थों का सूक्ष्म भेद, शब्दों के रहस्य उनके चमत्कार का ज्ञान और विचार, अभ्यास से ही आता है। अभिधामूलक वाच्यार्थ के व्यङ्ग्यार्थ में परिवर्तित होने में ही भाषा में वक्रोक्ति और चमत्कृति आती है। साहित्य-

शास्त्र में गुण, दोष, अलङ्कार, रीति, ध्वनि आदि का पूर्ण विवेचन किया गया है। भाव-व्यक्ति और रचना के लिए अनुवाद परम सहायक तथा उत्कृष्ट साधन है। प्रकृति और प्रतिकृति का समीकरण शब्दशक्ति को स्फुरित करता है।

अनूद्य और अनुवाद की भाषा का गंभीर ज्ञान—
जो भी शब्द हम प्रयुक्त करते हैं उसमें उसका अपना इतिहास और बोलने वाले का इतिहास भरा पड़ा होता है। किन घटनाओं से कोई देश गुजरा है इसका पता लगाना हो तो उसकी भाषा को जाँचो। "आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च" 'नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण" "देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवन जरा" इन सब बातों का प्रत्यक्षीकरण भाषा के इतिहास से भी होता है। इसलिए अनुवादक को दोनों भाषाओं का मार्मिक ज्ञान होना अत्यावश्यक है।

जब अनूद्य भाषा अनुवाद की भाषा से बिलकुल ही भिन्न हो तब कठिनाई अधिक होगी। उसमें मस्तिष्क को अधिक परिश्रम, व्यायाम और आयास करना पड़ेगा। जैसे हिन्दी का संस्कृत में या इसके विपरीत अनुवाद करना इतना कठिन नहीं जितना कि संस्कृत का अरबी या चीनी में। यहाँ तो सम्प्रदाय का भेद है। जैसे हिन्दू का बौद्ध बनना इतना नहीं अखरता जितना मुसलमान। अनुवाद करते हुए दोनों परिस्थितियों का वातावरण, विचारविनिमय, आदान-प्रदान, सभ्यता-संस्कृति देखनी पड़ती है तब एक दूसरे की जान-पहचान और जाँच-पड़ताल करनी पड़ती है। जब अनुवादक को इन सब परिस्थितियों का पता हो तभी वह तथ्यानुवाद करने में सफल हो सकता है।

अनुवाद सजीव हो इसका पता परिणाम से ही लग सकता है। ध्वनिसमूह, शब्दरचना, शब्दभंडार, शब्दविन्यास इन सब का ध्यान रख कर जो अनुवादक चलेगा उसकी कृति मूल का सा आनन्द देगी।

अनुवाद और मूल में अन्तर—अनुवाद मूल का स्थान नहीं ले सकता। अनुवाद फिर भी गौण है और मुख्य मूल ही है। यदि अनुवाद मुख्य हो जाय तो संसार में मूल की कोई परवाह ही न करे। इसीलिए देखा जाता है कि अनुवाद अनेक होते हैं। वे भी एक ही भाषा मे, विभिन्न भाषाओं में हों तो कोई बात नहीं। इसका कारण यही है कि प्रकृति मे मूलतत्त्व छिपा रहता है जो कि प्रतिकृति में आ ही नहीं सकता। जो सौन्दर्य, जो आनन्द आपको जीते-जागते जीवन के नाटक और खेल में मिलता है वह चित्रपट या फोटोग्राफी में नहीं मिल सकता। जो सुख आप को गायक के मुख से गायन सुनने में आता है वह ग्रामोफोन के रिकार्ड से नहीं आता। गुरुमुख से सुना हुआ पाठ उस पाठ की अपेक्षा जो कि केवल पुस्तक पर से स्वयं पढ़ा हो शीघ्र और भलीभाँति हृदयंगम होता है। इसीलिए श्रुति की महिमा इतनी गायी गई है।

दूसरी बात जो ध्यान रखने योग्य है वह यह है कि प्रत्येक भाषा की अपनी अन्तरात्मा होती है। इसका दर्शन उस भाषा के मौलिक ग्रन्थों से ही होता है। सत्-चित्-आनन्द का अनुभव आत्मा के साक्षात्कार से ही होता है। प्रत्येक भाषा का अपना-अपना सन्देश होता है जिसे सुनाने के लिए वही भाषा योग्य होती है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, मिल्टन,

शैक्सपियर, दान्ते, होमर, गेटे, टालसटाय, जो कुछ अपनी भाषा में कह गये उसका रस उनकी उमी भाषा मे आसकता है। असमर्थ अनुवाद में वह नीरस भी हो जायँ तो कोई बड़ी बात नहीं। यह तो बड़े भाग्य की बात है कि मौलिक रचना को कोई सहृदय व्यक्ति अनुवाद में मौलिकता से अनुप्राणित करदे फिट्ज जैरल्ड जैसा महानुभाव ही उमर खैयाम की रुबाइयों के अनुवाद में रूह फूंक सकता है। बाईबल का अंग्रेजी आथोराइज्डवर्शन प्रमाणित माना जाता है। पञ्चतन्त्र का अनुवाद संसार की सब प्रधान भाषाओं मे मिलता है। आजकल श्रीमद्भगवद्गीता का अनुवाद बड़ी सफलता से कई भाषाओं में हो चुका है। कालिदास की मुख्य कृतियों का अनुवाद योरप की तथा अन्य देशों की भाषाओं में हो चुका है। पर इन सब के होते हुए भी मूल पुस्तक की महिमा कम नहीं हुई।

अनुवाद का महत्त्व—अनुवाद-कला का महत्त्व इससे कम नहीं हो जाता। आधाराधेय, उपजीव्योपजीवी का सम्बन्ध मूल और अनुवाद में हुआ करता है। इस बात को सदा दृष्टिगोचर रखना चाहिए। एक भाषा के धार्मिक, नैतिक, दार्शनिक, राजनीतिक, कथात्मक, परम्परानुगत, भौगोलिक, ऐतिहासिक, साम्प्रदायिक, सभ्यता और संस्कृति-मूलक सब प्रकार के भावों का तुलनात्मक तारतम्यमय अनुशीलन आनुषङ्गिक होता है। श्रेष्ठ, सेठ, राजा, राव, राय, राओ, राना, रात्रि, रात, रजनी, रैन, दग्ध, विदग्ध, वैदग्ध्य, स्नातक, निष्णात, तीर्थ, सतीर्थ्य, अन्तेवासी, भगवान्, भगवा (वस्त्र) इत्यादि शब्द भाषा के विविध स्तरों, कालों और अवस्थाओं

के सूचक है। शब्द भी गिरगिट की तरह रंग बदलते हैं। शब्द विनिवेश से एक से नए अर्थ पैदा हो जाते हैं। वह गया था, वह ही गया था, वह गया ही था—इनमें कितना अन्तर है यह भाषाविज्ञ अच्छी तरह जानते हैं। अप्रत्यक्ष रूप में भाषा के अनुवाद से विचारों में संयम आता है। अनुवाद मे विचारों के विनिमय का अभ्यास होता है। संस्कृत की *आध्यात्मिकता, तथा दार्शनिकता, यूनानी की सौन्दर्यप्रियता,* रोम की लातीनी की शासन व्यावहारिकता और इसी तरह अन्य भाषाओं की अपनी अपनी विशेषता और देन होती है।

शिक्षा में निरीक्षण, परीक्षण, समीक्षण, का अचूक, स्पष्ट, शुद्ध विवरण या अङ्कन आवश्यक है। क्योंकि इस प्रयोग से यथार्थ निगमन या आगमन हुआ करता है जो कि तारतम्य तथा तुलनात्मक विधि से हो सकता है। 'इस विधान द्वारा सम्पादित ज्ञान को भाषा द्वारा प्रकट करना ही शिक्षा का परम ध्येय है। ये चार उद्देश्य संक्षेप में इस प्रकार दिये जा सकते हैं—१. अचूक निरीक्षण; २. शुद्ध अङ्कन; ३. ठीक-ठीक तुलना; ४. ठीक ठीक अनुमान और वर्गीकरण तथा स्पष्ट रूप से बलपूर्वक इस व्यापार का वर्णन इन सारी बातों का प्रयोग अनुवाद प्रक्रिया में विधिपूर्वक किया जाता है। शिक्षा के सारे अङ्ग अनुवाद-विधि में पाये जाते हैं जो कि संस्कृत अध्ययनाध्यापन का प्रधान अङ्ग है।

संस्कृत तथा हिन्दी आदि आधुनिक भाषाएं—हिन्दी जैसी आधुनिक भाषाओं के शिक्षण में ऊपर लिखी बातें आ नहीं सकतीं क्यों कि सामयिक होने के कारण ये अतिपरिचित हैं। विचारों की तीव्रता, तीक्ष्णता, सूक्ष्मता, गहनता और

संयम जितना संस्कृत में पाया जाता है उतना हिन्दी तथा अन्य आधुनिक भाषाओं में नहीं। संस्कृत में बुद्धि को परिश्रम अधिक करना पड़ता है जिससे ज्ञान परिपक्व होता है। यह तो निर्विवाद है कि केवल हिन्दी में शिक्षा होने से ज्ञान अधूरा रहेगा जब तक कि उस ज्ञान की भित्ति संस्कृत की आधारशिला पर खड़ी न की जाय। हिन्दीभाषा का ज्ञान एकदेशीय है तो संस्कृत का ज्ञान सर्वांगीण और व्यापक है। हमारे देश के लिए वह दिन घोर बौद्धिक पतन का होगा जब हिन्दी की शिक्षा में संस्कृत की उपेक्षा होगी। एक केवल साहित्यिक है दूसरी वैज्ञानिक। संस्कृत की दार्शनिकता हिन्दी की रसात्मकता से कहीं ऊँची है। संस्कृत का पाणिनि हिन्दी में कहाँ मिलेगा। संस्कृत सार्वभौम हो सकती है हिन्दी एकदेशीय। संस्कृत द्वारा सौंदर्य, सत्य और शिव का शिक्षण मिलता है। नैतिकता और संस्कृति संस्कृत से ही सुगमता से सीखी जा सकती है। इन सब बातों के बुद्धिविषयक विचारों के ताने बाने में संस्कृत का सौन्दर्य-सूत्र अधिक मात्रा में ही दीखता है। यह केवल बाहिर से रंगे-पोते चित्र की बात नहीं है, स्वाभाविक और निजी मूलतत्त्व जो हमें संस्कृत में मिलते हैं वह हिन्दी में कभी नहीं मिल सकते। वेदों की विद्या, व्यास की विवृति, वाल्मीकि की मधुरता, दर्शनों की दार्शनिकता, उपनिषदों की आध्यात्मिकता अपने उदाहरण आप ही हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि अनुवादप्रणाली शिक्षा में उपादेय तो है पर अनुवाद मूल का स्थान नहीं ले सकता।

संस्कृत पर यह दोष लगाया जाता है कि केवल संस्कृत पढ़ने से भावों में संकोच आजाता है, परन्तु ऐसा कहना

सर्वथा भ्रम है। संस्कृत तो परमोच्चज्ञान की भाषा ठहराई जा सकती है जिस भाषा में आत्मैक्य, वेदान्त, और वसुधैव कुटुम्बकम् जैसे ऊँचे ज्ञान की चर्चा हो। उसके अध्ययन से संकीर्णता की संभावना कैसी ? । जिस भाषा द्वारा चीन, जापान, कोरिया तक बौद्धधर्म का प्रचार हुआ उस पर संकीर्णता का आरोप ठीक नहीं जॅंचता। विज्ञान के इस युग में योरप की भाषाओं का संसार में प्रचार अधिक होगया है पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि संस्कृत हेय हो गई है। भौतिक साइंस की शिक्षा देने वाली योरप की आधुनिक भाषाओं का जितना अधिक प्रचार होगा उतना ही अधिक प्रयोग संस्कृत का होना चाहिए जिससे साइंस की गैसों से भरा विषैला वातावरण, जिसमें सदा युद्ध के, विध्वंस के, विनाश के बादल मंडराते रहते हैं, शुद्ध दूर हो सके। ऋषियों की देववाणी में वह सत्ता है जो संसार में फिर से रामराज्य स्थापित कर सकती है। "ईशावास्यमिदं सर्वम्" "कर्मण्येवाधिकारस्ते", एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" वाले पाठ जो संकीर्ण जगत् को उदार और उदात्त बना सकते हैं संस्कृत के अतिरिक्त और कहां मिलेंगे ?

प्रतिभाशाली व्यक्तियों को शिक्षा यदि केवल उनकी अपनी बोली में ही दी जाय तो भी कोई हानि नहीं होती, परन्तु जनसाधारण के लिए, यदि आप उसे सभ्य या मानव संस्कृति का प्रेमी बनाना चाहते हैं, तो संस्कृत का शिक्षण अनिवार्य है। बिना संस्कृत के विचार-संयम क्रमबद्ध भाषा की वाचनिक शक्ति तथा विचारों की प्रौढ़ता आ नहीं सकती। एक कुशाग्र-बुद्धि और चञ्चल स्वभाव वाले व्यक्ति के विचारों और वाक्-शैली में गाम्भीर्य संस्कृताध्ययन से ही आसकता है।

संस्कृताध्ययन में जो बात आजानी चाहिए वह है सापेक्षता तथा तुलनात्मक ज्ञान। जिस से निर्णय करने वाले की जाँच ठीक होसके। भारत की राष्ट्रीयता अटारी से कटक और काश्मीर से कुमारी तक संस्कृत के सूत्र में पिरोई तो जा सकती है, पर इस-के साथ तुलनात्मक ज्ञान के लिए अन्य भाषा का ज्ञान श्रेयस्कर ही होगा।

अनुवाद-पद्धति द्वारा भाषान्तर करने में विद्यार्थी को विशेष गंभीर तथा एकाग्र रहना पड़ता है। इस से वह कला में निपुणता प्राप्त करता है। उस के विचार परिष्कृत और संस्कार दृढ़ होते जाते हैं। अनुवाद-पद्धति द्वारा भाषान्तर करना तो प्राणवायु को संगीन में परिवर्तित करना है। यह वह अवस्था है, जिसके प्रभाव से हमारा मन और मस्तिष्क प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। अपनी भाषा का पढ़ना तो अजायबघर की तसवीरों को देखने जाना है और प्राचीन भाषा का पढ़ना कलाकार बनना है। एक तो भाषा का हितैषी बनाती है और दूसरी मर्मज्ञ।

योग्य-अध्यापक और उसके कर्त्तव्य—यह भूल है कि जितनी छोटी श्रेणी हो उतना ही कम योग्यता का अध्यापक होना चाहिए। इस के विपरीत यह समझना चाहिए कि प्रारम्भिक शिक्षा योग्यतम व्यक्तियों के हाथों में होनी चाहिये तभी कोई शिक्षा-विधि सफल हो सकती है। कोई भी क्रम क्यों न अपनाएँ। परिणाम अध्यापक की वैयक्तिक योग्यता पर निर्भर है—

> श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था
> सङ्क्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।

नवनीत स्वादु न निसकाणा
पुंसि प्रतिष्ठापयितव्य एव।

पाठ्यविषय का ज्ञान हो और पढ़ाने में रुचि हो तो अध्यापक शिक्षण-विधि को आप ढूंढ़ निकालता है। कई तो यह भी कहते हैं कि विधि आती हो तो पाठ्यविषय के ज्ञान की आवश्यकता ही नहीं। पर बिना दाम काम कब तक चलेगा? विचार सामग्री और विधि-विधान दोनों होने चाहिएँ। शिक्षा के साधारण सिद्धान्तों से परिचय तो होना ही है। 'अज्ञात से ज्ञात,' 'स्थूल से सूक्ष्म' 'उदाहरणों से नियम' 'सुगम से कठिन की ओर' इत्यादि नियम देशकालानुसार प्रयुक्त किये जाने चाहिएँ। पाठ्यविषय की कठिनाई को आँखों से ओझल नहीं करना चाहिए। कठिनाई से डरना भी नहीं चाहिए। उसको सुलझाना चाहिए। यही तो अध्यापक का कर्तव्य है। कठिनाई या सुगमता सापेक्ष विषय हैं। व्याकरण को रोचक कैसे बनाया जा सकता है इसी ध्येय से विधिक्रम का विन्यास होना चाहिए। प्राचीनकाल में काव्य का आश्रय लिया जाता था। वासुदेवविजय, भट्टिकाव्य, इसी बात के उदाहरण हैं कि सुकुमार-मति बालकों को व्याकरण हृदयङ्गम कैसे कराया जाता था जिस से इन्हें अरुचि न हो। आज का ज़माना आराम का है। सुगमता और सरलता को लक्ष्य समझा जाता है, पर कठिनाइयों का सामना करना सिखाना भी शिक्षा का अभिप्राय है। 'मार्गं पदानि खलु ते विषमीभवन्ति'। जीवन कोई फूलों की शय्या नहीं। इसमें काँटे भी हैं जो मार्ग को दुर्गम बनाते हैं। बच्चों को इन विषमताओं से डरना सिखाना शिक्षक का काम नहीं।

प्रारम्भिक पाठ्य-पुस्तकें और पाठविधि—संस्कृत की प्रथम पुस्तक बड़ी सावधानी से तैयार करनी चाहिए। पूर्वापर का सम्बन्ध सुचारु रूप से ध्यान में रखना चाहिए। पाठ में वही सामग्री आनी चाहिए जो पूर्व में आयी हो जिससे कि ज्ञात से अज्ञात की ओर चलने में बाधा न हो। पाठ क्रम-बद्ध होने चाहिएँ। पहली पुस्तक में आवश्यक विषय इस प्रकार दिया जा सकता है—परस्मैपद—भ्वादि, तुदादि, दिवादि, चुरादिगण धातु लट् लकार में, अकारान्त पुंलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग आकारान्त स्त्रीलिंग, सर्वनाम, लोट् लकार, इकारान्त पुंलिङ्ग, ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग, तद् एतद् किं यद्; विधिलिङ्, उकारान्त पुंलिङ्ग; लङ् लकार, इकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द, ऋकारान्त पुंलिंग शब्द; लृट् लकार, संख्या वाचक शब्द युष्मद् अस्मद्, क्त, क्त्वा, तुम् प्रत्यय। नाम प्रमुख-प्रमुख आने चाहिएँ। अभ्यास में हिन्दीवाक्य तथा संस्कृत वाक्य पाठानुरूप ही होने चाहिएँ। दूसरी पुस्तक में इसी क्रम से पाठक्रम इस प्रकार रखा जा सकता है।

आत्मनेपद—भ्वादि लट् स्वरसन्धि; लोट्, विसर्गसन्धि; लृट् लकार, कर्मवाच्य, भाववाच्य, हलन्तशब्द, तुलनावाचक विशेषण, समास।

पहली पुस्तक में बिलकुल सरलता और सुगमता का ध्यान रखा गया है। सन्धि का विषय दूसरी पुस्तक में रखा गया है। प्रत्येक पाठ के अनन्तर उचित रूप में अभ्यास आने चाहिएँ। तीसरी पुस्तक में इन पहिली दोनों पुस्तकों की आवृत्ति होनी चाहिए जिस में व्याकरण को गौण रखा जाय परन्तु प्रयोगात्मक विधि से व्याकरण का अभ्यास कराया जाय।

पाठ ऐसे चुने गए हों जिनमें संस्कृत संस्कृति, भारतीय धर्म, नीति और इतिहास में प्रवेश पाने के लिए प्रयत्न किया गया हो। इस प्रकार की तीन पुस्तकों के पढ़ने के अनन्तर विद्यार्थी किसी सरल रचना को पढ़ने में समर्थ हो सकेगा। वह वाल्मीकि रामायण तथा व्यासकृत महाभारत या कालिदास के रघुवंश को सुगमता से पढ़ सकेगा। इस तीसरी पाठ्य पुस्तक के साथ व्याकरण की पृथक् पुस्तक भी पढ़ाई जा सकती है।

प्रथम पुस्तक के पाठों में इस बात का ध्यान रहे कि सुबन्तों तथा तिङन्तों के उच्चारण में कारकों और लक्षणों को समुच्चय रूप में पढ़ाया जाय और दोनों को पाठों में एक ही जगह रखा जाय, व्यर्थ की घोंट कोई लाभकारी नहीं। स्मरणशक्ति इस अवस्था में तीव्र होती है, इसलिए इस आयु में धातुरूपावलि और नामरूपावलि याद करादेनी चाहिए। यह स्मृति भाषा की ज्ञानवृद्धि के लिए उतनी ही आवश्यक है जितनी गणित में पहाड़े, भूगोल में दिशा-ज्ञान, ज्यामिति में बिन्दु, रेखा आदि का लक्षण, इतिहास में संवत, सन्, विज्ञान में कार्य-कारण का सम्बन्ध और भाषा में वर्णमाला। विशेष ध्यान इस बात पर दिया जाना चाहिए कि नवीन ज्ञान के प्रत्येक अंग को निश्चित रूप में पठनविधि में लिया जाय और उसका अधूरा ज्ञान न दिया जाय। ज्ञान के संस्कार प्रबल, दृढ़ और रोचक ढंग से कराये जायँ। अनुवाद-प्रणाली का सम्यक् रूप से आश्रय लिया जाय। हिन्दी से संस्कृत में अनुवाद के लिए ऐसे वाक्य हों जिनमें व्याकरण के ज्ञान का सदुपयोग किया जाय।

प्रारम्भिक पुस्तक मे शब्दभण्डार भी सुगम और थोड़ा होना चाहिए। संस्कृत प्रथम पुस्तक में जहाँ तक हो सके ऐसे शब्द प्रयुक्त किए जायँ जिनके रूपों से हिन्दी में भी विद्यार्थी परचित हों। क्योंकि हमारी पाठ्यविधि जहाँ तक हो सके हिन्दी से संस्कृत की ओर जाने वाली होनी चाहिए। विद्यार्थी को यह पता है कि हिन्दी का प्राचीनरूप ही संस्कृत है। अनुवाद में रूपान्तर ही तो करना होता है। संस्कृत हिन्दी मे तो भेद ही कम है। शब्दों की रूपरचना में सुबन्त-तिङन्तों की विभिन्नता का ही तो अन्तर है। नहीं तो तत्सम और तद्भव के प्रयोगों द्वारा संस्कृत हिन्दी का सम्बन्ध जुड़ सकता है। इस पाठविधि में एक कठिनाई के उपरान्त दूसरी कठिनाई को समेटना चाहिए। उतावली करने की आवश्यकता नहीं। धीरे-धीरे आगे चलना चाहिए। अधीरता से काम बिगड़ेगा। कहीं आगे दौड़ पीछे चौड़ वाली बात न बने। जो भी नया पाठ्य विषय पढ़ाना हो तो उसका परिचय अवश्य दिया जाना चाहिए और जितना छात्रों ने पढ़ लिया हो उसको भी प्रोत्साहन मिलना चाहिए। सफलता का मूल उत्साह होता है जो क्रमिक सफलता के ज्ञान से सम्पादित होता है।

संस्कृत का उच्चारण—*सौभाग्यवश संस्कृत का उच्चारण* इतना नहीं बिगड़ा जितना कि अंग्रेजी का। अंग्रेजी के हिज्जे इस बात का प्रमाण हैं कि बोलने लिखने में बड़ा अन्तर आगया है। परन्तु संस्कृत की लिपि में इसके वैज्ञानिक तथा ध्वनिसंकेत मूलक होने के कारण यह दोष न आ पाया। पाणिनि के समय के संस्कृत उच्चारण में और आजकल के उच्चारण में तनिक भेद

आगया है। श्रुति काल में बड़ी सावधानी वर्ती जाती थी कि किसी प्रकार की उच्चारण में त्रुटि, दोष न हो पावे। शिक्षाशास्त्र का विषय ही शुद्ध उच्चारण था। "दुष्ट: शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह" का सिद्धान्त लागू होता था। कालवश उच्चारण में किञ्चिन्मात्र भेद आगया है। यथा 'ऋ' स्वर का बोलना कठिन सा हो गया। पाली लिपि में, अशोक के लेखों मे यह स्वर नहीं मिलता। प्राकृत में यह कहीं अ, इ, उ, के रूप में मिलता है यथा मओ (मृगो) इसि (ऋषि) पुच्छदि (पृच्छति)। महाराष्ट्र में इसे 'रु' जैसा बोलते हैं और उत्तरी-भारत मे इसे 'रि' का रूप दिया जाता है। मूर्धन्य 'ष' की भी यही दशा हुई है, इसने कहीं तालव्य कहीं दन्त्य और कण्ठ्य का रूप धारण किया है। हिन्दी के ड़ ने संस्कृत ढ पर प्रभाव डाला है संस्कृत पढ़े लिखे भी दृढ़ लिखेंगे और मुद्रित तो ऐसा पाया ही जाता है। पर, यह असंस्कृतरूप है। ऐ और औ के उच्चारण में भी कुछ अन्तर पड़ गया है पर यह हिन्दी में ही आया है। संस्कृत रूप में तैल और औत्सुक्य ही बोला जायगा हिन्दी में ऍ ऑ का उच्चारण हो गया है। विसर्ग भी अब कई जगह अ: नहीं बोले जाते, ऍ: जैसा उच्चारण सुना जाता है। वैसे ही शब्द का अन्तिम 'अ' और बीच मे आया 'अ' लुप्त सा होता जा रहा है जैसे "राम् वन् गमन्"। यह प्रकृति प्राकृतिक सी प्रतीत होती है पर इन उच्छृङ्खलताओं को रोकना चाहिए। जहां तक हो सके प्रामाणिक उच्चारण ही रखना चाहिए, पर देश-कालवश थोड़ा सा परिवर्तन आ ही जाता है। जैसे बंगाली 'अ' संवृत है, पाणिनीय विवृत और संवृत भी। 'विवृत

स्वराणाम्, ह्रस्वम्यावर्गस्यप्रयोगे मंडनम्' । भारत में संस्कृतो-च्चारण की तीन शाखाएँ हैं बंगाल, बनारस और महाराष्ट्र । इन सब में महाराष्ट्र शुद्धतम है । संस्कृत का महान् व्याकरण, निरुक्त, और शिक्षा शास्त्र, इस बात का साक्षी है कि इस प्रकार के भाषा सम्बधी गवेषणात्मक और तथ्य पर पहुँचाने वाले ग्रन्थ और कहीं भी न मिलेंगे। शिलालेख, संस्कृत वर्णमाला की दूसरी भाषाओं में प्रतिलिपि उच्चारण के प्रति संकेत कर सकते हैं। तामिल, तिलगू, चीनी, तिब्बती, यूनानी भाषाओं में संस्कृत का उच्चारण उन-उन भाषाओं के निजी उच्चारण से रगा तो अवश्य गया होगा पर अपने निजी स्थान-प्रयत्न को भूला न होगा। संस्कृत का उच्चारण बिगड़ने की संभावना कम है क्योंकि लिपि में प्रत्येक ध्वनि के लिए एक वर्ण रखा गया है। जो बोला जाता है वही लिखा जाता है। -

आगमनात्मक (Inductive) निगमनात्मक (Diductive) विधि—उदाहरणों से नियम निकालना आगमनात्मक विधि कहलाती है। निरीक्षण, परीक्षण, समीक्षण, द्वारा किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करना इस विधि का ध्येय होता है। निरीक्षण और तर्क द्वारा भाषा के मौलिक तत्त्व स्मृति में अंकित नहीं किये जा सकते। वहां तो गणित के पहाड़ों की तरह रट ही लगानी होगी। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' वाले सिद्धान्त का परित्याग कहीं भी न करना चाहिए। 'युक्तवेष्टस्य कर्मसु' वाली नीति हर जगह लाभदायक होती है। व्याकरण में आगमनात्मक विधि का अनुसरण किया जासकता है। सामान्य से विशेष की ओर चलना, इतिवृत्त से नियम निकालना ज्ञान-सम्पादन की प्रक्रिया है,

पर केवल यही प्रक्रिया नहीं, इस से विपरीत निगमनात्मक विधि भी ध्यान देने योग्य है। दोनों का प्रयोग देशकालानुसार करना चाहिए। यह कहने की बजाय यह नियम हमने इन उदाहरणों से सीखा है यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि हमारे पूर्वज विद्वानों- व्याकरणाचार्यों, महामान्य पाणिनि महाराज जैसे वैयाकरणों ने ये नियम बड़े परीक्षण और विचारों द्वारा निर्णीत किये हैं और यह उनके परिश्रम का ही फल है।

मौखिक अभ्यास उच्चारण में अवश्य होना चाहिए। संस्कृत में श्लोक याद करना, उनका पाठ करना और सब के सामने उनका सुनाना ये सब शुद्धोच्चारण में सहायक होते हैं। अर्थ ज्ञान के लिए भी शुद्धोच्चारण आवश्यक है।

'भाषा' के नाते संस्कृत बोलने, लिखने, बोलकर समझने समझाने या लिखकर समझाने के काम में आसकती है। कुछ समय पूर्व संस्कृत इन सब व्यवहारों में प्रयुक्त होती थी, परन्तु बोल चाल में अब कम ही प्रयुक्त होती है। इसलिए इसके लिखने पढ़ने की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए जिसके लिए अनुवाद विधि ही उपयुक्त है। निर्बाध विधान (डाइरेक्ट-मैथड) लाभकारी नहीं हो सकता, क्योंकि उद्देश्य के अनुसार ही विधि हुआ करती है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है।

विशिष्ट (Intensive) और सामान्य (Extensive) अध्ययन के पाठ विभिन्न भी हो सकते हैं या एक ही पाठ को दोनों विधियों से पढ़ाया जा सकता है। पर इतना आवश्यक है कि अनुवाद प्रणाली पढ़ाने के लिए सामान्य अध्ययन में

सरल पाठ हो होने चाहिएँ जो कि रामायण, महाभारत, पुराण और कथा साहित्य से लिये जा सकते हैं मौखिक सस्वर-पाठ (Recitation) और स्मृतिपूर्वक शुद्धभाषण (Declamation) संस्कृत में अवश्य होने चाहिएँ जिससे उच्चारण ठीक हो और संस्कृत वातावरण बने। श्लोकों का कण्ठ कराना भी उपयोगी सिद्ध होता है। बोलने मात्र से भाषा मे योग्यता प्राप्त नहीं हो सकती। इसके लिए विचारशीलता, भावग्रहणकुशलता, साहित्यिक-अनुशीलन, मार्मिक अनुसन्धान, भाषा के लिए भावुकता और उसमें आनन्द अनुभव करने की क्षमता, ये गुण भी परम आवश्यक हैं। लोग प्रायः संस्कृत को भाषाज्ञान के लिए तो सीखते नहीं, परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए पढ़ते हैं। स्कूल में लड़के संस्कृत की थोड़ी सी रूपावलि सीखते हैं। कालिज में तो उनमें स्वतन्त्रता क्या उच्छृङ्खलता आजाती है। उतनी सावधानता से पढ़ते नहीं। इसलिए संस्कृत में उनकी योग्यता भी कम होती है। परन्तु पाठशालाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थी, जो प्राज्ञ, विशारद, शास्त्री परीक्षा देते हैं उनमें संस्कृत की योग्यता अधिक होती है, इसके कारण हैं। हाई स्कूल शिक्षा का ध्येय विद्यार्थी को विनीत बनाना है। कालिज की शिक्षा का ध्येय समाज और स्टेट के उपयोगी सभ्य बनाना है। केवल संस्कृत परीक्षार्थियों को भाषा-विज्ञ और विशेषज्ञ बनना होता है। विशेषज्ञ तो भाषा के मर्मज्ञ होंगे ही, परन्तु साधारणवर्ग में से भी विशेष जानकारी रखने वाले उत्पन्न हो सकते हैं। जैसे सब लोग रसायनी, वैद्य या ज्योतिषी नहीं बनते पर, सर्वसाधारण को इनका सामान्य ज्ञान सुशिक्षित बना सकता है। वैसे ही स्कूलों-कालिजों

में शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों को इतना जानना आवश्यक है कि संस्कृत भाषा, भाव, सभ्यता और साहित्य भारत की सत्ता के आधार हैं। वेद, वाल्मीकि, व्यास, व्याकरण और वेदान्त संस्कृत के पाँच तत्त्व हैं जिनसे भारत को सजीवता प्राप्त होती है। इनका परिचय विद्यार्थियों को सुशिक्षित बनाता है। किसी भाषा में सोचने लग पड़ना और उस में साहित्यिक भावुकता पैदा करना साधारण विद्यार्थियों के बल-बूते की बात नहीं। उन के पास न तो इतना समय स्कूल में है, न कालिज में और न ही जीवन भर में। जीवन में नित्य नई समस्याएँ आ खड़ी होती हैं। उन्हें सुलझाने के लिए संस्कृत से क्या सहायता उन्हें लेनी चाहिए या मिल सकती है इस बात को लक्ष्य में अवश्य रखना चाहिए। संस्कृत से साधारण परिचय होना तो अनिवार्य है। संस्कार संस्कृत के हों जिन पर जीवन ने विकसित होना है। इतना ज्ञान प्रत्येक भारतीय को होना चाहिए कि संस्कृत उत्तर भारत की भाषाओं की जननी तथा भारतीय और यूरोपीय भाषाओं में सब से प्राचीन भाषा है। हिन्दी अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी, जर्मन, ईरानी, लातीनी, यूनानी एक ही वंश की भाषाएं हैं। संस्कृत का आधुनिक रूप हिन्दी है और भारत की संस्कृति का प्राण संस्कृत है।

नियत तथा परिमित पाठ्यपुस्तकों से पढ़ाना, परीक्षा लेना और अपठित भाषेतर अनुच्छेद के अनुवाद द्वारा योग्यता की जाँच करना ये विभिन्न प्रक्रियाएँ हैं। एक (Quantitative) परिमित मात्रा के रूप में है और दूसरी (Qualitative) योग्यता के प्रमाण के रूप में है। परीक्षा में दोनों प्रकार की

योग्यताओं का समन्वय हो जाता है। नियत पुस्तक और अनुवाद भाषाशिक्षण तथा परीक्षण के अंग बने हुए हैं। और होने भी चाहिएँ । द्रुत पाठ के साथ व्याकरण का नियन्त्रण अवश्य होना चाहिएँ नहीं तो योग्यता का स्तर पहिले से भी गिर जायगा ।

व्याकरण का महत्त्व—संस्कृत सीखना कला है। इसकी परिभाषा को भूलना न होगा। संस्कृत की कुंजी व्याकरण है। जैसे गयनविद्या की प्रारम्भिक परिभाषा याद रखनी पड़ती है। जब तक भली भाँति अभ्यास न हो ले, वैसे ही संस्कृत में प्रवेश के लिए व्याकरण-बोध अनिवार्य है।

संस्कृत कई स्कूलों में चार वर्ष और कइयों में २ वर्ष पढ़ाई जाती है। पिछले दो वर्षों में तो यूनिवर्सिटी द्वारा नियत पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं और पहिले तीन चार वर्षों में शिक्षा विभाग द्वारा प्रस्तुत स्कूलों में संस्कृत की नींव शिक्षा-विभाग की संस्कृत प्रथम पुस्तक के आधार पर रखी जाती है जिसका निर्माण त्रुटि-पूर्ण न होना चाहिए। अंग्रेजी रीडरों का अनुकरण मात्र हिन्दी संस्कृत रीडरों में मिलता है। प्रत्येक भाषा की विशेषता उसके देशकालानुकारी विकास पर निर्भर होती है। प्रत्येक भाषा का समझने समझाने का ढंग अपना होता है। अंग्रेजी की अधूरी वर्णमाला और बिखरे हिज्जे संस्कृत हिन्दी में नाम को भी नहीं। अरुचि, अयोग्यता और अभावुकता जो विद्यार्थियों की उपेक्षा बुद्धि में पाया गया है उसके निदान में विषय को ठीक रीति से पेश न करने में, अध्यापकों की उदासीनता, उनको ठीक प्रकार तैयार न करना, अंग्रेजी की

और राजकीयता के कारण अधिक ध्यान, प्रबन्ध और शासन की संस्कृत की ओर विमनस्कता और सौतेला सलूक इत्यादि कारण बतलाए जासकते हैं। जिन बातों पर जोर नहीं दिया जाना चाहिए उन पर व्यर्थ का समय नष्ट किया जाता है और आवश्यक बातों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता, यह बड़ी शोचनीय बात है। क्योंकि अंग्रेजी की वर्णमाला सदोष है, उसके उच्चारण और अक्षरयोजना में कठिनाई तथा विषमता है, परन्तु संस्कृत-वर्णमाला में तो ऐसी कोई बात नहीं है। इसलिए बचा हुआ समय भाषा के दूसरे अंगों पर लगना चाहिए। रूपावलि और सन्धि आदि के विश्लेषण में ऐसे समय का सदुपयोग क्यों न किया जाय।

अनुवाद की विशेषता—अनुवाद दो प्रकार का होता है। संस्कृत से हिन्दी और हिन्दी से संस्कृत। अनुवाद केवल भावात्मक नहीं होना चाहिए। अक्षरशः अनुवाद भी ठीक न रहेगा। शब्द, भाव, शैली, परिस्थिति सब कुछ एक भाषा से दूसरी भाषा में अनूदित हो जाना चाहिए। भाषा और साहित्य दोनों का ध्यान रहना चाहिए। व्याकरण का अंश आनुषंगिक रूप में आना चाहिए। एक अनुच्छेद या श्लोक पढ़कर जो भाव, ध्वनि, व्यङ्ग्य, जागृत होते हैं वे सब ही अनूदित गद्य या पद्य में आजाने चाहिएँ। मक्खी पर मक्खी मारना ऐसा अनुवाद कोई महत्त्व नहीं रखता। संस्कृति का साधन भाषानुवाद तब ही हो सकता है जब समस्त परिस्थितियों का संक्रमण एक राशि में हो जाय। संस्कृत के साहित्यिक अंश पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। संस्कृत का सन्देश उसके भावमय जगत् में है,

न कि बाहरी परिधान में। भाषा तो साहित्य-प्रवेश का साधन मात्र है।

व्याकरण से तर्क, व्युत्पत्ति, वर्गीकरण और विचारनियमन सिखाया जासकता है। व्याकरण के पाठ में—न्यायसिद्धान्त की—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन, पञ्चाङ्गरीति सिखायी जा सकती है। व्याकरण भाषा के तत्त्व को प्रकट करता है तथा भाषा के मनोवैज्ञानिक रहस्य को प्रत्यक्ष कराता है। यह वह अन्तर्दृष्टि या दिव्यालोक प्रदान करता है कि भाषा के रहस्य खुल जाते हैं। 'छिद्यन्ते सर्वसंशयाः' वाली बात हो जाती है। कारक-प्रकरण, उपपद-विभक्ति, समास, तद्धित, सुबन्त, तिङन्त इस के प्रत्यक्ष और प्रचुर उदाहरण उपस्थित करते हैं। समीकरण का नियम विशेष उल्लेखनीय है। संस्कारवश शब्दार्थ एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। तुलना करके देखिये ऋतस्पति और रथस्पति की बृहस्पति से, एकादश और द्वादश भी उदाहरणीय हैं। और भी देखिये।

देवी	:	प्रिया	::	देव्यै	.	प्रियायै
सद्म	:	प्रिय	::	द्मानि	:	प्रियाणि
द्विष	:	राज्	::	द्विट्	:	राट्
पितृ	:	पतिः	::	पित्रे	:	पत्ये
			::	पितुः	:	पत्युः

आज का व्याकरण—आज के वैज्ञानिक युग में व्याकरण भी वैज्ञानिक ढंग से लिखा जाना चाहिए। निर्वचन, शब्द का इतिहास, व्युत्पत्ति, कार्य-कारण का सम्बन्ध व्याकरण में आना

चाहिए। भाषा-विज्ञान के द्वारा जब व्याकरण के सिद्धान्त ठीक तरह समझ में आ सकते हैं तो ऐसी पद्धति व्यवहार में क्यों न लाई जावे। केवल वैयाकरणों के "आदेश" मात्र या 'प्रतिज्ञा" कहने से काम न चलेगा। सेदतु और चेरु, नेमु, जग्मु में क्या और क्यों अन्तर है इसे समझाना ही श्रेयस्कर होगा। अधिक सूक्ष्म तत्त्वों और व्याकरण की बारीकियों की ओर स्कूल में नहीं जाना चाहिए। जहाँ कारण का पता देना स्कूल के विद्यार्थियों के लिए विषमता और कठिनाई को उत्पन्न करता हो वहाँ इससे बचना चाहिए। सरल को कठिन बनाना हमारा उद्देश्य नहीं। व्याकरण को भी भाषा-प्रवेश में सहायक के रूप में प्रयुक्त करना चाहिए। भाषा-विज्ञान के सिद्धान्त सरल तथा सुबोध रूप में व्याकरण में अवश्य आजाने चाहिएँ।

संस्कृत में रचना अनुवाद के ढंग पर की जासकती है। कई पाठ क्रमबद्ध और विषय-क्रम को लेकर लिखे जासकते हैं। व्याकरण के ज्ञान की परख के लिए अनुवाद दिया जाता है। भिन्न २ व्याकरण के विषयों पर विभिन्न अनुवाद के पाठ लिखे जासकते हैं। संस्कृत-रचना में एक अधिकरण को लेकर उस पर वाक्य केन्द्रित करने चाहिएँ। जैसे कारक प्रकरण में अनुवाद-प्रत्यनुवाद द्वारा एक-एक कारक का प्रयोग नियम-सहित प्रतिपादन करके स्मृति में अङ्कित करना चाहिए। व्याकरण और रचना साथ-साथ चलायी जाय तो कोई हानि नहीं।

भाषा के कलेवर के ज्ञान के लिए व्याकरण के विविध प्रकरणों का ज्ञान आवश्यक है। इस ज्ञान को रूपात्मक अभ्यास द्वारा

अङ्कित किया जाता है। इसमें सुबन्त और तिङन्तों के रूप, सन्धिसूत्र, इत्यादि का रटना भी आजाता है। इस विधि में कोई कृत्रिमता नहीं। इस प्रकार के वर्गीकरण द्वारा ही बच्चे के ज्ञान में वृद्धि होती है। मनोवैज्ञानिक ढंग यही है। ज्ञानसंग्रह तथा उस का प्रयोग साथ-साथ चलना चाहिए। अनुभव में जो बात आजाती है उस का संस्कार दृढ हो जाता है। व्याकरण का नियम सीखना ज्ञानमात्र है और उसको रचनारूप देना क्रिया है। 'ज्ञानं भारः क्रियां विना' ज्ञान और क्रिया का साथ लाभदायक होता है।

संस्कृत शिक्षण में अन्य उपादेय सामग्री—संस्कृत पद्य-भाषा के प्रवाह को समझने के लिए पद्यरचना पर भी विचार करना चाहिए। इस में गुरु-लघु, वर्णिकछन्द, मात्राछन्द, सम-विषमवृत्त आदि का ज्ञान जहाँ सहायक हो सकता है वहाँ रुचिकर भी। वृत्तों को जो नाम दिये गये हैं वे बड़े आकर्षक तथा मनोहर हैं। गायत्री, अनुष्टुम्, द्रुतविलम्बित, स्रग्धरा, मालिनी, शार्दूल-विक्रीडित, मन्दाक्रान्ता इत्यादि नाम अन्वर्थक भी हैं और पद्य की गति के सूचक भी। पद्य शब्द ही भाषा की रागात्मक सत्ता का बोधक है। संस्कृत में तो गद्य-पद्य दोनों को ही काव्य कहा गया है। गद्य हो या पद्य यदि वाक्य में रस हो तो वही काव्य बन जाता है। इस से अधिक समीचीन, सार्थक तथा संक्षिप्त लक्षण काव्य का नहीं किया जा सकता। पाठ्य पुस्तकों में प्रस्तुत पद्यभाग में रुचि प्राप्ति के लिए छन्दोज्ञान सहायक होता है।

इतिहास ज्ञान—संस्कृत का इतिहास भी संस्कृत में रुचि

तथा पाठ को रोचक बनाने में सहायक हो सकता है। देश के उस काल के इतिहास का परिचय भी, जब संस्कृत में उच्चकोटि के साहित्य की रचना हुई थी, साहित्यिक पाठ को हृदयंगम कराने में सहायक होता है। कालिदास और उसके समय की परिस्थितियों का ज्ञान होने से उसके ग्रन्थ भलीभाँति समझ में आसकते हैं। कवि अपने कल्पना के जगत् में विचरता हुआ भी सामयिक घटनाओं के प्रभाव से नितान्त अछूता नहीं रह सकता। इसीलिए "विक्रमादित्य के युग की उपज, कालिदास की शकुन्तला, महाभारत की शकुन्तला से भिन्न है" इस में इतिहास के ज्ञान की कितनी अपेक्षा है इसे पाठक जान सकते हैं।

सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा धार्मिक अवस्था का ज्ञान साहित्यज्ञान में वृद्धि करता है। यह भी स्मरण रहे कि साहित्य से ही इतिहास बनता है। बुद्धभगवान् का इतिहास तत्कालीन साहित्य ही हो सकता है। इसे ही समन्वय (Co-ordination) कहा जासकता है। ऐतिहासिक-ज्ञान साहित्य के समझने में सहायक होता है। चाणक्य-नीति समझने के लिए उसके काल का इतिहास जानना आवश्यक है। कपिल, कणाद, गौतम, पतञ्जलि, व्यास, वाल्मीकि, पाणिनि, मनु, विक्रमादित्य, कालिदास, गुप्त, यवन, शक, हर्ष, आदि से परिचय और आत्मा, ब्रह्म, योग, कर्म, वर्णाश्रम, हवन, यज्ञ, मोक्ष, आवागमन, धर्म-कर्म, संस्कार इत्यादि का ज्ञान परस्पर सम्बद्ध है।

तिथियों, विशेष घटनाओं, उनके क्रम तथा कारण-कार्य का ज्ञान इतिहास और साहित्य में समीपता उपस्थित

करता है। कालभगवान् का ज्ञान ब्रह्मज्ञान से कम नहीं 'कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धः लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।' भगवान् स्वयं अपने-आप को कालस्वरूप कहते हैं।

भाषाविज्ञान—शब्द का इतिहास भाषा के पाठ में बड़ा रुचिकर होता है। निरुक्त और व्याकरण इकट्ठे ही रहते हैं। शब्दों की महिमा, उनका महत्त्व तथा जादू, उनका आश्चर्यकारी इतिहास ये सब वह काम करते हैं जो बड़ी-बड़ी पुस्तकें नहीं कर सकतीं। भारतीय, ईरानी और यूरोपीयन एक थे। इस तथ्य को पितृ, पेटर, फ़ादर, पिदर, पे, प्यो, पापा आदि शब्दों का इतिहास इतनी सुगमता से बता सकता है जितना कि और कोई साधन नहीं। संस्कृत मूल भाषा होने के कारण इस पक्ष में अधिक गौरव और गर्व रखती है और जितना व्याकरण गवेषण इस भाषा में हुआ है उतना अन्य किसी भी भाषा में नहीं। भाषाविज्ञान का मूल स्रोत संस्कृत ही तो है। स्कूलों में कितनी गहनता तक या कितना यह विषय पढ़ाया जा सकता है यह शिक्षक पर ही छोड़ा जाना चाहिए। अध्यापक को इससे जानकारी अवश्य होनी चाहिए, क्योंकि बच्चों को स्वभावतः शब्दों की निरुक्ति, उनका अर्थ-विकास या परिवर्तन तथा अन्य भाषाओं के साथ तत्सम्बन्धी शब्दों से तुलना इत्यादि विषयों में रुचि होती है। भाषा, साहित्य तथा संस्कृति का ज्ञान भाषाविज्ञान के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। स्कूलों में भाषा-विज्ञान के तत्त्वों की ओर संकेत मात्र ही पर्याप्त है क्योंकि हमारा उद्देश्य संस्कृत-शिक्षा है न कि भाषाविज्ञान। और यह भी बात नहीं

कि भाषाविज्ञान की शिक्षा के बिना संस्कृत आ ही नहीं सकती। तुलनात्मक शब्दज्ञान की अपेक्षा एक शब्द की व्युत्पत्ति जानना अधिक लाभकारी है। 'व्युत्पन्न' कहते ही उसको हैं जो भाषा पर अधिकार रखता हो।

कोष और पुस्तकालय—अमरकोष या शब्द-सूची जो पाठ्य पुस्तक के साथ दी हुई हो वह भी लाभदायक होती है और पाठनविधि में सहकारी बनती है। स्कूल के पुस्तकालय के संस्कृत विभाग मे कौन सी पुस्तकें हों? अध्यापकों और अध्येताओं के स्वाध्याय के लिए व्याकरण, कोष, इतिहास पुराण, काव्य-नाटक, कथा-साहित्य, नीति संग्रह, सुभाषित-ग्रन्थ इत्यादि पुस्तकालय में अवश्य होने चाहिएँ।

मानचित्र—मानचित्र भी अध्ययनाध्यापन में सहायक हो सकते हैं। वैदिककाल का भारत अथवा प्राचीन भारत, वाल्मीकि का भारत, व्यासका भारत, पाणिनि का भारत, बुद्धभगवान् का भारत, अशोक का भारत, गुप्तवंश का भारत, राजपूतों का भारत, राणाप्रताप का भारत, गांधी का भारत संस्कृत भाषा और साहित्य की संस्कृति को समझने में अत्य त उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

चित्र—सम्बन्धित स्थानों, मूर्तियों, कलाभवनों तथा ऐतिहासिक-स्थलों के चित्र भी शिक्षण मे सहायक होते हैं। दण्डकारण्य, कुरुक्षेत्र, सारनाथ, तक्षशिला, नालन्दा, गान्धार कला, बोधिसत्त्व का चित्र संस्कृताध्ययन में रुचिकर प्रमाणित हो सकते हैं।

अध्यापक—किसी भी पाठ्य-विषय के विवरण में तीन बातों का ध्यान रखना पड़ता है—विद्यार्थी, अध्यापक, तथा विधि। किसे पढ़ाना है? किसने पढ़ाना है? क्या पढ़ाना है? और कैसे पढ़ाना है? विधि तथा पाठ्य क्रम के सम्बन्ध में कुछ एक बातें कही जा चुकी हैं। अब अध्यापक के विषय में कुछ विचार करना है। अध्यापक के व्यक्तिगत स्वाभाविक गुण तो होते ही हैं। पर प्रशिक्षण और अनुशासन से भी अध्यापक गुणग्राहक बन सकते हैं—ऐसा शिक्षाचार्यों का सिद्धान्त है। यदि किसी व्यक्ति में प्रकृति से ही पढ़ाने की प्रवृत्ति, सदाचरण-शीलता तथा महानुभावता हो तो कहना ही क्या, पर अनुशासन या प्रशिक्षण से सोने में सुगन्ध वाली बात चरितार्थ होती है। प्रशिक्षण से अधिक लाभ होता है। संस्कृत-शिक्षक की तैयारी में कौनसी बातें आनी चाहिएँ? अध्यापक के कर्तव्यों का ज्ञान संस्कृतशिक्षक के लिए इतना ही आवश्यक है जितना संस्कृत का जानना। केवल संस्कृत का जानना पर्याप्त नहीं। विशेषज्ञता के साथ-साथ अध्यापन-कुशलता भी आजाए तो जाति की बड़ी अमूल्य सेवा हो सकती है।

पंजाब और संस्कृत-अध्यापक—हमारे प्रान्त में अध्ययन-अध्यापन कार्य प्राचीन काल से उन लोगों के हाथ में रहा है जिनकी यह पैतृक परम्परा बन गई थी। संस्कृत के माध्यम द्वारा आदिकाल से लेकर मध्ययुग तक यह विधान चलता रहा। ये विशेषज्ञ शास्त्री पदवी से विभूषित होते हैं। भाषा के मर्मज्ञ, संस्कृत की संस्कृति और उसके संस्कारों से सम्पन्न ये विद्वान् हमें सदा सुलभ हैं। संस्कृत पढ़ाने के लिए

इनसे अधिक योग्य व्यक्ति मिलना कठिन है। हमारे पञ्जाब में तो सौभाग्यवश हमारी लाहौर की यूनिवर्सिटी की नींव भी प्राच्य-शिक्षा पर डाली गयी थी, इसलिए हमारे स्कूलों और कालिजों के लिए यह विशेषज्ञवर्ग स्वतः ही तैयार मिलता है। संस्कृत-भाषा का गहरा ज्ञान इन्हें होता है। ये व्याकरण के पण्डित और शास्त्रों के वेत्ता होते हैं। भारतीय संस्कृति और रहन सहन के परिपालक होने के कारण ये आदरणीय होते हैं। ये वे लोग हैं जिन के अथक परिश्रम, विद्याप्रेम, शास्त्र की लगन धार्मिक-बुद्धि तथा विचारों की कट्टरता द्वारा ही संस्कृत सभ्यता बच सकी है। इन्हीं विद्वानों की सहायता से आधुनिक रिसर्च और गवेषणा के कार्य हो सके हैं। इन आशुतोष माननीय मर्मज्ञों ने संस्कृतसाहित्य को आड़े दिनों बचाये रखा। ग़रीबी की ज़िन्दगी बिता कर, दुनिया के लालच को ठुकरा कर, संस्कृत को जीवित रखना इनका ही लक्ष्य था। "ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च" इस रूढि के उपासक ये त्यागी, साहित्यसेवी पीढ़ियाँ जाति की शिक्षा का काम अपने हाथों में लिये रहे। इन्हीं लोगों के वंशधर आज संस्कृताध्यापन का कार्य देश में कर रहे हैं। ऐसी सम्पत्ति को खो देना हमारी शिक्षापद्धति के लिए महान् अनर्थकारी होगा। इनके स्थान पर असंस्कृत, अधकचरे ग्रेजुएट, जिन्होंने संस्कृत एक वैकल्पिक विषय के रूप में कालिजों मे पढ़ी है और वह भी इसलिए कि कोई और विषय ले नहीं सकते थे, संस्कृत पढ़ाने के लिए नियुक्त करना अधःपतन की पराकाष्ठा होगी। संसार तो विशेषज्ञों की खोज मे है और हमें ये मिलते भी हैं पर हम उन्हें अपनाने मे हिचकचाते हैं। एक बी. ए. बी. टी. जिस ने संस्कृत विकल्परूप से पढ़ी है

कभी भी उतना योग्य और सफल संस्कृताध्यापक नहीं हो सकता जितना कि एक शास्त्रज्ञ शास्त्री, जिस ने अपने विषय का अध्ययन अनन्य आराधना, भक्ति, श्रद्धा, और प्रेम से किया हुआ है। क्या यह भारी भूल न होगी कि हम अंग्रेजी का ऐसा अध्यापक नियुक्त करदें जिस ने अंग्रेजी वैकल्पिक रूप में पढ़ी हो।

शास्त्री और बी. ए. की तुलना—कई लोग कहते हैं कि शास्त्री लोग अध्ययन में थोड़ा समय लगाते हैं। इसलिए एक बी. ए. की अपेक्षा इनकी योग्यता कम होनी चाहिए। इसलिए इनका वेतन भी तदनुरूप होना चाहिए। यह युक्ति असंगत है। एक अपनी भाषा को सीखता है, अपने माध्यम द्वारा। इसलिए थोड़ा समय लगता है, दूसरा विदेशी भाषा को सीखता है। वह अन्य विषय भी विदेशी माध्यम द्वारा पढ़ता है। उसका अधिक समय लगना कोई बड़ी बात नहीं। अब बात रही योग्यता की इस पर भी विचार होना चाहिए। अंग्रेजी पढ़ाने वाला स्कूल में विशेषज्ञ के रूप में काम करता है पर उसका अधिकार—अंग्रेजी पर इतना नहीं हो सकता जितना कि संस्कृत पढ़ाने वाले का संस्कृत पर। यह बात दृष्टिगोचर रखनी चाहिए कि एक ने देशी भाषा को देशी पद्धति से पढ़ा है दूसरे ने विदेशी भाषा को विदेशी रीति से। राजभाषा होने के कारण अंग्रेजी को चाहे कितनी भी महत्ता क्यों न दी जाय थोड़ी है, पर भाषा होने के नाते संस्कृत जैसी भाषा का मिलना संसार में कठिन है। इसके परम्परागत निष्णात पण्डितों का मिलना बड़ा ही सौभाग्य है। इसमें कोई अति-शयोक्ति या पक्षपात नहीं। भाषाविज्ञ इसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा

कर चुके हैं कि संस्कृत की सी लचक, प्रवाह, सारगर्भता, संश्लिष्टता, उदारता, सुकुमारता, मधुरता, ओजस्विता, अन्य भाषाओं में कम ही मिलेगी। सरलता या सुगमता सापेक्ष विषय हैं। एक विदेशी भाषा को राजप्रलोभन और पद-लालसा से भारत भले ही सीख सकता है पर संस्कृत जैसे अनमोल रत्न को ठुकरादे और उसके अध्यापकों को घृणा की दृष्टि से देखे यह बात शोचनीय है। संस्कृत के विना भारतीयता की कोई सत्ता नहीं। भारत की जातीयता या संस्कृति की उन्नति संस्कृत शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन के विना कभी नहीं हो सकती। अतः संस्कृत के विशेषज्ञ अध्यापकों की सेवा से अपने बालकों को वञ्चित रखना अत्यन्त हानिकारक सिद्ध होगा।

शास्त्री और शिक्षण-विधि—इस बात का ध्यान रखना होगा कि शास्त्री लोग शिक्षण-विधि से कुछ परिचय अवश्य रखते हों। जिनके वंश में परम्परागत शिक्षण-विधि का कार्य होता आ रहा हो उन्हे प्रशिक्षण (Training) की आवश्यकता नहीं होती। अध्यापन में उनकी नैसर्गिकी प्रवृत्ति होती है और अपने काम में उन्हें स्वभावतः सिद्धि प्राप्त होती है। रही बात अन्य विषयों के अध्यापकों के साथ तुलना की। वे भी तो एक एक विषय ही पढ़ाते हैं। यदि संस्कृत वाला भी एक विषय पढ़ाये तो क्या हानि है? संस्कृताध्यापक की उपादेयता और उपयोगिता तब और भी बढ़ जाती है जब हम देखते हैं कि वह हिन्दी की शिक्षा भी देसकता है। इतिहास और संस्कृति पर पाठ पढ़ा सकता है। स्कूल-प्रबन्ध, श्रेणी पर अनुशासन, मनोवैज्ञानिक शिक्षासाधन, शिक्षा उपाय तथा आधुनिक

सांसारिक व्यवहार से उसे कुछ परिचय हो या उसे विशेषरूप से इनमे परिचित कराया जाय तो वह अपने आप को अधिक योग्य प्रमाणित कर सकता है। विषय की विशेषज्ञता विधि-विधान के सम्बन्ध में सब कुछ बता देती है। विशेष विधि का का ज्ञान शिक्षाक्रम को सुगम तथा सरल कर देता है।

अन्य विषयों का ज्ञान—एक शास्त्री बारह वर्ष निरन्तर संस्कृत का अध्ययन करता है; भाषा के ढाँचे से पूर्ण परिचित होता है; व्याकरण के रहस्य को अच्छी तरह समझता है; साहित्य में पूर्णतया प्रविष्ट होता है। भाषा, भाव और साहित्य पर अधिकार रखता है। परन्तु इसके साथ २ इतिहास और संस्कृति से परिचय रखना आवश्यक है। शिलालेख, पुरातत्त्व-खोज, विविध लिपिज्ञान, पुस्तकों की हस्तलिखित प्रतियों से संस्करण विधि, ऐतिहासिक व्याकरण, तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के सिद्धान्तों का ज्ञान ऐसे अध्यापक के लिए अनिवार्य हैं। संस्कृत-अध्यापक संस्कृत और साहित्य का प्रखर विद्वान्, दर्शनशास्त्र, नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, मनोविज्ञान, शिक्षा-विधि, भारत की भाषाओं, हो सके तो देशान्तर की भाषाओं का भी ज्ञाता होना चाहिए। तात्पर्य यह कि संस्कृताध्यापक के लिये संस्कृत और संस्कृति का पूर्ण ज्ञाता होना आवश्यक है। हमारे आधुनिक संस्कृत-अध्यापकों में जो त्रुटि है वह है स्वाध्याय की उपेक्षा। उनको चाहिए कि अध्यापन कार्य करते हुए अध्यापन-सम्बन्धी ज्ञान को भी बढ़ाते जायँ। मनोविज्ञान का विशेष अध्ययन करना चाहिए। संस्कृत के अध्यापक प्रायः 'प्राईवेट' पढ़े होते हैं। आधुनिक कालिज में अध्ययन न करने पर भी अपनी प्रतिभा को

सुसज्जित, परिमार्जित और उपस्थित रखते हैं। यह उनकी बुद्धि की विलक्षणता, संयम, सरल जीवन और उच्च विचारों का परिणाम नहीं तो क्या है? पाठ्यविषय पर पूर्ण अधिकार और तत्सम्बन्धी ज्ञान से परिचय एक दूसरे के सहायक होते हैं। विषय का पारंगत होना परमावश्यक है पर उन्हें इतना उत्साहशील, उद्यमी और शास्त्र-प्रेमी होना चाहिए कि अध्यापकवृत्ति के साथ-साथ अपने ज्ञान की वृद्धि भी करते रहें। संस्कृत-भाषा, प्राचीन इतिहास, भूगोल, दर्शन, साहित्येतिहास, पुस्तक-पाठान्तर व्यवस्था, कोष, व्याकरण ये विषय संस्कृत अध्यापक को आने चाहिएँ। अनुसन्धान, पुरातत्त्वान्वेषण, संस्कृतेतर भाषा का ज्ञान भी अभीष्ट है और अंग्रेजी ही अभीष्ट रहेगी, क्योंकि भारतीय-यूरोपीय भाषाओं में अंग्रेजी आधुनिक मुख्य भाषाओं में से है। संस्कृत अंग्रेजी का मेल सनातन और नवीन का मेल है "पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्य" इस बात को कभी नहीं भुलाना चाहिए। दोनों के सन्तुलनात्मक ज्ञान से अध्यापक की योग्यता में वृद्धि होगी, अंग्रेजी में आधुनिक विज्ञान की प्रेरणा है; संस्कृत में आत्मा की पुकार है; इनके संयोग से परम कल्याण की संभावना है।

संस्कृत अध्यापक की ट्रेनिङ्ग में सिद्धान्त, उनका क्रियात्मक अभ्यास और शिक्षाविधि में मनोवैज्ञानिक अनुभवों का प्रयोग सिखाया जाना चाहिए। शिक्षाविधि में केवल संकेतमात्र सूचनाएँ दी जाती हैं। प्रत्येक अध्यापक अपनी विधि को आप निकालता है। छात्रों की आवश्यकता पर विधि का निर्माण कियाजाता है। विधि मशीन की तरह काम नहीं कर सकती।

परिस्थिति के अनुसार अपने आपको अनुकूल करना अध्यापन-वृत्ति का अंग है। विद्यार्थी के साथ समानानुभूति उत्पन्न करके ही उसे उच्च ज्ञान की ओर आकर्षित करना होता है। शिक्षा वह कला है जिसमें पूर्णतम ज्ञान, उत्कृष्ट कुशलता और उत्तम निर्णय की आवश्यकता है।

पाँचवाँ अध्याय

विशिष्ट पाठ्य-विधि पर संकेत

अध्यापक-रोल नम्बर—

पाठ—संस्कृत (व्याकरण)

विषय—भ्वादि गण के धातुओं के लट् में रूप।

कक्षा—सातवीं

समय—४० मिनट

उद्देश्य—१—विदित से अविदित तथा सरल से कठिन, व्याकरण-शिक्षण के इन दो मुख्य नियमों के आधार पर भ्वादिगण के हिन्दी शब्दों से मिलते-जुलते धातुओं का लट् में उच्चारण तथा उनका अर्थ ज्ञान-पूर्वक उपयोग।

२—लट् के सभी पुरुषों तथा वचनों में प्रयुक्त होने वाले प्रत्ययों का ज्ञान।

पूर्वज्ञान-परीक्षण—छात्र हिन्दी तथा अंग्रेजी का ज्ञान रखते हैं। दोनों भाषाओं में वाक्य-रचना का उन्हें अभ्यास है। काल, पुरुष, वचन के लक्षण से सुपरिचित हैं। अतः उनके पूर्वज्ञान का अधोनिर्दिष्ट प्रश्नों द्वारा परीक्षण कर नवीन पाठ में प्रवेश होगा।

१—हिन्दी में काल कितने हैं? कौन २ से हैं?

२—पुरुष कितने हैं? कौन २ से हैं?

३—वचन कितने हैं? कौन २ से हैं?

४—चलना धातु के वर्तमान काल के सभी पुरुषों और

वचनों में रूप बतलाओ। उत्तर—वह चलता है, वे चलते हैं, आदि।

उद्देश्य-कथन—छात्रों के उत्तर के आधार पर अध्यापक बतला देगा कि आज हम तुम्हें संस्कृत में वर्तमान काल के सभी पुरुषों के सभी वचनों में रूप बतलायेंगे। संस्कृत में भी तीन काल हैं, तीन पुरुष हैं, परन्तु वचन हिन्दी की तरह दो नहीं, तीन हैं।

पाठ-प्रवेश—छात्र हिन्दी में पठन, भ्रमण, चलन, पतन, दहन, आदि शब्दों के अर्थ जानते हैं। हिन्दी के पढ़ना, चलना, आदि धातु संस्कृत के पठ् आदि धातुओं से मिलते जुलते हैं। अतः उनके इस पूर्व ज्ञान के आधार पर शिक्षक भ्वादि गण के वर्तमान काल (लट्) में रूप बतलायेगा।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक-सार—
हिन्दी में पढना धातु के वर्तमान काल में रूप।	शिक्षक छात्रों से पढ़ना धातु के वर्तमान काल में रूप लिखने को कहेगा। छात्र बोर्ड पर लिख देंगे। प्रश्नोत्तर— शिक्षक—इन रूपों में मूल धातु क्या है? छात्र—पढ़।	*प्र.पु. वह पढ़ता है, वे पढ़ते हैं। *म.पु. तू पढ़ता है, तुम पढ़ते हो। *उ.पु. मैं पढ़ता हूँ, हम पढ़ते हैं।

* ये संक्षेप क्रम से प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष, और उत्तम पुरुष, के द्योतक हैं।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार—
	शिक्षक—शेष क्या है ? पढ़ से आगे क्या लगा हुआ है ? छात्र—ता तथा ते। ये दोनों प्रत्यय हैं। अब शिक्षक बतला देगा कि जिस तरह हिन्दी में वर्तमान काल के रूप बताने के लिए पढ़ के साथ हम 'ता' 'ते' प्रत्यय लगाते हैं इसी	
संस्कृत में लट् के प्रत्यय।	तरह संस्कृत मे भी ति, तः आदि प्रत्यय लगते हैं। संस्कृत में पढ़ के स्थान पर 'पठ्' है। प्रत्यय लिखे जारहे हैं।	
	बोर्ड पर लिखे हुए प्रत्ययों (ति, तः, अन्ति) आदि को शिक्षक दो तीन छात्रों से पढ़वा कर यहाँ यह बतला देगा कि हिन्दी तथा अंग्रेजी के धातुओं से संस्कृत के धातुओं में यह विशेषता है कि संस्कृत के धातु दस गणों (वर्गों)	प्र.पु. ति, तः, अन्ति म.पु. सि, थः, थ उ.पु. मि, वः, मः

वस्तु—	शिक्षणविधि	कृष्णफलक सार
	में विभक्त हैं। प्रत्येक गण का अपना विशेष चिह्न है। *प्रथम गण को भ्वादिगण* कहते हैं। उसका चिह्न 'अ' है, जो धातु और ति, तः आदि प्रत्ययों के मध्य में लगता है। इसे विकरण कहते हैं। पठ् का रूप पठ् + अ से पठ बन जाएगा।	
	अध्यापक हिन्दी की तरह पठ् की वर्तमान काल में रूप रचना करने को कहेगा। छात्र प्रत्यय लगाकर	
पठ् के लट् में रूप।	बोर्ड पर इस प्रकार लिख देंगे।	पठ्— प्र. पु. पठति, पठतः, पठन्ति । म. पु. पठसि, पठथः, पठथ । उ. पु. पठामि, पठावः, पठामः ।
	शिक्षक अभ्यासार्थ छात्रों से पठति आदि का अर्थ पूछेगा। यथा—	
	पठतः, पठामि, पठावः, आदि का क्या अर्थ है?	
	कई छात्रों से प्रत्यय तथा प्रत्यय सहित रूपों का अर्थ पूछ कर भ्रम् के रूप लिखने का आदेश करेगा।	

वस्तु—	शिक्षाविधि	कृष्णफलक सार
भ्रम् के रूप		भ्रम्— प्र. पु. भ्रमति, भ्रमतः, भ्रमन्ति म. पु. भ्रमसि, भ्रमथः, भ्रमथ उ. पु. भ्रमामि, भ्रमावः, भ्रमामः

पठित-परीक्षण तथा पुनरावृत्ति

१. भ्वादि गण में धातु तथा प्रत्यय के मध्य में क्या चिह्न लगता है ?
२. प्रथम पुरुष में धातु से कौन २ से चिह्न लगते हैं ?
३. उत्तम पुरुष के कौन २ से प्रत्यय हैं ?
४. वर्तमान काल को संस्कृत में क्या कहते हैं ?

गृह-कार्य

वद् तथा पत् धातु के अर्थसहित रूप लिखकर लानेको कहा जाएगा।

II

अध्यापक-रोलनम्बर——

पाठ—संस्कृत (व्याकरण) विषय—भ्वादिगण के धातुओं का लङ् में उच्चारण

कक्षा—सातवीं समय ४० मिनट

उद्देश्य—१—लङ् के सभी पुरुषों तथा वचनों में भ्वादि गण के धातुओं के रूप बतलाना।
२—भूत काल के हिन्दी-क्रियापदों का संस्कृत में तथा संस्कृत-क्रियापदों का हिन्दी में अनुवाद द्वारा अभ्यास।

पूर्वबोध-परीक्षण तथा नवीन पाठ से सम्बन्ध

छात्र संस्कृत में वर्तमान काल (लट्) के रूप बनाना तथा उनका उपयोग जानते हैं। अतः उस का परीक्षण कर उनके इसी ज्ञान के आधार पर नवीन पाठ में प्रवेश होगा।

१—लट् प्रथम पुरुष में 'पत्' के रूप बतलाओ।

२—लट् मध्यम पुरुष के कौन से प्रत्यय हैं?

३—(क) मैं भ्रमण करता हूँ (ख) तुम दो गिरते हो (ग) हम सब पढ़ते हैं, इन का संस्कृत में अनुवाद करो।

उद्देश्य-कथन—शिक्षक उपरिनिर्दिष्ट प्रश्नों द्वारा छात्रों के पूर्व ज्ञान का परीक्षण कर उन्हें बतला देगा कि वर्तमान काल के प्रत्यय तथा उसके रूपों का अभ्यास तो तुम कर चुके हो, आज हम भूत काल के अर्थात् लङ् के सभी पुरुषों तथा वचनों में रूप बनाने की रीति बतलायेंगे।

नवीन पाठ प्रवेश।

वस्तु	शिक्षण-विधि	कृष्ण फलक सार
	शिक्षक छात्रों से हिन्दी पढ़ धातु के भूतकाल के और संस्कृत में पठ् धातु के वर्तमान काल के रूप लिखने को कहेगा। छात्र हिन्दी में उसने पढ़ा, उन्होंने पढ़ा, संस्कृत में पठति, पठतः, पठन्ति आदि रूप लिखदेंगे। अध्यापक बतलायेगा कि जैसे हिन्दी में पढ़ से 'आ' प्रत्यय लगा कर भूतकाल	

वस्तु	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
भूतकाल लङ् के प्रत्यय	का रूप और संस्कृत में पठ् धातु से ति, तः आदि प्रत्यय लगाकर वर्तमान के रूप बनाये गये वैसे ही संस्कृत में धातु के अन्त में त्, ताम्, अन् आदि प्रत्ययों के लगाने पर भूतकाल (लङ्) के क्रिया-पद बनेंगे। शिक्षक प्रत्ययों को बोर्ड पर लिख देगा और बतला देगा कि संस्कृत में भूतकाल (लङ्) के रूपों की रचना करते समय धातु के पहले 'अ' लगता है और वर्तमानकाल (लट्) की तरह भ्वादि गण का विकरण चिह्न 'अ' धातु और प्रत्यय के मध्य में लगता है।	प्र. पु. त्, ताम्, अन् म. पु. स्, तम्, त उ. पु. अम्, व, म
पठ् धातु के लङ् में रूप।	शिक्षक पठ् धातु के रूप लङ् के तीनों पुरुषों में लिखने को क्रमशः एक-एक छात्र से कहेगा, छात्र लिख-देंगे।	प्र. पु. अपठत्, अपठताम्, अपठन् म. पु. अपठः, अपठतम्, अपठत उ. पु. अपठम्, अपठाव, अपठाम

वस्तु	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
पत्, नम्, के लङ् में रूप—	अभ्यासार्थ 'पत्' 'नम्' के रूप भी छात्रों से सुनकर बोर्ड पर लिखदिये जायेंगे।	पत्— प्र. पु. अपतत्, अपतताम्, अपतन् । म. पु. अपतः अपततम्, अपतत । उ. पु. अपतम्, अपताव, अपताम । नम्— प्र. पु. अनमत्, अनमताम्, अनमन् । म. पु. अनमः, अनमतम्, अनमत । उ. पु. अनमम्, अनमाव, अनमाम ।
भूतकाल लङ् की क्रियाओं के साथ कर्ता का प्रयोग।	शिक्षक छात्रों से हिन्दी में पठ् धातु के रूप भूत काल के सभी पुरुषों में सुनेगा।	

वस्तु	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	प्र. पु. वह या उसने पढ़ा वे पढ़े या उन्होंने पढ़ा। म. पु. तू या तूने पढ़ा, तुम पढ़े या तुमने पढ़ा। उ. पु. मैं या मैंने पढ़ा, हम पढ़े या हमने पढ़ा। इस प्रकार छात्र सुना देंगे, शिक्षक प्रश्न करेगा कि प्रथम पुरुष में वह, उसने आदि, मध्यम पुरुष में तू, तूने आदि और उत्तम पुरुष में मैं, मैंने आदि शब्द जो क्रिया पदों के साथ लगे हुए हैं, क्या हैं? छात्र उत्तर देंगे कि ये तीनों पुरुषों में वचन के अनुसार कर्ता हैं।	
तुलना	शिक्षक बतला देगा कि जैसे हिन्दी में प्र. पु. वह, वे, आदि म. पु. तू, तुम आदि, उ. पु. मैं, हम आदि, कर्ता है और अंग्रेजी में III. He, They, II. you, I. I, we, कर्ता के लिए आते हैं वैसे	प्र. पु. सः, तौ, ते, वह, उसने, वे दो, उन दोन, वे सब, उन्होंने म. पु. त्वम्, युवाम्, यूयम्, तू, तूने, तुम दो, तुम दो ने, तुम सब, तुम सबने

वस्तु	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	ही संस्कृत में भी कर्ता के लिए उपयोग में आने वाले शब्द हैं।	उ. पु. अहम्, आवाम्, वयम् मैं, मैंने, हम दो, हम दोनों, हम सब, हम सबने।
पठ् धातु के साथ कर्ता का प्रयोग।	शिक्षक क्रमशः एक-एक छात्र से पठ् धातु के साथ कर्ता लगाकर भूतकाल के रूप लिखने को कहेगा। छात्र इस प्रकार लिखेंगे। पत्, नम्, भ्रम् के रूपों के साथ कर्ता लगवा कर अभ्यास करवाया जायगा।	प्र. पु. सः, अपठत्, तौ अपठताम्, ते अपठन् म. पु. त्वम् अपठः, युवाम् अपठतम्, यूयम् अपठत उ.पु. अहम् अपठम्, आवाम् अपठाव, वयम् अपठाम

बोध-परीक्षा तथा पुनरावृत्ति

१—भूतकाल उत्तम पुरुष के प्रत्यय कौन-कौन से हैं? उनके साथ कौन से कर्तृ-वाचक पद लगेंगे?

२—भूतकाल में धातु से पहले क्या लगाते हैं ? उदाहरण द्वारा स्पष्ट करो।

३—अधोलिखित पदों के साथ कर्ता लगाओ।
अपतः, अपठन्, अभ्रमाम, अवदम्।

गृह-कार्य

वद् के भूतकाल में कर्तृसहित रूप लिख कर लाने को कहा जायगा।

III

अध्यापक-रोल नम्बर——

पाठ—संस्कृत (व्याकरण) विषय—लोट् की रूपरचना।
कक्षा—सातवीं समय ४० मिनट।

उद्देश्य—१—दिवादि गण के धातुओं के लोट् (आज्ञाबोधक क्रिया) में रूप बतलाना।
२—संस्कृत से हिन्दी तथा हिन्दी से संस्कृत में अनुवाद कर सकने योग्य बनाना।

पूर्वबोध-परीक्षण तथा नवीन पाठ से सम्बन्ध

छात्र हिन्दी तथा इंग्लिश में आज्ञा बोधक क्रियाओं के प्रयोग से सुपरिचित हैं। उन के इसी पूर्व ज्ञान के आधार पर नवीन पाठ में प्रवेश होगा।

१. वह नाचे, वे नाचें।
२. तू नाच, तुम नाचो।
३. मैं नाचूँ, हम नाचें।

शिक्षक बोर्ड पर उपरिनिर्दिष्ट वाक्य लिखकर प्रश्न करेगा कि इन वाक्यों में प्रयुक्त नाचे, नाचें, नाच, नाचो, नाचूँ, नाचें आदि क्रिया-पदों से क्या प्रकट होता है ?

छात्र उत्तर देंगे कि इनसे आज्ञा प्रकट होती है। अन्य या प्रथम, मध्यम तथा उत्तम पुरुष नाचने की आज्ञा देते हैं। नाच धातु के रूपों का आज्ञा देने में तीनों पुरुषों में प्रयोग है।

उद्देश्य-कथन— शिक्षक बतला देगा कि जिस तरह हिन्दी में नाचना धातु के आज्ञा देने में रूप पढ़े हैं इसी तरह आज हम संस्कृत में दिवादि गण के कुछ धातुओं के आज्ञाबोधक रूप बतलायेंगे। साथ ही यह बतलाना चाहिए कि जैसे भ्वादि गण का विकरण 'अ' है वैसे ही दिवादि गण का विकरण 'य' है। इसलिये दिवादि गण के धातुओं के साथ 'य' मध्य में लगेगा।

वस्तु—	शिक्षा-विधि	कृष्ण फलकसार
	शिक्षक छात्रों से पूछेगा कि ऊपर लिखे नाचे, नाचें, नाचूँ, नाचो आदि आज्ञा बोधक रूप नाच धातु से कैसे बने? छात्र कहेंगे कि प्रथम पुरुष में "ए" "एँ," मध्यम पुरुष के बहुवचन में "ओ" और उत्तम पुरुष में "ऊँ" "एँ" प्रत्यय लगाने से बने हैं। उन के इस ज्ञान के आधार पर	

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	शिक्षक बतला देगा कि जिस तरह "ए" आदि प्रत्यय लगाकर हिन्दी में रूप बनाये जाते हैं उसी तरह संस्कृत में भी प्रत्यय लगाने से आज्ञा-बोधक रूप बनाये जाते हैं।	प्र.पु. तु, ताम्, अन्तु म.पु. × तम्, त उ.पु. आनि, आव, आम
लोट के प्रत्यय	आज्ञा-बोधक रूप को लोट् की क्रिया कहते हैं। इस के प्रत्यय ये हैं। दो तीन छात्रों से लोट् के प्रत्यय सुनने चाहिये।	
दिव् के रूप दिव्-चमकना या क्रीड़ा करना	हिन्दी में छात्रों ने नृत्य, दिव्य, मोह, तोष आदि शब्द पढ़े होते हैं। अत शिक्षक दिव्, नृत्, तुष्, मुह्, पुष् की रूप-रचना ही छात्रों से करवायेगा।	दिव् के रूप प्र.पु. दीव्यतु, दीव्यताम्, दीव्यन्तु म.पु. दीव्य, दीव्यतम्, दीव्यत उ.पु. दीव्यानि, दीव्याव, दीव्याम
नृत् के रूप नृत्=नाचना	शिक्षक लोट् के प्रत्यय लगाकर दिव् के रूप लिखने को कहेगा। यह भी बता देगा कि इसमें धातु तथा प्रत्यय के मध्य में 'य' विकरण लगेगा और ह्रस्व 'इ' को दीर्घ 'ई' हो जायगी।	नृत् (नृत्य) प्र.पु. नृत्यतु, नृत्यताम्, नृत्यन्तु म.पु. नृत्य, नृत्यतम्, नृत्यत उ.पु. नृत्यानि, नृत्याव, नृत्याम इसी प्रकार अन्य धातुओं के भी

वस्तु—	शिक्षा-विधि	कृष्णफलक सार
	शिक्षक अभ्यासार्थ भिन्न-भिन्न छात्रों से नृत्, मुद्, तुष् के रूप लिखने को कहेगा।	
कर्तृ-सहित प्रयोग—	शिक्षक दिवादि गण के धातुओं का लोट् में अभ्यास करवाकर इनके साथ कर्ता लगाने को कहेगा। एक छात्र से प्रथम पुरुष के नृत् के रूपों के साथ कर्ता लगवायेगा। इसी प्रकार दूसरे और तीसरे छात्र से क्रमशः मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष के रूपों के साथ कर्ता का प्रयोग करवायेगा।	प्र.पु. सः नृत्यतु, तौ नृत्यताम्, ते नृत्यन्तु म.पु. त्वं नृत्य, युवां नृत्यतम्, यूयं नृत्यत उ.पु. अहं नृत्यानि, आवां नृत्याव, वयं नृत्याम

परीक्षण, प्रयोग तथा पुनरावृत्ति

१—तुष् के मध्यम पुरुष में रूप बतलाओ।
२—लोट् उत्तम पुरुष के कौन से प्रत्यय हैं?
३—अधोनिर्दिष्ट के लिए लोट् के रूप बतलाओ।
(क) वह प्रसन्न हो।
(ख) तुम दो प्रसन्न हो।
(ग) हम सब प्रसन्न हों।
४—शुद्ध करो—
(क) त्वं नृत्यतु (ख) ते नृत्यताम् (ग) वयं नृत्यथ।

गृह-कार्य

अस् (अस्य) फेंकना। द्रुह् (द्रुह्य) शत्रुता करना। इन दो धातुओं के कर्तृसहित लोट् के रूप लिख कर लाने को कहा जायगा।

IV

अध्यापक-रोल नम्बर——

पाठ—संस्कृत (व्याकरण) विषय—भ्वादि गण के धातुओं के लृट् में रूप

कक्षा—सातवें समय ४० मिनट

उद्देश्य—१—पत्, पठ्, वद् भ्रम् के लृट् में रूप बतलाना।

२.—ऐसे ही रूपों का संस्कृत तथा हिन्दी में अनुवाद द्वारा अभ्यास।

पूर्वबोध-परीक्षण तथा नवीन पाठ से सम्बन्ध

छात्र हिन्दी में भविष्यत् काल की क्रियाओं की रूप रचना जानते हैं। उनके इसी ज्ञान के आधार पर नवीन पाठ से सम्बन्ध जोड़ दिया जायगा।

तुलना—१—वह पढ़ता है, वह पढ़ेगा।

२.—तू पढ़ता है, तुम पढ़ोगे।

३—मैं पढ़ता हूँ, हम पढ़ेंगे।

शिक्षक उपरिनिर्दिष्ट वाक्यों को कृष्णफलक पर लिख देगा, उन में अन्तर पूछेगा। प्रथम तीन वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद करवायेगा। छात्र अन्तर बतला देंगे कि प्रथम तीन वाक्यों में पढ़ने की क्रिया वर्तमान काल में है। दूसरे वाक्यों में क्रिया आने वाले समय—भविष्यत् की है।

उद्देश्य-कथन—शिक्षक नवीन पाठ का उद्देश्य बतला देगा कि वर्तमान काल (लट्) की क्रिया बनाने की रीति तो तुम जानते हो आज हम भविष्यत् काल (लृट्) की क्रिया बनाने की विधि बतलायेंगे।

वस्तु	शिक्षा-विधि	कृष्णफलक सार
	शिक्षक छात्रों को लट् के प्रत्यय लिखने को कहेगा। छात्र लिख देंगे।	लट् प्र. पु. ति, तः, अन्ति। म. पु. सि, थः, थ। उ. पु. मि, वः, मः।
लृट् के प्रत्यय	शिक्षक बतला देगा कि लट् के प्रत्ययों से पहले 'स्य' लगाने से लृट् के प्रत्यय बनजाते हैं। 'स्य' लगाकर लट् के प्रत्यय छात्रों से लिखवाये जायगे।	
	शिक्षक दो तीन छात्रों से लृट् के प्रत्यय पढ़वा कर उन्हें बतलायेगा कि लट् में तो धातु और प्रत्यय के मध्य गण का चिह्न लगता है परन्तु लृट् में गण का चिह्न नहीं लगेगा। कुछ धातुओं के अन्त में 'इ' लगेगा। यथा—पठ+इ	लृट् प्र. पु. स्यति, स्यतः, स्यन्ति। म. पु. स्यसि, स्यथः, स्यथ। उ. पु. स्यामि, स्यावः, स्यामः।

वस्तु—	शिक्षा-विधि	कृष्णफलक सार
पठ् के लृट् में रूप	लगाकर पठि+स्यति, पठि+स्यतः आदि। 'इ' के बाद आने वाला स्, 'ष' मे बदल जायगा। यथा—पठि+स्यति से पठिष्यति बन जायगा। इसीप्रकार लृट् के अन्य रूप लिखने को शिक्षक छात्रों से कहेगा। छात्र पठ् से इ लगाकर तथा स् को ष् में बदल कर शेष रूप लिखदेंगे। शिक्षक भिन्न-भिन्न छात्रों से इसी प्रकार पत्, वद्, भ्रम्, के लृट् मे रूप अपनी अपनी कापियों में लिखने को कहेगा। लिखने के समय अध्यापक निरीक्षण करेगा। लेख-सम्बन्धी अशुद्धियों का छात्रों से ही संशोधन करवायेगा। शिक्षक लृट् के रूपों का अभ्यास करवा कर इन के साथ कर्ता लगा कर लिखने का अभ्यास करवायेगा।	पठ्— प्र. पु. पठिष्यति, पठिष्यतः, पठिष्यन्ति । म. पु. पठिष्यसि, पठिष्यथः, पठिष्यथ । उ. पु. पठिष्यामि, पठिष्यावः, पठिष्यामः । सः पठिष्यति, तौ पठिष्यतः आदि

पठित-परीक्षण

१—लट् के प्रत्ययों में क्या लगाकर लृट् के प्रत्यय बनते
२—लृट् के प्रत्ययों से पूर्व पत्, पठ्, वद्, भ्रम् के साथ क्या लगाया जाता है?
३—'इ' के अनन्तर 'स्' हो तो उस में क्या परिवर्तन होता है?

गृह-कार्य

शिक्षक हस्, खाद्, गम् के लृट् में रूप लिखने का आदेश देगा।

V

अध्यापक-रोल नम्बर——
पाठ—संस्कृत (व्याकरण) विषय—सन्धि
कक्षा—आठवीं समय ४० मिनट
उद्देश्य—उदाहरणों द्वारा सन्धि-लक्षण छात्रों से ही करवाना।

पूर्व-बोध-परीक्षण तथा नवीन ज्ञान से सम्बन्ध

छात्र हिन्दी में प्रयुक्त सन्धि सहित या सन्धि रहित दोनों प्रकार के शब्दों के अर्थ से परिचित हैं अतः उनके इस ज्ञान के आधार पर नवीन पाठ से सम्बन्ध स्थापित कर दिया जायगा।

(क) देव+आलय=देवालय।
(ख) विद्या+आलय=विद्यालय।
(ग) भोजन+आलय=भोजनालय।
(घ) प्रधान+अध्यापक=प्रधानाध्यापक।

शिक्षक उपरिलिखित सन्धिरहित तथा सन्धिसहित शब्दों को कृष्णफलक पर लिखकर छात्रों से प्रश्न करेगा—

१—देव, आलय तथा देवालय का,

२—विद्या, आलय तथा विद्यालय का,

३—भोजन, आलय तथा भोजनालय का,

४—प्रधान, अध्यापक तथा प्रधानाध्यापक का क्या अर्थ है ? छात्रों द्वारा अर्थ बतला देने पर शिक्षक फिर प्रश्न करेगा—

१—देव+आलय तथा देवालय में,

२—विद्या+आलय तथा विद्यालय में,

३—भोजन+आलय तथा भोजनालय में,

४—प्रधान+अध्यापक तथा प्रधानाध्यापक में क्या अन्तर है ?

५—देव शब्द के अन्त में क्या है ? आलय के आदि में क्या है ? देवालय में क्या परिवर्तन हुआ ? ऐसे प्रश्नों द्वारा छात्रों को अभ्यास करवायेगा कि देव के अन्त में व के साथ 'अ' है और आलय के आरम्भ में 'आ' है। देवालय में 'अ' तथा 'आ' के मिलने से 'आ' बना हुआ है।

उद्देश्य-कथन—इस प्रकार जब छात्र सन्धिरहित तथा सन्धि-सहित पदों की व्याख्या करें तब अध्यापक नवीन पाठ से सम्बन्ध स्थापित करेगा कि आज हम ऐसा पाठ पढ़ायेंगे जिसमें यह बतलाया जायगा कि अ+ या आ तथा आ+अ या आ के मेल से जो एक 'आ' बन जाता है, ऐसे परिवर्तन को क्या कहते हैं ?

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
सन्धिलक्षण क–शिव+आलय. =शिवालयः । ख–दैत्य+अरिः =दैत्यारिः । ग–दया+आनन्दः =दयानन्द. ।	शिक्षक कृष्णफलक के दो भाग करलेगा । एक भाग में छात्रों को लिखाने के लिए लक्षण तथा उदाहरण लिखेगा, दूसरे में लक्षण का समन्वय उदाहरणों में करके दिखायेगा । अर्थात् प्रक्रिया को विस्तार से लिखेगा । क—शिव+आलयः=शिवालयः । ख—दैत्य+अरिः=दैत्यारिः। ग—दया+आनन्दः=दयानन्दः। शिक्षक क्रमशः छात्रों से पूछेगा कि ऊपर के तीनों उदाहरणों में शिव आदि शब्दों के अन्त में, आलय आदि शब्दों के आदि में कौन से अक्षर हैं और शिवालय आदि शब्दों में क्या परिवर्तन देख रहेहो ?	

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	छात्र कहेंगे इन तीनों उदाहरणों में क्रमशः अन्त में अ, अ, आ हैं और दूसरे शब्दों के आदि में आ, अ, आ हैं। अन्त और आदि के अ+आ, अ+अ और आ+आ के मेल से 'आ' बना हुआ दिखाई देता है।	
	उक्त उदाहरणों की ओर फिर ध्यान दिलाता हुआ अध्यापक पूछेगा—	
	१—शिव के 'अ' तथा आलय के 'आ' के मध्य में क्या कोई वर्ण है? इसी प्रकार शेष उदाहरणों में भी प्रश्न होगा।	
	छात्र—मध्य में कोई वर्ण नहीं है। सब उदाहरणों में दोनों वर्ण निरन्तर समीप हैं। दोनों के मेल से एक आ बना हुआ है।	सन्धि-लक्षण- वर्णों के अत्यन्त (निरन्तर) समीप होने पर ध्वनि में विकार होकर जो रूप बनता है, उसे सन्धि कहते हैं।
	शिक्षक बतला देगा कि निरन्तर समीप आने	

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	पर अक्षरों में इस प्रकार जो विकार होता है उसे सन्धि कहते हैं। शिक्षक छात्रों से पूछता हुआ कृष्ण-फलक पर सन्धि का लक्षण लिखदेगा।	यथा—शिव+आलयः में शिवा-लय.। दैत्य+अरिः में दैत्यारि.। दया+आनन्दः में दयानन्द.।

पठित-परीक्षण तथा पुनरावृत्ति

१—सन्धि किसे कहते हैं?

२—सन्धि कब होती है?

३—क्या दो वर्णों के मध्य में किसी अन्य वर्ण के आने पर भी सन्धि हो सकती है?

४—सन्धि में क्या परिवर्तन होता है?

गृह-कार्य

१—सन्धि का लक्षण उदाहरण सहित लिखकर लाने को कहा जायगा।

२—धर्म+अर्थः, पाप+आत्मा, ब्रह्म+आनन्दः। इनमें सन्धि कर के लिख कर लाने को कहा जायगा।

VI

अध्यापक-रोल नम्बर——

पाठ—संस्कृत (व्याकरण) विषय—सन्धि के भेद

कक्षा—आठवीं समय ४० मिनट

उद्देश्य—उदाहरणों द्वारा छात्रों को सन्धियों में परस्पर अन्तर का ज्ञान कराते हुए सन्धि के भेद बतला कर उनके लक्षणों का ज्ञान करवाना।

पूर्वबोध-परीक्षण तथा नवीन पाठ से सम्बन्ध

छात्रों ने हिन्दी में ऐसे सन्धिरहित या सन्धिसहित पद पढ़े होते हैं और उनके अर्थ का ज्ञान भी रखते हैं जिनमें स्वर, व्यंजन और विसर्गों को विकार या परिवर्तन हुआ होता है। अतः इस ज्ञान के आधार पर छात्रों का नवीन पाठ में प्रवेश होगा।

क—दया+आनन्दः=दयानन्दः, नर+इन्द्रः=नरेन्द्रः।

ख—जगत्+ईशः=जगदीशः, जगत्+नाथः=जगन्नाथः।

ग—मनः+हरः=मनोहरः, निः+फलः=निष्फलः।

शिक्षक ऊपर के उदाहरणों को कृष्णफलक पर लिख कर प्रश्न करेगा।

शिक्षक—सन्धि का क्या लक्षण है?

छात्र—वर्णों के निरन्तर समीप होने पर ध्वनि में जो विकार होता है उसे सन्धि कहते हैं।

शिक्षक—ऊपर लिखे हुए क, ख, ग भागों के उदाहरणों में किस में क्या परिवर्तन हुआ देख रहे हो?

एक छात्र—'क' भाग के पहले उदाहरण में आ+आ के मेल से 'आ' बना है। दूसरे उदाहरण में अ+इ के मेल से 'ए' बना है।

दूसरा छात्र—'ख' भाग के प्रथम उदाहरण में 'त्' का 'द्' बना दिखाई दे रहा है। इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में 'त्' का 'न्' बन गया है।

तीसरा छात्र—'ग' भाग के प्रथम उदाहरण में विसर्ग का 'ओ' और दूसरे उदाहरण में विसर्ग को 'ष्' विकार दिखाई देता है।

शिक्षक—दया+आनन्दः = दयानन्दः, नर+इन्द्रः=नरेन्द्रः, इन उदाहरणों में जिन वर्णों को विकार हुआ है उन्हें वर्णमाला के किस भेद में गिना जाता है?

एक छात्र—यहाँ जिन वर्णों में परिवर्तन हुआ है उन्हें स्वर कहते हैं।

शिक्षक—'ख' भाग के उदाहरणों में जिन वर्णों में परिवर्तन हुआ है उन्हें क्या कहते हैं?

दूसरा छात्र—यहाँ त् को क्रमशः द् और न् परिवर्तन हुआ है और त् व्यञ्जन कहलाता है।

शिक्षक—'ग' भाग के उदाहरणों में जिन को विकार हुआ है उन्हें क्या कहते हैं?

तीसरा छात्र—उन्हें विसर्ग कहते हैं।

उद्देश्य-कथन—शिक्षक छात्रों को कहेगा कि आज हम तुम्हें ऐसा पाठ पढ़ाएंगे जिस में यह बतलाया जायगा कि जब स्वरों, व्यञ्जनों और विसर्गों

को परिवर्तन होता है तब उस परिवर्तन को क्या कहते हैं। इस प्रकार नवीन पाठ से सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए।

वस्तु—	शिक्षा-विधि	कृष्णफलक सार
संधि-भेद— क—स्वरसन्धि ख—व्यंजनसन्धि ग—विसर्गसन्धि- उदाहरण— क—नर+इन्द्र= नरेन्द्र । दया+आनन्द= दयानन्द ख—वाक्+ईश =वागीश जगत्+नाथ= जगन्नाथः । ग—मनः+हर= मनोहर । निः+फल= निष्फल ।	शिक्षक कृष्ण-फलक पर क, ख, ग, भागों के उदाहरणों को लिख देगा। तब उक्त उदाहरणों की ओर छात्रों का ध्यान दिलाकर पूछेगा कि प्रत्येक भाग में जिन वर्णों को विकार हुआ है वे स्वर हैं, या व्यंजन या विसर्ग ? छात्र उत्तर देंगे— क—भाग के उदाहरणों में स्वरों को परिवर्तन हुआ है। ख—भाग में व्यञ्जन को विकार हुआ है। ग—भाग में विसर्ग को विकार हुआ है। अब शिक्षक बतला देगा कि स्वर, व्यञ्जन और विसर्ग परिवर्तन होने के कारण इन्हीं के नाम से सन्धि के मुख्य तीन नाम हैं—	१. स्वर-सन्धि— स्वर से परे स्वर होने पर जो परिवर्तन होता है उसे स्वरसन्धि कहते हैं यथा— नर+इन्द्र=नरेन्द्र आदि। २.व्यञ्जन-सन्धि- व्यञ्जन से स्वर या व्यञ्जन परे होने पर जो परिवर्तन होता है उसे व्यञ्जन-सन्धि कहते हैं। यथा— वाक्+ईश= वागीश। आदि। ३.विसर्ग सन्धि- विसर्ग से परे स्वर या व्यंजन

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	१—स्वर-सन्धि, २—व्यञ्जन-सन्धि, ३—विसर्गसन्धि, । ये ही सन्धि के तीन भेद हैं। अध्यापक छात्रों से पूछता हुआ तीनों के लक्षण लिख देगा।	होने पर जो परिवर्तन होता है उसे विसर्ग-सन्धि कहते हैं । यथा— मनः+हरः=मनोहर आदि।

पठित-परीक्षण तथा पुनरावृत्ति

१—सन्धि किसे कहते हैं?

२—सन्धि के भेद कितने हैं? उनके नाम और लक्षण बतलाओ?

३—स्वर-सन्धि और विसर्ग-सन्धि में क्या अन्तर है?

गृह-कार्य

१—सन्धि तथा उसके भेदों का लक्षण लिख कर लाना।

२—सन्धि के मुख्य भेदों में पारस्परिक अन्तर लिख लाना।

VII

[**सूचना**—इस पाठ को उचित भागों में विभक्त कर लेना चाहिए।]

अध्यापक-रोलनम्बर——

पाठ—संस्कृत (व्याकरण) विषय—स्वर-सन्धि

कक्षा—आठवीं समय ४० मिनट

उद्देश्य—उदाहरणों द्वारा लक्षण। व्याकरण-शिक्षण के इस नियम के अनुसार स्वर-सन्धि को छात्रों

से ही निकलवा कर स्वर-सन्धि के भेद बतलाना तथा उनका अभ्यास करवाना।

पूर्वबोध-परीक्षण तथा नवीन ज्ञान से सम्बन्ध

छात्रों को सन्धि का साधारण ज्ञान है ही। उसी के आधार पर नवीन पाठ में प्रवेश होगा।

क—मुनि+इन्द्रः=मुनीन्द्रः। कवि+ईशः=कवीशः।

ख—नर+इन्द्रः=नरेन्द्रः। गण+ईशः=गणेशः।

शिक्षक ऊपरलिखित सन्धिरहित तथा सन्धियुक्तरूपों को बोर्ड पर लिख कर प्रश्न करेगा—

शिक्षक—'क' भाग के तथा 'ख' भाग के अलग-अलग तथा मिले हुए रूपों में क्या अन्तर है ?

छात्र—'क' भाग के उदाहरणों के मुनि और कवि के अन्त में 'इ' 'इ' तथा इन्द्रः और ईशः के आदि में क्रमशः 'इ' 'ई' हैं। इ+इ और इ+ई के मेल से 'ई' परिवर्तन हो गया है।

इसी तरह 'ख' भाग में अ+इ तथा अ+ई से ए बन गई है।

शिक्षक—दोनों ही भागों में यह मेल किन-किन वर्णों में हुआ है ? इस सन्धि को तुम क्या कहोगे।

छात्र—यह सन्धि दो स्वरों के मेल से हुई है। इस को हम स्वर-सन्धि कहेंगे।

उद्देश्य-कथन—अब शिक्षक बतला देगा कि स्वर-सन्धि एक प्रकार की नहीं है। कहीं समान स्वरों के मेल से उसी प्रकार का दीर्घ स्वर बन जाता है कहीं असमान स्वरों में सन्धि होती है। आज स्वर-सन्धि के भेदों को बतलाना ही हमारा उद्देश्य है।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
१.दीर्घ-सन्धि— वेद+अन्त =वेदान्तः । भोजन+आलयः =भोजनालय । विद्या+अर्थी =विद्यार्थी । दया+आनन्दः =दयानन्द । कवि+इन्द्र =कवीन्द्रः । भानु+उदय =भानूदय ।	शिक्षक साथ दिये गये सन्धि-रहित तथा सन्धि-सहित उदाहरणों द्वारा छात्रों से यह निकलवाने का प्रयत्न करेगा कि इन में समान स्वर हैं। प्रथम शब्दों के अन्तिम तथा द्वितीय शब्दों के आदिम समान या सवर्ण स्वरों के मेल से उसी प्रकार का दीर्घस्वर बन गया है। यथा— अ+अ=आ। अ+आ=आ। आ+अ=आ। आ+आ=आ। इ+इ=ई। उ+उ=ऊ। शिक्षक बतला देगा कि ऐसी सन्धि को दीर्घ-सन्धि कहते हैं। छात्रों से बनवाकर लक्षण लिखवा दिया जायगा।	१.दीर्घ-सन्धि— ह्रस्व अथवा दीर्घ अ, इ, उ, ऋ, से परे ह्रस्व या दीर्घ अपनी जाति का स्वर आजाय तो दोनो के मेल से अपनी जाति का दीर्घ स्वर बन जाता है। इसे दीर्घ सन्धि कहते हैं। यथा— वेद + अन्त = वेदान्तः आदि।
२. गुण-सन्धि— नर+इन्द्र= नरेन्द्रः यथा+इच्छम्= यथेच्छम्	शिक्षक इन उदाहरणों में छात्रों से ऐसा अभ्यास करवायेगा कि जिससे वे यह बता सकें कि क्रमशः लिखित उदाहरणों में अ+इ के मेल	२. गुण-सन्धि— ह्रस्व 'अ' अथवा दीर्घ 'आ' से परे ह्रस्व इ, उ, ऋ

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
वेद+उपनिषदम् =वेदोपनिषदम् गंगा+उदकम् =गंगोदकम् । महा+ऋषि = महर्षि ।	से ए, आ+इ के मेल से ए, अ+उ के मेल से ओ, आ+उ के मेल से ओ और आ+ऋ के मेल से अर् बन गये हैं। अ या आ के परे इ के मिलने से ए, अ आ से परे उ के होने पर ओ और अ आ के परे ऋ के मिलने से अर् बना है। शिक्षक बतला देगा कि इसे ही गुण-सन्धि कहते हैं। छात्र स्वयं लक्षण लिखेंगे ।	या दीर्घ ई, ऊ, ऋ आने पर क्रमश — अ या आ+इ या ई=ए । अ या आ+उ या ऊ=ओ । अ या आ+ऋ या ॠ=अर् । बन जाते हैं। इस सन्धि को गुणसन्धि कहते हैं । यथा— नर+इन्द्रः= नरेन्द्रः, वेद+ उपनिषदम्= वेदोपनिषदम् । देव+ऋषि = देवर्षि, आदि ।
३. वृद्धि-सन्धि— अद्य+एव =अद्यैव । देव+ऐश्वर्यम् =देवैश्वर्यम् ।	शिक्षक पूर्ववत् लिखित उदाहरणों में छात्रों से ही ऐसा अभ्यास करवाने का प्रयत्न करेगा कि उन में क्रमशः अ+ए के मेल से 'ऐ,'	३. वृद्धि सन्धि— ह्रस्व या दीर्घ अकार से परे ए, ऐ और ओ, औ के आने पर

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
मम+ओष्ठयो =ममौष्ठयो तव+औदार्यम् =तवौदार्यम्	अ+ऐ के मेल से भी 'ऐ,' अ+ओ के मेल से औ और अ+औ के से भी 'औ' बने हैं। ह्रस्व अथवा दीर्घ अ, आ से परे ए या ऐ के आने से 'ऐ' तथा ओ या औ के आने से 'औ' बन जाते हैं। शिक्षक बतला देगा कि ऐसी सन्धि को वृद्धि-सन्धि कहते हैं। लक्षण छात्र स्वयं लिखेंगे।	अ या आ+ए या ऐ मेल से 'ऐ,' अ या आ +ओ या औ के मेल से 'औ' बनता है। इस को वृद्धि सन्धि कहते हैं। यथा— अद्य + एव = अद्यैव आदि।
४. यण्-सन्धि— यदि + अपि =यद्यपि। नदी+उदकम् =नद्युदकम्। मधु+आलय =मध्वालय। पितृ+आज्ञा =पित्राज्ञा।	शिक्षक साथ दिए गये उदाहरणों में छात्रों से सन्धि रहित तथा सन्धि सहित पदों में भेद और परिवर्तन पूछ कर अभ्यास करवायेगा कि इन में क्रमशः इ+अ मेल से 'य,' ई+उ के मेल 'यु,' उ+आ के मेल से 'वा,' ऋ+आ के मेल 'रा' बना है। शिक्षक बता देगा कि इ या ई, उ या ऊ, ऋ या ॠ के परे असमान स्वर के आने पर इ, ई, को 'य्,' उ, ऊ, को 'व्' ऋ, ॠ	४. यण्-सन्धि— ह्रस्व या दीर्घ इकार, उकार और ऋकार से परे यदि कोई भिन्न स्वर हो तो इकार को 'य्', उकार को 'व्'और ऋकार को 'र्' हो जाता है और य्,व्,र्, भिन्न-स्वर की मात्रा से मिल जाते हैं।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	को 'र' बनता है और असमान स्वर की मात्रा लग जाती है। इस को यण् सन्धि कहते हैं। छात्र समझ चुके हैं। लक्षण स्वयं लिखेंगे।	यही यण् सन्धि है। यथा— यदि + अपि =यद्यपि, आदि।
४. अयादि-सन्धि ने+अनम् =नयनम्। नै+अक =गायक। भो+अति =भवति। द्वौ+एव =द्वावेव।	शिक्षक दिये गये उदाहरणों में छात्रों से पूछ-पूछ कर अभ्यास करवायेगा कि यहाँ क्रमशः ए+अ के मेल से 'अय्,' ऐ+अ के मेल से 'आय्,' ओ+अ के मेल से 'अव्' तथा औ+अ के मेल से 'आव्' बन गया है। शिक्षक बतलायेगा कि ए, ऐ, ओ, औ, के परे स्वर के आने से ए को 'अय्,' ऐ को 'आय्' ओ को 'अव्' और औ को 'आव्' होगया तथा सामने के स्वर की मात्रा मिल गई है। इस को अयादि सन्धि कहते हैं। लक्षण छात्र लिख लेंगे।	४. अयादि-सन्धि ए, ऐ, ओ और औ से परे यदि कोई स्वर आ-जाय तो ए को 'अय्,' ऐ को आय्, ओ को 'अव्' और औ को 'आव्' हो जाता है। सामने के स्वर की मात्रा मिल जाती है, यही अयादि सन्धि है। यथा—ने+अनम=नयनम्, पौ+अक=पा-वक, आदि।

परीक्षण तथा पुनरावृत्ति

१—यण् और वृद्धि सन्धि किसे कहते हैं ?
२—सन्धिच्छेद करो—गङ्गोदकम्, सदैव, यद्यपि, भवति।

गृहकार्य

दीर्घ तथा गुण सन्धियों के लक्षण लिख लाना।

VIII

अध्यापक-रोल नम्बर——
पाठ-संस्कृत (व्याकरण) विषय—व्यञ्जन-सन्धिप्रकरण
कक्षा—आठवीं समय ४० मिनट

उद्देश्य—व्यञ्जनसन्धि-लक्षण-भेद उदाहरणों द्वारा छात्रों से ही निकलवाते हुए उन का अभ्यास करवाना।

पूर्व-बोध परीक्षण तथा नवीन पाठ से सम्बन्ध

छात्र व्यञ्जन-सन्धि का सामान्य ज्ञान रखते हैं, अतः उसी के आधार पर नवीन पाठ से सम्बन्ध स्थापित किया जायगा।

शिक्षक—व्यञ्जन-सन्धि किसे कहते हैं ?

छात्र—स्वर अथवा व्यञ्जन परे होने पर व्यञ्जन में जो विकार होता है, उसे व्यञ्जन-सन्धि कहते हैं।

शिक्षक—इन उदाहरणों में व्यञ्जन में क्या विकार है ? क्या यह विकार एक प्रकार का है ?
वाक्+ईशः=वागीशः।
निर्+रोगः=नीरोगः।
तत्+चक्रम्=तच्चक्रम्।

प्रथम छात्र—प्रथम उदाहरण में वर्ग के प्रथम अक्षर क् को स्वर परे होने पर उसी वर्ग का तृतीय अक्षर होगया है। इस में प्रथम अक्षर का तृतीय अक्षर में विकार है।

द्वितीय छात्र--द्वितीय उदाहरण में र् के अनन्तर र् था। पहले र् का लोप होकर ह्रस्व स्वर दीर्घ होगया है। यह है—र् के अनन्तर र् होने पर प्रथम र् को लोप का विकार तथा लुप्त र् से पूर्व ह्रस्व को दीर्घ होने का विकार।

तृतीय छात्र—तत्+चक्रम् में त् के अनन्तर च् है त् के अनन्तर च् होने पर त् का च् में परिवर्तन होगया है।

उद्देश्य-कथन--शिक्षक बता देगा कि इन उदाहरणों में स्वर या व्यञ्जन परे होने पर व्यञ्जन को विकार हुआ है। यह विकार एक प्रकार का नहीं, अनेक प्रकार का है, अतः आज हम व्यञ्जन-सन्धि के भेद ही बतायेंगे।

वस्तु—	शिक्षणविधि	कृष्णफलक सार
१—वर्ग के प्रथम अक्षर का तृतीय वर्ण में परिवर्तन वाक्+ईश =वागीश। षट्+आदि =षडादि।	शिक्षक कृष्णफलक के एक भाग पर पाँच उदाहरण लिख कर प्रश्न करेगा। शिक्षक—इन उदाहरणों में क्या परिवर्तन है ? छात्र—पद के अन्त में आने वाला वर्ग का प्रथम	१—वर्ग के प्रथम अक्षर का तृतीय वर्ण में परिवर्तन— पदान्त क् च् ट् त् प् से परे यदि स्वर, वर्ग

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
सम्राट्+इच्छति =सम्राडिच्छति क्वचित् + अरण्ये=क्वचिदरण्ये । अप्+जम् = अब्जम् ।	अक्षर क्, च्, ट्, त्, प् स्वर परे होने से उसी वर्ग के तृतीय वर्ण में बदल गया है। क् ग् में, च् ज् में, ट् ड् में, त् द् में, प् ब् में बदल गया है। शिक्षक अब बता देगा कि यह है वर्ग के प्रथम अक्षर का तृतीय वर्ण में परिवर्तन। इन उदाहरणों में वर्ग के प्रथम अक्षर से परे स्वर है। यदि वर्ग का ३य, ४र्थ, ५म वर्ण और अन्तःस्थ (य र ल व) तथा ह् भी परे हो तो भी यही परिवर्तन होता है। नियम छात्र स्वयं लिख देंगे।	का ३य, ४र्थ ५म और अन्तःस्थ वर्ण तथा ह हो तो उस को अपने वर्ग का ३य वर्ण हो जाता है। यथा— वाक्+ईश =वागीश । अच्+आदिः =अजादि । आदि ।
२—वर्ग के प्रथम अक्षर का अनुनासिक परे होने पर अपने वर्ग के पंचम अक्षर में परिवर्तन प्राक् + मनोहर =प्राङ्मनोहरः	(२) शिक्षक सन्धि सहित तथा सन्धि रहित रूप लिख कर प्रश्न करेगा— शिक्षक—इन उदाहरणों में क्या परिवर्तन है? छात्र—क्रमशः—वर्ग के प्रथम अक्षर क्, च्, ट्, त्,	(२) वर्ग के प्रथम अक्षर का अपने वर्ग के पंचम वर्ण में परिवर्तन— वर्ग के प्रथम अक्षर (क् च् ट्

वस्तु—	शिक्षणविधि	कृष्णफलक सार
अच्+नास्ति =अञ्नास्ति । षाट्+मासिकम =षाण्मासिकम् तन्+न=तन्न अप्+मयम् =अम्मयम् ।	प्, का पञ्चम वर्ण परे होने पर अपने वर्ग का पञ्चम वर्ण होगया है । शिक्षक यहाँ पर बतला देगा कि वर्ग के प्रथम वर्ण को तृतीय वर्ण होने का नियम तो तुम पढ़ चुके हो इन में यह विशेषता है कि यदि वर्ग के प्रथम अक्षर से परे वर्ग का पञ्चम अक्षर हो तो प्रथम अक्षर को उसी वर्ग का पञ्चम भी हो जाता है । छात्र नियम समझ चुकने पर स्वयं लिख देंगे।	त्, प्) को अनुनासिक (ङ्, ञ्, ण्, न्, म्) परे होने पर अपने वर्ग का पंचम अक्षर हो जाता है । यथा— प्राक्+मनोहरः =प्राङ्मनोहर । अप्+मयम्= अम्मयम्, आदि।
३–त्, का च्, ट्, ल् में परिवर्तन— तत्+चक्रम् = तच्चक्रम् । भवत् + टीका =भवट्टीका । तत्+लीनम् =तल्लीनम् ।	(३) उदाहरणों की ओर संकेत करते हुए— शिक्षक–इन में क्या अन्तर और परिवर्तन है ? छात्र—त् को च्, ट्, ल् परे होने पर क्रमशः च्, ट्, ल्, हो गया है। यह है त् का च्, ट्, ल्, परे होने पर उसी वर्ण में परिवर्तन जो परे हो । नियम छात्रों से लिखवाया जायगा।	त् का च्, ट्, ल् में परिवर्तन– त् से परे यदि च्, ट्, ल् हो तो त्, को भी क्रमशः च्, ट्, ल् हो जाते हैं यथा—तत्+चक्रम =तच्चक्रम् । भवत्+टीका =भवट्टीका, आदि ।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
४–र् से परे र् होने पर पूर्व र् का लोप— निर् + रोगः =नीरोगः । पुनर्+रमते =पुनारमते।	४–उदाहरणों की ओर ध्यान दिलाते हुए— शिक्षक—इन रूपों में क्या परिवर्तन है ? छात्र—दोनों उदाहरणों में र् के अनन्तर र् है, पहले र् का लोप होगया और लुप्त र् से पहले स्वर को दीर्घ कर दिया गया । नियम छात्र समझ चुके हैं, स्वयं लिख देंगे ।	४–र् से परे र् होने पर पूर्व र् का लोप— यदि र् से परे र् हो तो पूर्व र् का लोप हो जाता है। र् से पूर्व स्थित स्वर को दीर्घ हो जाता है। यथा–निर्+रोगः= नीरोगः आदि।
५–पदान्त म् का परिवर्तन— किम्+इति= किमिति । किम्+करोति =किङ्करोति, किंकरोति ।	५—उदाहरणों की ओर छात्रों का ध्यान आकृष्ट करते हुए— शिक्षक—इन सन्धि रहित तथा सन्धि सहित रूपों में क्या अन्तर है ? क्या परिवर्तन हुआ है ? छात्र—प्रथम उदाहरण में पदान्त म् से परे स्वर था। म् स्वर में मिल गया। द्वितीय उदाहरण में म् से परे व्यञ्जन (कवर्ग) का क है। म् आगे आने वाले	पदान्त म् का परिवर्तन— पदान्त म् से परे यदि स्वर हो तो म् स्वर में मिल जाता है। यदि परे व्यञ्जन हो तो म् को अनुस्वार अथवा जिस वर्ग का अक्षर परे हो उसी वर्ग का पञ्चम अक्षर

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	व्यञ्जन के वर्ग के पञ्चम वर्ण ङ् में तथा अनुस्वार में बदल गया है। नियम कृष्णफलक पर लिखवा दिया जायगा।	हो जाता है यथा—किम्+इति=किमिति किम्+करोति =किङ्करोति, किंकरोति।

पठित-परीक्षा तथा पुनरावृत्ति

१—वर्ग का प्रथम अक्षर तृतीय तथा पञ्चम अक्षर में कब बदलता है ?

२—त् का परिवर्तन च्, ट् और ल् में कब होता है ?

३—सन्धिच्छेद करो—कथमपि, तदाकर्ण्य, एतच्चिन्तयित्वा।

गृह-कार्य

पठित-परीक्षण के तीनों प्रश्नों का उत्तर लिख कर लाना।

IX

अध्यापक-रोल नम्बर——

पाठ-संस्कृत (व्याकरण) विषय—विसर्गसन्धि

कक्षा—आठवीं समय ४० मिनट

उद्देश्य—विसर्गसन्धि का अभ्यास तथा उसके भेदों का उदाहरणों द्वारा लक्षण और समन्वय।

पूर्व-बोध-परीक्षण तथा नवीन पाठ से सम्बन्ध

छात्र 'सन्धि के मुख्य भेद' पाठ में विसर्ग-सन्धि का सामान्य

ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं। उसी के आधार पर नवीन पाठ से सम्बन्ध स्थापित किया जायगा।

कः+अपि=कोऽपि।

कर्तव्यः+इति=कर्तव्य इति।

तयोः+एकः=तयोरेकः।

कृष्णफलक पर लिखे हुए उदाहरणों की ओर ध्यान दिलाते हुए—

शिक्षक—इन रूपों में क्या अन्तर और परिवर्तन है? तथा किस में परिवर्तन है?

एक छात्र—प्रथम उदाहरण में विसर्ग से पहले और पीछे भी 'अ' है। विसर्ग पहले अ के साथ 'ओ' में बदल गया है और पीछे के 'अ' का लोप हो गया है।

द्वितीय छात्र—दूसरे उदाहरण में विसर्ग से पहले 'अ' है और परे 'अ' से भिन्न स्वर है। पहले 'अ' तथा परे 'अ' से भिन्न स्वर होने के कारण विसर्ग का लोप हो गया है।

तृतीय छात्र—तीसरे उदाहरण में विसर्ग से पहले तथा परे 'अ' से भिन्न स्वर है, विसर्ग 'र्' में बदला हुआ है।

उद्देश्य-कथन—शिक्षक बतला देगा कि उपरिलिखित उदाहरणों में विसर्ग में परिवर्तन है। कहीं तो पहले 'अ' के साथ मिल कर विसर्ग 'ओ' में बदल गये हैं; कहीं विसर्ग का लोप होगया है और कहीं विसर्गों को 'र्' होगया है। आज हम विसर्ग-सन्धि के भेदों की व्याख्या करेंगे।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
१. विसर्ग को 'उ' राम + अवदत् = रामोऽवदत् । मृग + धावति = मृगो धावति । मेघ + गर्जति = मेघो गर्जति । नृप + दण्डयति = नृपो दण्डयति।	उदाहरणों की ओर छात्रों का ध्यान आकृष्ट करते हुए— शिक्षक—सन्धिरहित तथा सन्धिसहित पदों में क्या परिवर्तन देख रहे हो ? छात्र—प्रथम उदाहरण में विसर्ग से पहले तथा पीछे 'अ' है। पहला 'अ' विसर्ग से मिलकर 'ओ' में बदल गया है और पीछे के 'अ' का लोप होगया है। शेष तीन उदाहरणों में विसर्ग से परे वर्गों के तृतीय तथा चतुर्थ वर्ण होने से पहले 'अ' और विसर्ग को 'ओ' परिवर्तन होगया है। शिक्षक बता देगा कि विसर्ग को 'ओ' नहीं, 'उ' होता है। तब अ से परे उ होने से स्वरसन्धि-भेद गुण-सन्धि के नियम से अ+उ के मेल से 'ओ' बन जाता है, विसर्ग को 'उ' होने से यह विसर्गसन्धि का विसर्ग को 'उ' वाला भेद है। नियम छात्र लिखेंगे।	१.विसर्ग को 'उ' यदि विसर्ग से पहले 'अ' हो और परे 'अ' हो अथवा किसी वर्ग का तीसरा चौथा, या पाँचवाँ वर्ण या य्, र्, ल्, व्, ह् इनमें से कोई वर्ण हो तो विसर्ग को 'उ' होता है। यह 'उ' पहले 'अ' के साथ मिलकर 'ओ' में बदल जाता है। यथा मेघः + गर्जति = मेघो गर्जति। आदि।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
२. विसर्ग लोप- नृप +उवाच =नृप उवाच। अत:+एव =अत एव ।	उदाहरणों की ओर संकेत करते हुए— शिक्षक—क्या अन्तर तथा परिवर्तन देखते हो ? छात्र—विसर्ग से पूर्व 'अ' है अनन्तर 'अ' से भिन्न स्वर होने से विसर्ग का लोप होगया है। शिक्षक बता देगा कि विसर्ग के लोप होने पर वहाँ फिर कोई सन्धि नहीं हो सकती। नियम छात्र स्वयं लिख सकेंगे।	२. विसर्ग-लोप-सन्धि— विसर्ग से पूर्व 'अ' और अनन्तर 'अ' से भिन्न स्वर हो तो विसर्ग का लोप हो जाता है। जहा विसर्ग का लोप होता है वहाँ फिर कोई सन्धि नहीं होती यथा— नृपः+उवाच =नृप उवाच। आदि।
३—विसर्ग-लोप-सम्बन्धी अन्य नियम— राजपुत्राः+ऊचु =राजपुत्रा ऊचु। गजाः+धावन्ति =गजा धावन्ति। कन्याः+लज्जन्ते =कन्या लज्जन्ते।	उदाहरणों की ओर संकेत करते हुए छात्रों से— शिक्षक—इन में अन्तर और परिवर्तन बताओ। छात्र—तीनों उदाहरणों में विसर्ग से पूर्व 'आ' है और पीछे क्रमशः 'ऊ' स्वर, वर्ग का चतुर्थ वर्ण और 'ल्' हैं। सर्वत्र विसर्ग का लोप हो गया है। शिक्षक बतलायेगा कि जहाँ	३—विसर्ग-लोप के भेदान्तर— यदि विसर्ग से पूर्व 'आ' और पीछे कोई स्वर या हस् वर्णों (वर्गों के तीसरे, चौथे, पांचवें वर्ण, य्, र्, ल्, व्, ह) में से कोई वर्ण हो

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	विसर्ग से पूर्व 'आ' और पीछे कोई स्वर या वर्ग का ३य, ४र्थ,५म वर्ण या य ,र् , ल, व, ह में से कोई वर्ण हो वहां विसर्ग का लोप हो जाता है । नियम छात्र लिखेंगे ।	तो विसर्ग का लोप हो जाता है । यथा— राजपुत्राः+ऊचुः =राजपुत्रा ऊचुः आदि ।
४-विसर्गको 'र्' नरपति+इव =नरपतिरिव । मुनि+अवदत् =मुनिरवदत् । ऋषि +नमति =ऋषिर्नमति । साधुः+उवाच =साधुरुवाच । तयो +एक =तयोरेक । गौ +इयम् =गौरियम् ।	सन्धि रहित तथा सन्धि सहित रूपों की ओर ध्यान दिलाते हुए श्रेणी से-- शिक्षक—इन में क्या अन्तर और परिवर्तन हैं ? छात्र—विसर्ग से पूर्व 'अ' और 'आ' से भिन्न स्वर हैं, पीछे स्वर या 'हश्' वर्णों में से कोई एक वर्ण है अतः विसर्ग से पूर्व 'अ' या 'आ' से भिन्न स्वर तथा पीछे हश् वर्ण होने से विसर्ग को 'र्' होगया है । नियम छात्र स्वय लिखेंगे ।	४-विसर्ग को 'र्' यदि विसर्ग से पूर्व 'अ' या 'आ' से भिन्न स्वर हो और पीछे कोई स्वर, या हश् वर्ण हो तो विसर्ग को 'र्' हो जाता है । यथा तयोः + एकः =तयोरेकः । आदि ।
५. विसर्गको श्, ष्, स् एकः+चन्द्र =एश्चन्द्र. ।	उदाहरणों की ओर ध्यान दिलाते हुए— शिक्षक—इन रूपों में	५. विसर्ग को श् ष्, स् परिवर्तन— विसर्ग से परे

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
देवः+टीकते =देवष्टीकते । शिक्षिता+ते =शिक्षितास्ते ।	अन्तर तथा परिवर्तन बतलाओ। छात्र—विसर्ग से परे क्रमशः च्, ट्, त्, हैं और विसर्ग को क्रमशः श् ष्, स्, परिवर्तन होगया है शिक्षक समझायेगा कि विसर्ग को च् या छ्, परे होने पर 'श्', ट्, ठ्, परे होने पर 'ष्' त या थ परे होने पर 'स्' होजाता है। नियम छात्र लिखेंगे।	यदि च्, छ्, हों-तो विसर्ग को 'श्', ट्, ठ्, हो तो 'ष्' और त्, थ, हों तो 'स्' होजाता है यथा एक+चन्द्रः =एकश्चन्द्रः । आदि।

परीक्षण तथा पुनरावृत्ति

१. विसर्ग का लोप कब होता है ?
२. विसर्ग को 'र्' कब होता है ?
३. अधोलिखित में सन्धि-च्छेद करो—

गृह-कार्य

राजपुत्रैस्तकम् । अस्माभिरपि । एकोऽवदत् । अपरश्च । विसर्ग को 'उ' तथा 'श् ष् स्,' होने का नियम लिख कर लाने को दिया जायेगा।

X

अध्यापक-रोल नम्बर——

पाठ—संस्कृत (व्याकरण) विषय स् का ष् में तथा न् का ण् में परिवर्तन।

कक्षा—आठवीं समय—४० मिनट

उद्देश्य—'उदाहरणों से नियम' इस विधि का प्रयोग करते हुए स् का ष में तथा न् का ण में परिवर्तन-नियम छात्रों से निकलवा कर उसका अभ्यास करवाना।

पूर्वज्ञान तथा नवीन पाठ में प्रवेश

छात्र सप्तमीबहुवचनान्त तथा षष्ठी-बहुवचनान्त रूपों से परिचित हैं। इसी ज्ञान के आधार पर नवीन पाठ में प्रवेश होगा।

१—लतासु, देवेषु।

२—देवानाम्, चतुर्णाम्।

शिक्षक—ऊपर लिखे शब्द-युग्मों में क्या अन्तर और परिवर्तन है ?

छात्र—प्रथम युग्म में दोनों रूप सप्तमी-बहुवचन हैं, परन्तु देवेषु में 'स्' 'ष्' में बदल गया है। द्वितीय युग्म में दोनों रूप षष्ठी-बहुवचन हैं, किन्तु चतुर्णाम् में 'न्' 'ण्' में परिवर्तित है।

उद्देश्य-कथन—शिक्षक बतलाएगा कि प्रथम युग्म में 'स्' 'ष्' में तथा द्वितीय युग्म में 'न्' 'ण्' में बदल गया है। आज के पाठ द्वारा हम यही सिखायेंगे कि 'स्' का 'ष्' में तथा 'न्' का 'ण्' में परिवर्तन कब होता है ?

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
स का ष में परिवर्तन—षत्वविधि—	शिक्षक छात्रों से लता, मुनि, नदी, देव, साधु, पितृ गो, गिर्, दिक् शब्दों के सप्तमी-बहुवचन के रूप लिखने को कहेगा। छात्र प्रतिदिन के अभ्यास को की सहायता से — लतासु नदीषु पितृषु मुनिषु देवेषु गोषु दिक्षु साधुषु गीर्षु ऐसे रूप लिख देंगे। यदि गिर्, दिक् आदि के रूप छात्र न लिख सकें तो अध्यापक लिखा देगा। शिक्षक—लता शब्द के सप्तमी-बहुवचन तथा अन्य शब्दों के सप्तमी-बहुवचनों में क्या अन्तर है? छात्र—सभी शब्दों का सप्तमी-बहुवचन अन्त में 'सु' प्रत्यय लगाने से बना है। परन्तु लतासु में 'सु' का 'स्' 'ष्' में	

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	नहीं बदला, अन्य शब्दों में बदल गया है। शिक्षक—इन शब्दों के अन्त में सु या षु से पूर्व कौन वर्ण हैं ? छात्र—लता के अन्त में 'आ' है। शेष शब्दों के अन्त में 'अ' या 'आ' से भिन्न कोई स्वर है या र्, ल् और कवर्ग के वर्ण हैं। शिक्षक बतलायेगा कि अ, आ, से भिन्न किसी स्वर या य्, र्, ल्, व्, तथा कवर्ग के किसी अक्षर से परे स् हो तो वह स् 'ष्' में बदल जाता है। नियम छात्र स्वयं लिखेंगे।	षत्वविधि अ, आ से भिन्न स्वर, अन्तःस्थ वर्ण, और कवर्ग से परे प्रत्यय के 'स्' को 'ष्' हो जाता है। यथा— मुनिषु, साधुषु गीर्षु, दिक्षु आदि में इ, उ, र्, क्, से परे प्रत्यय का 'स्' 'ष्' में बदल गया है।
प्रयोग—	आकारान्त तथा अन्य स्वरान्त, अन्तःस्थ वर्णान्त तथा कवर्गान्त शब्दों के सप्तमी-बहुवचनान्त रूपों द्वारा षत्व विधि का अभ्यास करवाया जायगा।	

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
णत्वविधि— 'न्' 'ण्' में परिवर्तन।	शिक्षक, कृष्णफलक पर देवानाम्, मुनीनाम्, पितृणाम् चतुर्णाम्, मुष्णानि इत्यादि रूप लिखकर छात्रों से अन्तर पूछेगा। छात्र कहेंगे कि देवानाम्, मुनीनाम् आदि षष्ठी के बहुवचन हैं, किन्तु देवानाम्, मुनीनाम, में न् को ण् नहीं हुआ और शेष में ऋ, र्, ष्, के अनन्तर न् को ण् हो गया है। जहाँ ऋ, ष्, र्, हैं वहाँ न् को ण् बन गया, जहाँ ये अक्षर नहीं हैं वहाँ परिवर्तन नहीं हुआ। प्रश्नोत्तर द्वारा णत्व विधि को हृदयङ्गम करवा कर शिक्षक छात्रों से लक्षण लिखने को कहेगा।	णत्वविधि— एक ही पद में यदि ऋ, र्, ष् के परे न् हो तो उसको ण् होता है। यथा— पितृनाम्-पितृणाम्; मुष्नानि—मुष्णानि आदि।
ऋ र्, ष् के और न् के मध्य में अन्य वर्ण होने पर न् को ण्	रामेण, नराणाम्, बृंहणम्। शिक्षक इन रूपों को कृष्णफलक पर लिख कर छात्रों को बतायेगा कि इन में भी न् को ण् हो गया है, यद्यपि न्, ऋ, र्, ष्, के अनन्तर	ऋ, र्, ष्, से परे और न्, से पूर्व यदि स्वर, य्, र्, ल्, व्, ह्, कवर्ग, पवर्ग और अनुस्वार का

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	नहीं है। छात्रों से यह निकलवायेगा कि पहले रूप में र् और न् के बीच में आ, म् तथा ए का, दूसरे में आ का, तीसरे में ऋ और म् के बीच में अनुस्वार, ह्, और अ का व्यवधान है। यह सिद्ध हुआ कि एक या कई वर्णों के व्यवधान में भी 'न्' ण् में बदल जाता है। नियम कृष्णफलक पर लिखेगा।	व्यवधान भी हो तो भी 'न्' को 'ण्' हो जाता है। यथा— रामेण, नराणाम् आदि।

परीक्षण तथा आवृत्ति

१—'स्' को 'ष्' कब होता है?

२—लतानाम् में न् को ण् क्यों नहीं हुआ?

गृहकार्य

'न्' को 'ण्' होने का नियम लिख कर लाने को दिया जायगा।

XI

[सूचना—इस पाठ को कई भागों में विभक्त किया जा सकता है।]

अध्यापक-रोल नम्बर——

पाठ—संस्कृत व्याकरण—(कारक) विषय—कारक

कक्षा—आठवीं समय ४० मिनट

उद्देश्य—१—विदित से अविदित २—सरल से क्लिष्ट ३—उदाहरणों से लक्षण—इत्यादि विधियों का अनुसरण करते हुए कारक का लक्षण तथा उसके भेदों में से कर्ता, कर्म और करण का लक्षण छात्रों से ही निकलवाना, जिससे कि छात्रों की रटने की प्रवृत्ति दूर हो और उनकी विवेक-शक्ति जागृत हो सके।

पूर्वज्ञान-परीक्षण तथा नवीन पाठ में प्रवेश

१—श्रीरामः शरणं समस्त-जगताम्।
२—रामं विना का गतिः।
३—रामेण प्रतिहन्यते कलिमलम्।
४—रामाय कार्यं···नमः।
५—रामात् त्रस्यति काल-भीमभुजगः।
६—रामस्य ······ सर्वं······ वशे।
७—रामे भक्तिरखण्डिता भवतु मे।
८—राम···········त्वमेवाश्रयः॥

छात्र राम शब्द के रूपों से परिचित होते हैं तथा सरल संस्कृत वाक्यों का अर्थ भी वे जानते हैं। अतः शिक्षक छात्रों का ध्यान लिखित पद्य की ओर आकृष्ट कर प्रश्न करेगा—

शिक्षक—कः शरणम् ?	एक छात्र—श्रीरामः शरणम्।
शिक्षक—कं विना ?	दूसरा छात्र—रामं विना।
शिक्षक—केन प्रतिहन्यते ?	तीसरा छात्र—रामेण प्रतिहन्यते।
शिक्षक—कस्मै कार्यम् ?	अन्य छात्र—रामाय कार्यम्।
शिक्षक—कस्मात् त्रस्यति ?	छात्र—रामात् त्रस्यति।
शिक्षक—कस्य वशे ?	अन्य छात्र—रामस्य वशे।
शिक्षक—कस्मिन् भवतु ?	और छात्र—रामे भवतु।
शिक्षक—कः आश्रयः ?	कोई छात्र—हे राम ! त्वमाश्रयः।

उद्देश्य-कथन—इन प्रश्नों द्वारा यह समझ में आ जायगा कि प्रत्येक वाक्य में राम शब्द का कोई सम्बन्ध क्रिया के साथ है। शिक्षक बतलायेगा कि इस सम्बन्ध को प्रकट करने वाले शब्दों को क्या कहते हैं और उसके कुछ भेदों का ज्ञान कराना ही ही आज के पाठ का उद्देश्य है।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
क—कारक—	रामः हस्तेन मोहनाय वृक्षात् पात्रे पुष्पाणि चिनोति। इस वाक्य में किन-किन शब्दों का क्रिया से सम्बन्ध है, यह प्रश्नोत्तर रीति द्वारा छात्रों से विदित कर शिक्षक बतलायेगा कि वाक्य में क्रिया से सम्बन्ध रखने वाले पद कारक कहलाते हैं। लक्षण छात्र लिखेंगे।	क–कारक लक्षण- वाक्य में क्रिया से सम्बन्ध रखने वाले पदों को कारक कहते हैं। प्रत्येक पद का क्रिया से सम्बन्ध होता है, केवल सम्बन्ध और सम्बोधन का

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
		सम्बन्ध क्रिया से नहीं होता। कारक-उदाहरण जैसे-राम हस्तेन···चिनोति इत्यादि वाक्य।
ख-कर्तृ कारक- १. देवः गच्छति। २. मृगः धावति। ३. बालिका भक्षयति।	शिक्षक बतलायेगा कि वाक्य में पदों का सम्बन्ध क्रिया से कई प्रकार का होता है, अतः सम्बन्ध-भेद से कारक-भेद बतलाये जाते हैं। कृष्णफलक पर लिखे वाक्यों की ओर संकेत कर शिक्षक कः गच्छति? कः धावति? का भक्षयति? इत्यादि प्रश्नों द्वारा छात्रों से बात करेगा कि जाने का काम देव, दौड़ने का काम मृग और खाने का काम बालिका कर रहे हैं। यह जान कर शिक्षक बतला देगा कि जिस में क्रिया का व्यापार रहे अर्थात् जो काम करे उसे कर्ता कहते हैं। कर्ता में प्रथमा विभक्ति आती है।	ख-कर्तृ लक्षण- जिस में क्रिया का व्यापार रहे अर्थात् काम करने वाले को कर्ता कहते हैं। यथा— देवः गच्छति। में गमन क्रिया का व्यापार देव में है अतः देव कर्ता है और वह प्रथमा विभक्ति में है। इत्यादि।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	लक्षण छात्रों से लिखवाना चाहिए।	
ग—कर्म कारक— १. नृपो मृग पश्यति। २. मोहन पुस्तक पठति। ३. सिंह: पशून् हन्ति।	साथ के वाक्यों को कृष्णफलक पर लिख कर अध्यापक प्रश्न करेगा कि देखने का फल किस में है? अर्थात् कौन देखा जा रहा है? पढ़ने का फल किस में है अर्थात् क्या पढ़ा जा रहा है? मारने का फल किस में है? अर्थात् कौन मारा जाता है? छात्रों से पता लगेगा कि देखने का फल मृग में है क्योंकि वह देखा जा रहा है। पढ़ने का फल पुस्तक में है, पुस्तक पढ़ी जा रही है। मारने का फल पशुओं में है, वे मारे जाते हैं। शिक्षक बता देगा कि जिस में किया का फल रहता है उसे कर्म कारक कहते हैं। कर्म में द्वितीया विभक्ति आती है। लक्षण छात्र लिखेंगे।	ग—कर्म लक्षण— जिस में कर्ता द्वारा की गई किया का फल रहता है उसे कर्म कहते हैं। यथा— 'नृपो मृग पश्यति' में देखने की किया का फल—देखाजाना मृग में है, अतः मृग कर्म है। इस में द्वितीया विभक्ति है।

वस्तु—	शिक्षा-विधि	कृष्णफलक सार
ग–करण कारक– १. छात्रः हस्तेन लेखनी धारयति। २. अश्वो दन्तैः घा चर्वति। ३. चौरः पादाभ्यामधावत्।	उदाहरणों की ओर संकेत कर— शिक्षक—छात्र धारण क्रिया किस के द्वारा कर रहा है? छात्र—हस्त द्वारा। शिक्षक—अश्व चर्वण क्रिया किस के द्वारा कर रहा है? छात्र—दन्त द्वारा। शिक्षक—चौर ने धावन क्रिया किस के द्वारा की? छात्र—पाद द्वारा। यह जान कर शिक्षक बतायेगा कि पकाना, चबाना, दौड़ना—इन क्रियाओं को कर्ताओं ने जिनकी सहायता से किया उनके वाचक पदों को करण कारक कहते हैं। करण में तृतीया विभक्ति होती है।	ग–करण लक्षण– क्रिया की सिद्धि में जो सहायता दे अर्थात् कर्ता जिसके द्वारा क्रिया को करे उसका वाचक पद करण कारक है। इस में तृतीया विभक्ति होती है। यथा बालः हस्तेन पुस्तकं लिखति। बालक लिखने का कार्य हाथ द्वारा कर रहा है अतः हाथ करण है। इसी लिए तृतीया विभक्ति है।

पठित-परीक्षण तथा आवृत्ति

१. कारक किसे कहते हैं?
२. कर्ता तथा कर्म में क्या अन्तर है?

३. करण किसे कहते हैं ? उस में कौन सी विभक्ति प्रयुक्त होती है ?

४. क्या सम्बन्ध और सम्बोधन कारक हैं ?

गृह-कार्य

कर्म और करण कारक का लक्षण लिख लाना।

XII

अध्यापक-रोल नम्बर——

पाठ—संस्कृत (व्याकरण) विषय—कारक

कक्षा—आठवीं समय ४० मिनट

उद्देश्य—कारक-भेदान्तर्गत सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण कारकों को छात्रों द्वारा निकलवाते हुए इन कारकों को हृदयङ्गम कराना।

पूर्वबोध-परीक्षणपूर्वक नवीन पाठ से सम्बन्ध

छात्र हिन्दी में जानते हैं कि 'केलिए' 'से' (पृथकता में), और 'में', 'पै', 'पर', आदि चिह्न शब्दों के साथ लगे हों तो कौन सी विभक्ति प्रयुक्त होती है। इसी पूर्वज्ञान को आधार बना कर शिक्षक चलेगा।

शिक्षक—शिष्य गुरु के लिए दुकान से कमण्डलु में दूध लाता है। इस वाक्य में रेखाङ्कित पदों में कौन सी विभक्ति होगी ?

छात्र—क्रमशः—चतुर्थी, पञ्चमी और सप्तमी विभक्तियाँ प्रयुक्त होंगी।

उद्देश्य-कथन—शिक्षक कहेगा कि विभक्ति-प्रयोग को तुम जानते हो। आज तुम को यह बतलायेंगे कि वे विभक्तियाँ किन कारकों में होती हैं।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
ङ—सम्प्रदान कारक— १. छात्राः पठनाय विद्यालय गच्छन्ति। २. देवो भोजनाय गृहं गच्छति। ३. रामः फलेभ्यः उपवन गच्छति	छात्रों का ध्यान वाक्यों की ओर दिलाते हुए— शिक्षक—छात्रों का विद्यालय-गमन, देव का गृह-गमन, राम का उपवन-गमन, किसलिए है ? छात्र—छात्र विद्यालय को पढ़ने के लिए, देव घर को भोजन के लिए, राम उपवन को फलों के लिए जाता है। शिक्षक—जिसके लिए कोई क्रिया की जाय अथवा जिस को कुछ दिया जाय उसके वाचक पद को सम्प्रदान कहते हैं ? सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति आती है। लक्षण छात्र लिखेंगे।	ङ—सम्प्रदान लक्षण— जिसे कुछ दिया जाय अथवा जिसके लिए कोई कार्य किया जाय वह सम्प्रदान है। इस में चतुर्थी विभक्ति प्रयुक्त होती है। यथा— रामः फलेभ्यः उपव गच्छति यहाँ राम का उपवन-गमन फलों के लिए है। अतः चतुर्थी विभक्ति तथा सम्प्रदान कारक है।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
च—अपादान कारक— १ वृक्षात् पुष्पाणि पतन्ति। २ पर्वतेभ्यो नद्यो निस्सरन्ति। ३. देहात् स्वेद निर्गच्छति।	वाक्यों की ओर निर्देश करते हुए— शिक्षक—पुष्पों का पतन, नदियों का निःसरण, स्वेद का निर्गमन किस से होरहा है? छात्र—क्रमशः वृक्ष से, पर्वतों से और देह से, अर्थात् पुष्प वृक्ष से, नदियाँ पहाड़ों से और पसीना शरीर से अलग हो रहे हैं। शिक्षक—इन वाक्यों मे पृथकता तथा वियोग पाया जाता है। जिससे किसी वस्तु की पृथक्ता और वियोग होते है उसके वाचक पद को अपादान कहते हैं। अपादान में पञ्चमी का प्रयोग होता है। छात्र स्वयं लक्षण लिखेंगे।	च—अपादान लक्षण— जिससे कोई वस्तु पृथक् या वियुक्त होती है उसे अपादान कहते हैं। इस में पञ्चमी—होती है यथा— देहात् स्वेद. निर्गच्छति, यहाँ पसीना शरीर से अलग हो रहा है अतः देहात् अपादान है और पञ्चमी का प्रयोग हुआ है।
छ—अधिकरण कारक— १. पात्रे जलमस्ति।	कृष्णफलक पर वाक्य लिख कर— शिक्षक—जलं कस्मिन्नस्ति?	छ—अधिकरण लक्षण— जो क्रिया का आधार हो,

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
२. नृप मासने निष्ठति । ३. बाल. पट्टिकायां लिखति ।	नृपः कुत्र तिष्ठति ? बालकः कुत्र लिखति ? छात्र—जल पात्र में है, राजा आसन पर है, बालक पट्टी पर लिखता है । शिक्षक—पात्र जल के होने का, आसन बैठने का और पट्टी लिखने का आधार है । क्रिया के आधार को सूचित करने वाले पद को अधिकरण कारक कहते हैं । इसमें सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है । लक्षण छात्र लिखलेगे ।	जिसपर कर्ता-कार्य करे वह अधिकरण कारक है । इन में सप्तमी का प्रयोग होता है। यथा— 'बालकः पट्टिकाया लिखति' में लिखने का कार्य पट्टी पर हो रहा है अतः 'पट्टिकायाम्' अधिकरण कारक और सप्तमी विभक्ति है ।
सम्बन्ध— १. रामस्य पिता गच्छति । २. ममायं हस्त । ३. तव पुस्तकम् ।	शिक्षक—इन वाक्यों में किसका सम्बन्ध किससे है ? छात्र—क्रमशः राम का पिता से, मेरा हाथ से, तेरा पुस्तक से सम्बन्ध है। शिक्षक—क्या 'रामस्य' 'मम' और 'तव' का यहाँ क्रिया से कोई सम्बन्ध है ?	सम्बन्ध लक्षण— जिसका क्रिया मे कोई सम्बन्ध न हो और नाम से सम्बन्ध हो वह सम्बन्ध है। इस में षष्ठी का प्रयोग होता है। यथा— 'रामस्य पिता'

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	छात्र—इनका सम्बन्ध संज्ञाओं से है, क्रियाओं से कोई सम्बन्ध नहीं है। शिक्षक—इसीलिए सम्बन्ध कारक नहीं है क्योंकि इसका सम्बन्ध क्रिया से नहीं, अन्य पदों से होता है। इसमें षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। लक्षण छात्र लिख लेंगे।	में राम का पिता से सम्बन्ध है और षष्ठी विभक्ति है।
समानता तथा अन्तर— क. करण तथा अपादान में ख. सम्प्रदान तथा कर्म में।	उदाहरण लिखकर छात्रों द्वारा अन्तर निकलवाया जायगा। उदाहरण पहले दिये जा चुके हैं। लक्षणों से छात्र सुपरिचित हैं। अन्तर स्पष्ट बता देंगे।	

पठित-परीक्षण तथा वृत्ति

१—सम्प्रदान का लक्षण क्या है?

२—सम्प्रदान तथा कर्म में क्या भेद है?

३—सम्बन्ध को कारक क्यों नहीं कहते?

गृह-कार्य

करण तथा अपादान में अन्तर लिखकर लाना।

XIII.

अध्यापक-रोलनम्बर——

पाठ—संस्कृत (व्याकरण) विषय—कारक (उपपद-विभक्ति) विशेष शब्दों के योग में द्वितीया, तृतीया विभक्तियाँ।

कक्षा—नवमी समय ४० मिनट

उद्देश्य—विशेष शब्दों के योग में द्वितीया तथा तृतीया विभक्तियों के प्रयोग का अभ्यास करवाते हुए संस्कृतानुवाद में छात्रों को सुयोग्य बनाना।

पूर्वबोध-परीक्षण तथा नवीन पाठ से सम्बन्ध

छात्र हिन्दी में विभक्ति प्रयोग जानते हैं। इसी ज्ञान के आधार पर नवीन पाठ से सम्बन्ध होगा।

१. विद्यालय के चारों ओर।
२. घर की ओर।
३. राम के पीछे।
४. घर के समीप।

इन वाक्यांशों को कृष्णफलक पर लिखकर—

शिक्षक—विद्यालय के, घर की, राम के, घर के, इनके लिए कौनसी विभक्ति प्रयुक्त होगी ?

छात्र—इनमें के और की चिह्न हैं, अतः षष्ठी विभक्ति प्रयुक्त होगी।

शिक्षक—ठीक है। का, के, की, चिह्नानुसार षष्ठी होनी चाहिए, किन्तु 'चारों ओर' 'ओर' 'समीप'—इन के लिए आने वाले

शब्दों के योग में षष्ठी नहीं होगी, द्वितीया होगी। आज के पाठ में यही पढ़ाया जायगा कि किन किन विशेष शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है।

वस्तु—	शिक्षण-विधि—	कृष्णफलक सार
उपपद योग में द्वितीया विभक्ति— अधोलिखित के लिए संस्कृत शब्द— १. सब ओर, २. दोनों ओर, ३. समीप, ४. जरा नीचे, ५. जरा ऊपर, ६. शोक, आश्चर्य, ७. मध्य में, ८. बिना, ९. ओर, १०. धिक्कार, ११. पीछे,	शिक्षक 'सब ओर' आदि शब्दों को कृष्णफलक पर लिखकर एक-एक के लिए संस्कृत शब्द पूछेगा। यदि छात्र बता सकें तो अत्युत्तम अन्यथा इनके सामने स्वयं संस्कृत शब्द लिखदेगा। अब शिक्षक दूसरी ओर दिए गये संस्कृत शब्दों का अभ्यास करवाकर एक दूसरे से पूछकर अधोनिर्दिष्ट वाक्यों का पृथक्-पृथक् संस्कृत में अनुवाद करवायेगा। छात्रों को सावधान करदेगा कि इन विशेष पदों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है न कि कोई अन्य विभक्ति। छात्र शुद्ध अनुवाद करने में समर्थ होंगे। लक्षण वे स्वयं बना लेंगे।	१. सब ओर—अभितः, परितः, सर्वतः। २. दोनों ओर—उभयतः। ३. समीप—निकषा। ४. जरा नीचे—अधोऽधः। ५. जरा ऊपर—उपर्युपरि। ६. शोक, आश्चर्य—हा। ७. मध्य में—अन्तरा। ८. बिना—बिना, अन्तरेण। ९. ओर—प्रति। १०. धिक्कार—धिक्। ११. पीछे—अनु।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	१—नगर के सब ओर— नगरं सर्वत, नकि- नगरस्य सर्वतः। २—उपवन के दोनों ओर —उपवनम् उभयतः, ३—विद्यालय के समीप— विद्यालयं निकषा, ४—अधर के जरा नीचे— अधोऽधः अधरम्, ५—मस्तक के जरा ऊपर— उपर्युपरि मस्तकम्। ६—वेद की निन्दा करने वाला शोकयोग्य— हा नास्तिकम्। ७—तेरे और मेरे बीच— त्वां मां च अन्तरा। ८—राम के विना—रामं विना, ९—घर की ओर—गृहम्प्रति, १०—पापी को धिक्कार— पापिनं धिक्, ११—लक्ष्मण राम के पीछे जाता है—लक्ष्मणो राममनुगच्छति।	अधोलिखित शब्दों के योग से द्वितीया विभक्ति आती है— सर्वत, अभित, परित, उभयत, समया, निकषा, ऋते, विना, अन्तरा, अन्तरेण। उपर्युपरि, अधो- ऽधः, प्रति, अनु, हा, धिक्। यथा—नगरं सर्वतः उपवन- मस्ति। इत्यादि

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	इसे उपपद विभक्ति कहते हैं क्योंकि यह विशेष पद-योग में आती है।	
ख— उप-पद विभक्ति तृतीया— १. साथ, २. रहित, ३ कम, ४. निषेध, ५. क्या, ६ बगैर, ७. बराबर।	शिक्षक इन हिन्दी पदों का छात्रों से संस्कृत में अनुवाद प्रश्नोत्तर-रीति से करवायेगा। वे असमर्थ हों तो स्वयं इनकी संस्कृत लिखवा कर अभ्यास करवायेगा। तब छात्रों से निम्नलिखित वाक्यांशों का संस्कृत में अनुवाद करवायेगा। हिन्दी के विभक्ति चिह्नों को देख कर छात्र अनुवाद करते हुए तदनुसार संस्कृत-विभक्ति का प्रयोग करेंगे। परन्तु शिक्षक बतला देगा कि इन विशेष पदों के योग में तृतीया का प्रयोग होता है। यहाँ हिन्दी के विभक्ति-चिह्नों के अनुसार संस्कृत-विभक्ति-प्रयोग नहीं होगा।	तृतीया उपपद विभक्ति— १. सह, साकम्, समम्, सार्धम्। २. हीन, ऊन, ३. न्यून, ४. निषेध, ५. किम्, (निरर्थकता) ६. विना, ७. सम, समान, तुल्य।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	१—राम के साथ—रामेण सह, समम्, साकम् आदि। २—धर्म से रहित—धर्मेण हीनः। ३—कलह न करो—अलं कलहेन। ४—इस झगड़े से क्या लाभ—किमनेन विवादेन। इस प्रकार छात्र शुद्ध अनुवाद करेंगे। लक्षण वे स्वयं लिख सकेंगे।	निम्नलिखित शब्दों के योग में तृतीया का प्रयोग होता है सह, साकम्, समम्, सार्धम्, अलम्, कृतम्, किम्, विना, हीन, ऊन, न्यून, सम, समान, तुल्य, अङ्ग-विकार-सूचन में यथा—रामेण सह, नेत्रेण काणः कृतमेभिर्विलापैः, आदि।

पूर्वबोध-परीक्षा तथा आवृत्ति

१—सह, हीन, विना, अलं, अभितः, परितः, निकषा, समया, अन्तरा—इनका अर्थ क्या है?

२—साकम्, ऊनम्, परितः, धिक्, अन्तरेण—इनके योग में कौन सी विभक्ति आती है?
उदाहरण द्वारा स्पष्ट करो।

३—उप-पद विभक्ति किसे कहते हैं?

४—शुद्ध करो—नगरस्य सर्वतः, तुभ्यम् धिक्, तस्य विना, रामस्य सह, नेत्रात् काणः।

गृह-कार्य

अभितः, उपर्युपरि, अधोऽधः, अन्तरेण, अनु इनका वाक्यों में प्रयोग कर लिख लाना।

XIV

अध्यापक-रोल नम्बर——

पाठ—संस्कृत (व्याकरण) कारक—(उपपद विभक्ति)

कक्षा—नवमी समय ४० मिनट

उद्देश्य—विशेष शब्दों के योग में चतुर्थी, पञ्चमी विभक्ति के प्रयोग का अभ्यास करवाते हुए संस्कृतानुवाद में सुयोग्य बनाना।

पूर्वबोध-परीक्षण तथा नवीन-पाठ से सम्बन्ध

छात्र चतुर्थी और पञ्चमी विभक्ति से हिन्दी में सुपरिचित हैं इसी के आधारपर इस पाठ से सम्बन्ध होगा।

१—गुरु को नमस्कार।

२—हरि पर क्रोध करता है।

३—राम से द्रोह करता है।

४—ज्ञान के बगैर।

ऊपर लिखे वाक्यांशों की ओर छात्रों का ध्यान खींचकर—

शिक्षक—गुरु को, हरि पर, राम से, ज्ञान के—इन में कौन-कौन सी विभक्तियाँ प्रयुक्त होंगी?

छात्र—हिन्दी-चिह्नों तथा साधारण कारक नियमानुसार क्रमशः द्वितीया, सप्तमी, तृतीया और षष्ठी विभक्तियाँ होंगी।

उद्देश्य-कथन—शिक्षक—कारक नियमानुसार ठीक है किन्तु नमस्कार, क्रोध द्रोह, हिन्दी आदि के वाचक शब्दों के योग में संस्कृत मे चतुर्थी विभक्ति होती है। आज के पाठ में यही पढ़ाया जायगा कि किन-किन विशेष शब्दों के योग में चतुर्थी और पञ्चमी विभक्तियाँ होती हैं।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
ग-नीचे लिखे अर्थ वाले शब्दों के योग में चतुर्थी १. नमस्कार। २. कल्याण हो। ३. आहुतिदान-वाचक— ४. पितरो को कोई चीज देने में। ५. समर्थ होना। ६. क्रोध करना। ७. द्रोह करना। ८. ईर्ष्या करना। ९. डाह करना। १०. अच्छा लगना। आदि-आदि।	शिक्षक कृष्णफलक पर इनके वाचक संस्कृत शब्द छात्रों से पूछ कर लिखेगा। जिनका अर्थ वे न बतला सकें स्वयं लिख देगा। नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम्, क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्या, असूय्, रुच्। प्रश्नोत्तर द्वारा इनको अर्थ सहित हृदङ्गम करवा देगा और बतला देगा कि इनके योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। हिन्दी के कारक-नियम तथा विभक्ति के चिह्न का यहाँ अनुसरण नहीं होगा। छात्र नियम स्वयं लिखेंगे।	नम, स्वस्ति स्वाहा, स्वधा, अलम्, क्रुध् द्रुह्, ईर्ष्, असूय् रुच्-इन के योग में चतुर्थी उपपद विभक्ति होती है। यथा गुरवे नम, अग्नये स्वाहा। आदि-आदि।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	अध्यापक कृष्णफलक पर निम्नलिखित वाक्यों को लिखेगा और छात्रों से अनुवाद करवायेगा। नियम के हृदयाङ्कित होने से छात्र शुद्ध अनुवाद करने में समर्थ होंगे। तथापि शिक्षक सावधान रहने की प्रेरणा देगा।	
१. गुरु को नमस्कार—	नमः का योग है अतः चतुर्थी होगी, द्वितीया नहीं।	१. गुरवे नमः।
२. शिष्य का कल्याण—	कल्याण वाचक स्वस्ति के योग में चतुर्थी, षष्ठी नहीं।	२. शिष्याय स्वस्ति।
३. इन्द्र को आहुति—	आहुति दानवाचक स्वाहा के योग में चतुर्थी।	३. इन्द्राय स्वाहा।
४. मृत पितरों को पिण्डदान-	पितृनिमित्त दान वाचक स्वधा के योगमें चतुर्थी।	४. पितृभ्यः स्वधा।
५. कृष्ण कंस के लिए समर्थ (काफी)—	समर्थ वाचक अलं के योग में चतुर्थी।	५. कृष्णः कंसाय अलम्।
६. राम रावण पर क्रोध करता है—	क्रुध् के योग में चतुर्थी, सप्तमी नहीं।	६. रामो रावणाय क्रुध्यति।
७. मोहन शत्रु से द्रोह करता है-	द्रुह् के योगमें चतुर्थी, तृतीया नहीं।	७. मोहनः शत्रवे द्रुह्यति।
८. श्याम कृष्ण से ईर्ष्या करता है—	ईर्ष्या के योग में चतुर्थी, तृतीया नहीं।	८. श्यामः कृष्णाय ईर्ष्यति।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
९. राम श्याम से डाह करता है—	असूय् के योग में चतुर्थी, षष्ठी नहीं।	९. रामः श्यामाय असूयति।
१० बच्चा को दूध अच्छा लगता है—	रुच् के योग में चतुर्थी द्वितीया नहीं।	१०. शिशुभ्यो दुग्ध रोचते।
घ. उपपद-विभक्ति पञ्चमी—	शिक्षक कृष्णफलक पर इन के वाचक शब्दों को छात्रों से पूछ कर लिखदेगा।	घ. उपपद विभक्ति पञ्चमी—
१. बाद २. पहले ३. बाहर ४. लेकर ५. हटाना ६. डरना	१. अनन्तरम्, २. प्राक्, प्रथमम्, पूर्वम्, ३. वहिः, ४. आरभ्य, प्रभृति, ५. निवारय, ६. त्रस्य्।	अनन्तर, प्राक् पूर्वम्, प्रथमम्, वहि, आरभ्य इन के योग में पञ्चमी विभक्ति आती है।
	एक दूसरे से शब्दार्थ-परीक्षण कर अनुवाद के अभ्यासार्थ वाक्यांश लिखेगा और समझा देगा कि इन के योग में इन से प्रथम आने वाले शब्दों में पञ्चमी का प्रयोग होता है चाहे विभक्ति-चिह्न कोई भी हो छात्र नियम बना लेंगे।	यथा—
	१. पढ़ने के बाद—अनन्तरम् के योगमें पञ्चमी न कि षष्ठी	१. पठनादनन्तरम्।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	२. स्नान से पहले—प्राक्, पूर्वम्, प्रथमम् के योग में पञ्चमी।	२.स्नानात् प्राक्। पूर्वं, प्रथमम्।
	३. नगर से बाहर—बहिः के योग में पञ्चमी	३. नगराद् बहिः।
	४. बुध वासर से लेकर—आरभ्य, प्रभृति के योग में पञ्चमी।	४. बुधवासरा-दारभ्य, प्रभृति वा।
	५. कुमार्ग से हटाती है—निवारय के योग में पञ्चमी।	५. कुमार्गान्नि-वारयति।
	६. पाप से डरता है—भय वाचक के योग में पञ्चमी।	६.पापात् त्रस्यति बिभेति वा।

परीक्षण-तथा आवृत्ति

१—नमः, स्वस्ति, रुच्, द्रुह्, बहिः, प्रभृति, अनन्तरम् का क्या अर्थ है? इन के योग में कौन सी विभक्तियाँ आती हैं? वाक्यों द्वारा स्पष्ट करो।

गृह-कार्य

क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्य्, अलम्, त्रस्, प्राक्, का वाक्यों में प्रयोग लिख लाना।

XV

अध्यापक-रोलनम्बर——

पाठ—संस्कृत (व्याकरण) प्रकरण—उपसर्ग

कक्षा—आठवीं समय ४० मिनट

उपर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहार-संहार-विहार-परिहारवत्॥

उद्देश्य—उपसर्ग का लक्षण हृदयस्थ करवाकर सोपसर्ग धातुओं का वाक्यों में प्रयोग।

पूर्वज्ञान-परीक्षण तथा नवीन पाठ में प्रवेश

छात्र हिन्दी में उपसर्ग-सहित पदों का अर्थ तथा उपसर्ग लगाकर शब्दरचना करना जानते हैं। इसी ज्ञान के आधार पर छात्रों का नवीन पाठ में प्रवेश होगा।

पुत्र, सुपुत्र, मन्त्री, सुमन्त्री, नृप, सुनृप, प्रहार, आहार, संहार, विहार, आकार, विकार, प्रकार। इस प्रकार शब्दों को कृष्णफलक पर लिख कर छात्रों से पूछेगा—

शिक्षक—इन शब्दों का अर्थ क्या है ?

छात्र—पुत्र—बेटा, प्र-हार—चोट,
सु पुत्र—अच्छा बेटा, आ-हार—भोजन,
मन्त्री—मन्त्री, सं-हार—नाश,
सु-मन्त्री—अच्छा मन्त्री, वि-हार—भ्रमण,
नृप—राजा, आ-कार—शकल,
सु-नृप—अच्छा राजा। वि-कार—परिवर्तन,
प्र-कार—किस्म,

शिक्षक—ऊपर के शब्दों में अर्थ क्यों बदल गया ?

छात्र—सु, प्र, आ, सम्, वि, आदि के योग से अर्थ-भेद हो गया।

शिक्षक—क्या हैं ये—सु, प्र, आ, आदि ?

छात्र—इन्हें उपसर्ग कहते हैं।

उद्देश्य-कथन—शिक्षक बतला देगा कि जिस तरह हिन्दी में उपसर्ग लगाने से अर्थ में भेद या परिवर्तन हो जाता है उसी तरह संस्कृत में भी उपसर्ग-योग से धातुओं के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। यही बतलाना आज के इस पाठ का उद्देश्य है।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
'आ' के योग से गम्, नी, दा या, दा, धातुओं के अर्थ में परिवर्तन।	शिक्षक कृष्णफलक पर— १. गच्छति, २. नयति, ३. याति, ४, ददाति, आगच्छति, आनयति, आयाति, आददाति, इन पदों को लिखकर प्रश्न करेगा— शिक्षक—गच्छति आदि का अर्थ क्या है ? छात्र—क्रमश—जाता है, लेजाता है, जाता है, देता है। शिक्षक—आगच्छति, आदि का क्या अर्थ है ? छात्र—क्रमशः आता है, लेजाता है, जाता है,	गम् तथा या धातु से पूर्व 'आ' लगाने से जाने के स्थान पर आना अर्थ हो जाता है। इसी

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	ग्रहण करता है। शिक्षक—अर्थ भेद क्यों हो गया? छात्र— गच्छति, नयति, याति, ददाति के पहले आ उपसर्ग का योग होने से इनका क्रमशः 'आता है', 'लाता है', 'आता है', और 'ग्रहण करता है' अर्थ हो गया।	तरह 'नी' से पूर्व 'आ' लगाने से लेजाने के स्थान पर लाना अर्थ होजाता है। 'दा' से पूर्व 'आ' के योग से देने के स्थान पर लेना अर्थ हो जाता है। यथा *आगच्छति आदि*
गम् के साथ 'अनु' तथा 'उप' का योग।	१—लक्ष्मणो राममनुगच्छति। २—शिष्यो गुरुमुपगच्छति। इन दो वाक्यों को लिखकर— शिक्षक—इनका क्या अर्थ है? छात्र—लक्ष्मण राम के पीछे जाता है। शिष्य गुरु के पास जाता है शिक्षक—अनुगच्छति, उपगच्छति, कैसे बने? छात्र—अनु+गच्छति, उप+गच्छति।	गम् के पहले 'अनु' तथा 'उप' उपसर्ग लगाने से क्रमशः पीछे जाना और समीप जाना अर्थ होजाता है। यथा— अनुगच्छति। उपगच्छति।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	शिक्षक—अर्थभेद का कारण क्या है ? छात्र—उपसर्ग-अनु तथा का उपयोग। शिक्षक—गम् से पूर्व अनु और उप के आने पर क्रमशः पीछे जाना और समीप जाना अर्थ हो जाता है। नियम छात्र लिखेंगे।	
'हृ' धातु से पूर्व प्र, आ, सम्, वि, परि का योग।	शिक्षक हरति, प्रहरति, संहरति, आहरति, विहरति परिहरति, इन पदों का वाक्यों में प्रयोग करवा कर 'प्र' आदि उपसर्गों के लगने से जो अर्थ-भेद हो गया उसे पूछेगा। छात्र हरति आदि का क्रमशः—चुराता है, प्रहार करता है, लाता है आदि अर्थ बता देंगे। उपरिनिर्दिष्ट विधि से शिक्षक प्रश्नोत्तर द्वारा अर्थ-भेद को हृदयङ्गम करा देगा। नियम छात्र लिखेंगे।	'हृ' धातु से पूर्व प्र, आ, सम्, वि, परि, इन उपसर्गों का योग होने पर क्रमशः चोट लगाना, लाना, नाश करना या समेटना, भ्रमण करना, त्यागना या रोकना अर्थ हो जाते हैं। यथा— प्रहरति शत्रुं दण्डेन।

पठित-परीक्षण तथा आवृत्ति

१—आनयति, उपगच्छति, संहरति, का अर्थ क्या है ?

२—'हृ' का अर्थ नाश, और भ्रमण कब होगा ?

गृह-कार्य

उपसर्ग का लक्षण लिखकर लाओ।

XVI

अध्यापक-रोलनम्बर——

पाठ—संस्कृत (व्याकरण) विषय—कृदन्त

कक्षा—आठवीं समय—४० मिनट

उद्देश्य—शतृ, क्तवतु, क्त, क्त्वा, तुमुन् तथा तव्यत् कृत्-प्रत्ययों से बने रूपों की रचना और उनका अभ्यास।

पूर्वज्ञान तथा नवीन पाठ में प्रवेश

छात्र पठित संस्कृत सन्दर्भों में प्रयुक्त कृदन्त रूपों से परिचित हैं। उनके अर्थ का भी उन्हें कुछ ज्ञान है। इसी ज्ञान के आधार पर नवीन पाठ में प्रवेश होगा।

शिक्षक गच्छन्, गतवान्, गतम्, गत्वा, गन्तुम्, गन्तव्यम्, इन शब्दों को कृष्णफलक पर लिख कर प्रश्नोत्तर द्वारा इनका अर्थ पूछेगा और प्रश्न करेगा—

शिक्षक—गम् धातु के साथ कौन से प्रत्यय लगाकर ये रूप बनाये गये हैं ?

छात्र—गम् धातु से शतृ (अत्) क्तवतु (तवत्), क्त (त), क्त्वा (त्वा), तुमुन् (तुम), और तव्यत् (तव्य), लगाकर इनकी रचना हुई है। इनका अर्थ क्रमशः—जाता हुआ, गया, जाया गया, जाकर, जाने को और जाना चाहिए है।

उद्देश्य कथन—शिक्षक बतला देगा कि धातु के साथ लगने वाले तिङ् प्रत्ययों को तुम पढ़ चुके हो। आज के पाठ द्वारा हम यह बतलायेंगे कि धातु के साथ लगने वाले इन प्रत्ययों तथा प्रत्यय युक्त रूपों को क्या कहते हैं।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
१-शत्रन्तरूप	१—बालः पठन् भ्रमति। २—श्यामः हसन् वदति। ३—मोहनः भक्षयन् व्रजति। इन वाक्यों को कृष्णफलक पर लिखकर शिक्षक इनके अर्थ पूछेगा। १—बालक पढ़ता-पढ़ता घूमता है। २—श्याम हँसता-हँसता बोलता है। ३—मोहन खाता-खाता चलता है, छात्र क्रमशः ये अर्थ बतला देंगे। शिक्षक वाक्यान्तर्गत पठन्, हसन्, भक्षयन्, इन शत्रन्त रूपों की ओर ध्यान दिला कर प्रश्नोत्तर द्वारा छात्रों से यह निकलवाने का प्रयत्न	शत्रन्त और शानजन्त रूप-कर्ता की क्रिया के वर्तमान काल को प्रकट करने के लिए परस्मैपदी धातुओं से परे शतृ (अत्) प्रत्यय लगता है और आत्मनेपदी धातुओं से परे शानच् आन प्रत्यय लगता है। 'अत्' का परिवर्तन 'अन्' में और 'आन' का

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	करेगा कि पठ् से अत् लगाकर पठत् (जिसका प्रथमा एकवचनान्त रूप पठन् है), हस् से अत् लगा कर हसत् (जिसका प्रथमा एकवचनान्त रूप हसन् है), भक्ष् से अत् लगाकर भक्षयत् (जिसका प्रथमा एकवचनान्त रूप भक्षयन् है) बनता है। जब वाक्य में कर्ता की *क्रिया के वर्तमान काल को* प्रकट करने के लिए पढ़ता-पढ़ता, हँसता-हँसता, खाता-खाता, ऐसे शब्दों का संस्कृत में अनुवाद करना हो तो ऐसे शत्रन्त रूपों का प्रयोग होता है। धातु से परे जो प्रत्यय सीधे आते हैं उनको कृत्प्रत्यय कहते हैं, और कृत्प्रत्ययान्त शब्द को कृदन्त कहते हैं। धातु से 'अत्' लगाकर बनाये गये रूपों को शत्रन्त कहते हैं। आत्मनेपदी	'मान' में होता है। यथा— वद् से वदन्, नम् से नमन्, मुद् (मोद) से मोदमान, यत् से यतमान आदि।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	धातुओं से 'अत्' के स्थान पर 'मान' लगाया जाता है। अर्थात् आत्मनेपद में शतृ के स्थान पर शानच् प्रत्यय होता है उसका 'मान' शेष रहता है।	
	शत्रन्त और शानच् प्रत्ययान्त रूप विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं। अभ्यासार्थ शिक्षक गम्, पा (पिब्) दृश् (पश्य्) आदि परस्मैपदी और श्लाघ्, वृत् (वर्त) शुभ् (शोभ) आदि आत्मनेपदी धातुओं में शतृ तथा शानच् प्रत्ययान्त रूप बनवायेंगे।	गम्—गच्छन्। पा—पिबन्। स्था—तिष्ठन्। दृश्—पश्यन्। श्लाघ्—श्लाघमान। वृत्—वर्तमान। शुभ्—शोभमान।
२—क्तवत्वन्त रूप—	१. बालः गृहं गतवान्, २. सः पाठं स्मृतवान्, ३. रामः हरिं दृष्टवान्— शिक्षक इन वाक्यों को कृष्णफलक पर लिख कर इनका अर्थ पूछेगा और गतवान, स्मृतवान्, दृष्टवान् की रचना के सम्बन्ध में प्रश्न	२. क्तवत्वन्त-रूप— धातुओं से क्तवत् (तवत्) लगाकर क्तवत्वन्त कृदन्तरूप बनता है भूतकाल में इसका

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	करेगा। छात्रों से यह स्पष्ट करवाने का यत्न करेगा कि गम्, स्मृ, दृश् धातुओं से 'तवत्' लगा कर यह रूप बनाये गये हैं। 'क्तवतु' का परिवर्तन 'तवत्' में हुआ है। भूतकाल कर्तृवाच्य में इस का प्रयोग होता है। कर्ता के अनुसार इसके लिङ्ग वचन- होते हैं।	प्रयोग होता है। यथा— गम् से–गतवान्, स्मृ से–स्मृतवान् आदि।
३–क्तान्त रूप–	१. रामेण रावणः हत, २. वीरेण शत्रुः जितः, ३. मया रामायणं श्रुतम्– इत्यादि वाक्यों को शिक्षक कृष्णफलक पर लिखकर इनके अर्थ पूछेगा और हतः, जितः, श्रुतम् की रचना तथा इनके प्रयोग की ओर छात्रों का ध्यान आकृष्ट करेगा। प्रश्नोत्तर विधि से छात्र सुगमता से बतलायेंगे कि 'त' प्रत्यय लगाकर ये रूप बनाये गये हैं। भूतकाल कर्मवाच्य की क्रिया में इनका प्रयोग है, लिङ्ग,	३. क्तान्त रूप– भूतकाल कर्म-वाच्य की क्रिया बनाने के लिए क्त (त) प्रत्यय धातुओं से लगता है। इसे क्तान्त रूप कहते हैं। कर्म के अनुसार इनके लिङ्ग वचन होते हैं यथा— श्रु से श्रुतम्। आदि।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	वचन कर्म के अनुसार हैं। उदाहरणों पर ध्यान देते हुए छात्र नियम स्वयं लिख सकेंगे।	
४—क्त्वान्त रूप— ५—तुमुन्नन्त रूप— ६—तव्यदन्त रूप—	१—अहं स्नात्वा पठितुं गमिष्यामि। २—कियचिरं पठित्वा त्वं क्रीडितुं गमिष्यसि। ३—गुरु नत्वा पठ ४—प्रातः सदा स्नातव्यम्। ५—निर्धनेभ्यो धनं दातव्यम्। शिक्षक इन वाक्यों में प्रयुक्त स्नात्वा, पठितुम्, पठित्वा, क्रीडितुम्, नत्वा, स्नातव्यम्, दातव्यम् आदि के अर्थ पूछ कर इनकी रचना विधि को प्रश्नोत्तर द्वारा छात्रों को हृदयङ्गम करवा देगा। छात्र सुगमतया समझ जायंगे कि 'करके' अर्थ में क्त्वा (त्वा), 'के लिए' के अर्थ में तुमुन् (तुम्),'चाहिए'	४. क्त्वान्तरूप— 'करके' अर्थ में धातुओं से क्त्वा (त्वा) प्रत्यय लगता है। इस के लगने से जो रूप बनता है उसे क्त्वान्त कहते हैं। यथा स्ना से स्नात्वा पठ् से पठित्वा। ५. तुमुन्नन्त रूप— 'के लिए' या 'को' अर्थ में धातुओं से तुमुन् (तुम्) प्रत्यय लगता है। तुम् जिसके अन्त में होता है उसे तुमुन्नन्त कहते हैं। यथा— पठ् से पठितुम्। धु से धोतुम्। ६. तव्यदन्त रूप— 'चाहिए' कर्म-

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	के अर्थ में तव्यत् (तव्य) ये कृत्प्रत्यय आते हैं।	वाच्य मे धातुओं मे तव्यत् (तव्य) आता है। इस रूप को तव्यदन्त कहते हैं यथा—गम् से गन्तव्यम्। दा से दातव्यम्।

आवृत्ति

क्तवतु तथा क्तान्त रूपों का प्रयोग कहाँ होता है?

गृह-कार्य

भू, जि, श्रु, कृ के शतृ आदि सब कृत्प्रत्ययों में जो रूप बनते हैं उन्हें लिख लाना।

XVII

सूचना—इस पाठ को कई समुचित पाठों में विभक्त किया जा सकता है।

अध्यापक-रोल नम्बर——

पाठ—संस्कृत (व्याकरण) समय ४० मिनट

कक्षा—आठवीं विषय—समास

उद्देश्य—समास लक्षण तथा उसके भेदों का सामान्य ज्ञान।

पूर्वज्ञान परीक्षण तथा नवीन पाठ में प्रवेश

छात्र हिमालय, विद्यालय, विद्यार्थी आदि समस्त तथा समास-रहित शब्दों का अर्थ समस्त तथा असमस्त

शब्दों में छात्रों द्वारा अन्तर विदित करवाते हुए उनके इसी ज्ञान के आधार पर नवीन पाठ में प्रवेश होगा।

१. राज्ञः पुरुषः—राज-पुरुषः
२. पितुः पूजनम्—पितृपूजनम।
३. चौराद् भयम्—चौरभयम्।
४. कृष्णः सर्पः—कृष्णसर्पः।

इस प्रकार दोनों तरह के शब्दों को कृष्णफलक पर लिखकर—

शिक्षक—राज्ञः पुरुष और राजपुरुष का अर्थ बतलाओ।

छात्र—दोनों का अर्थ है राजा का पुरुष।

शिक्षक—एक अर्थ होने पर भी दोनों शब्दों में क्या अन्तर है?

छात्र—प्रथम उदाहरण में राज्ञः और पुरुषः ये दोनों पद पृथक्-पृथक् हैं। दूसरे उदाहरण में राज्ञः की विभक्ति हट गई है और एक पद बन गया है।

शिक्षक—क्या इन दोनों शब्दों में कोई सम्बन्ध है?

छात्र—राज्ञः का पुरुषः से, पुरुषः का राज्ञः से सम्बन्ध है। अर्थात् राजा का पुरुष। पुरुष किसका? राजा का। इस तरह परस्पर दोनों पद सम्बद्ध हैं। इसी प्रकार अन्य तीन युगलों में भी पद परस्पर सम्बद्ध हैं।

उद्देश्य-कथन शिक्षक बतला देगा कि इन उदाहरणों में शब्दों का परस्पर सम्बन्ध होने के कारण मेल है। आज हमने यही बतलाना है कि इस विधि से मिलकर बने हुए पदों को क्या कहते हैं और उनके कितने भेद तथा उपभेद हैं।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
समास-लक्षण—	१ रामश्च लक्ष्मणश्च—राम-लक्ष्मणौ, २. व्याघ्रात् भीतः—व्याघ्र-भीतः, ३. गम्भीरः शब्दः—गम्भीर शब्दः, इस विधि से शब्दों को लिखकर शिक्षक प्रश्न करेगा— शिक्षक—इनका अर्थ क्या है ? छात्र—इनका अर्थ क्रमशः—राम और लक्ष्मण, व्याघ्र से डरा हुआ, गम्भीर शब्द । शिक्षक—इन शब्दों में परस्पर कोई सम्बन्ध है ? छात्र— १. प्रथम उदाहरण में 'च' से शब्द मिले हुए हैं। दोनों ही शब्द (खण्ड) प्रधान हैं । २. दूसरे में व्याघ्र से क्या ? डरा हुआ, किससे डरा हुआ ? व्याघ्र से । ३. तीसरे में गम्भीर क्या ? शब्द, कैसा शब्द ? गम्भीर।	

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	यहाँ विशेषण और विशेष्य रूप में सम्बन्ध है। इस भाँति तीनों उदाहरणों के शब्दों में परस्पर कोई सम्बन्ध है। शिक्षक—क्या उल्लिखित उदाहरणों में प्रयुक्त शब्दों के दोनों रूपों में कोई अन्तर है ? छात्र—इन उदाहरणों के प्रथम रूपों में पद पृथक् २ हैं। दूसरे रूपों में पद मिले हुए हैं और बीच की विभक्ति हट गई है और एक पद बन गया है। शिक्षक बतला देगा कि ये शब्द परस्पर सम्बन्ध रखते हैं। इसलिए इनको मिलाकर एक पद बनाकर लिखा गया है। मध्य की विभक्ति हटा दी गई है। इस विधि से एक पद बनाने को समास कहते हैं। लक्षण छात्रों से लिखवाना चाहिये।	समास लक्षण-परस्पर सम्बन्ध रखने वाले दो या दो से अधिक शब्दों के मेल को समास कहते हैं। समास में मध्य की विभक्ति का लोप होने से एक शब्द बन जाता है। यथा—रामश्च लक्ष्मणश्च राम-लक्ष्मणौ। व्याघ्राद् भीत-व्याघ्रभीत.। गम्भीरः शब्दः—गम्भीरशब्दः।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
समास-भेद— १—द्वन्द्व २—तत्पुरुष ३—कर्मधारय ४—द्विगु ५—बहुव्रीहि ६—अव्ययीभाव	१—हरिश्च हरश्च—हरि हरौ। २—शिवस्य मन्दिरम्—शिव-मन्दिरम्। ३—कृष्णः सर्पः—कृष्ण सर्पः ४—त्रयाणां भुवनानां समाहारः—त्रिभुवनम्। ५—पीतानि अम्बराणि यस्य सः—पीताम्बरः। ६—शक्तिमनतिक्रम्य—यथाशक्ति। शिक्षक उपरिलिखित उदाहरणों के शब्दों में परस्पर सम्बन्ध, वह सम्बन्ध किस प्रकार का है; परस्पर उदाहरणों में क्या अन्तर है, इत्यादि प्रश्न करेगा। छात्र बतला देंगे कि इनमें भिन्न २ प्रकार का सम्बन्ध है। प्रथम उदाहरण में दोनों शब्द प्रधान हैं, च से सम्बद्ध हैं। दूसरे में द्वितीय पद प्रधान है। प्रथम पद द्वितीय पद के अर्थ को सीमित करता है। तीसरे उदाहरण में विशेषण-विशेष्य हैं। चतुर्थ में	१ द्वन्द्व लक्षण—ऐसे दो वा दो से अधिक पदों के मेल को जिन का सम्बन्ध 'च' से प्रकट होता है द्वन्द्व कहते हैं। इसमें सभी पद प्रधान होते हैं यथा—रामश्च लक्ष्मणश्च=रामलक्ष्मणौ। २. तत्पुरुष लक्षण—जिस समास में प्रथम पद दूसरे पद के अर्थ को सीमित करता है और दूसरा पद प्रधान होता है उसे तत्पुरुष कहते हैं। यथा—शिवस्य मन्दिरम्-शिव-मन्दिरम्। इस में शिवस्य

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	समाहार का बोध है, प्रथम पद संख्या-वाचक है। पञ्चम में दोनों ही पद प्रधान नहीं, अन्य पद प्रधान है—छठे उदाहरण में प्रथम पद अव्यय है। सभी उदाहरणों में मध्य की विभक्ति का लोप है और एक पद बन गया है। शिक्षक बतला देगा कि इन उदाहरणों में भिन्न २ सम्बन्ध हैं। उसके अनुसार क्रमशः इन समासों के ६ भेद हैं। १. प्रथम उदाहरण—द्वन्द्व समास। २. द्वितीय उदाहरण—तत्पुरुष समास। ३. तृतीय उदाहरण—कर्मधारय समास। ४. चतुर्थ उदाहरण—द्विगु-समास। ५. पञ्चम उदाहरण—बहुव्रीहि समास। ६. षष्ठ उदाहरण—अव्ययी-भाव समास।	से आकांक्षा रहती है कि शिव का क्या, 'मन्दिरम्' इस आकांक्षा को दूर करता है। अतः यह प्रधान है मन्दिरम् का अर्थ प्रत्येक मन्दिर है किन्तु प्रथम पद ने उसको सीमित कर दिया। प्रथम पद योग से केवल शिवमन्दिर से ही तात्पर्य है सब मन्दिर नहीं। ३. कर्मधारय लक्षण— जिस समास में विशेषण विशेष्य सम्बन्ध होता है उसे कर्मधारय कहते हैं। यथा कृष्णः सर्पः= कृष्णसर्प, यहाँ

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	छात्र उदाहरणों पर ध्यान देते हुए लक्षण स्वयं लिख देंगे।	प्रथम पद विशेषण तथा दूसरा पद विशेष्य है। अतः यह विशेषण पूर्वपद कर्मधारय है।
२. तत्पुरुष—	शिक्षक—शिवस्य मन्दिरम् -शिवमन्दिरम्। इन में परस्पर क्या सम्बन्ध है? कैसा है? कौन पद प्रधान है? इत्यादि प्रश्नों द्वारा छात्रों से यह स्पष्ट करवायेगा कि इस उदाहरण में द्वितीय पद प्रधान है, प्रथम पद द्वितीय पद के अर्थ को सीमित कर रहा है, प्रथम पद षष्ठी विभक्ति में है जिसका लोप होगया है। शिक्षक बतलायेगा कि यह तत्पुरुष समास है। लक्षण छात्र लिखेंगे।	
३. कर्मधारय-	शिक्षक कृष्णफलक पर कृष्णः सर्पः=कृष्णसर्पः यह लिखकर प्रश्नों द्वारा छात्रों से कहलवायेगा कि यहाँ प्रथम पद विशेषण है, द्वितीय पद विशेष्य है।	

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	विशेषण-विशेष्य का समास है। तब शिक्षक बतला देगा कि इसे विशेषणपूर्वपद कर्मधारय कहते हैं। लक्षण छात्र स्वयं लिखेंगे।	
४. द्विगु-	त्रयाणां भुवनानां समाहारः=त्रिभुवनम्। शिक्षक इस उदाहरण को लिखकर प्रश्नोत्तर द्वारा छात्रों से स्पष्ट करवायेगा कि इसमें प्रथम पद संख्यावाचक है। समास का अर्थ समाहार है। शिक्षक बतला देगा कि इसे द्विगु कहते हैं।	४. द्विगु लक्षण- जिस समास का पूर्वपद संख्यावाचक हो, समास का अर्थ समाहार हो उसे द्विगु कहते हैं। यथा त्रयाणां भुवनानां समाहारः त्रिभुवनम्।
५. बहुव्रीहि-	पीतानि अम्बराणि यस्य सः पीताम्बरः—शिक्षक इन समस्त तथा असमस्त पदों को लिखकर इनमें अन्तर विदित करवाता हुआ छात्रों से प्रश्नोत्तर विधि से कहलवायेगा कि इसमें कोई भी पद प्रधान नहीं है, अन्य पद, जिसके पीले कपड़े हैं, प्रधान है। इसमें यत् शब्द के रूपों का प्रयोग होता है	५. बहुव्रीहि- लक्षण— जिस समास में दोनों ही पद प्रधान न हों, अन्यपद प्रधान हो और विग्रह में यत् शब्द की कोई विभक्ति हो उसे बहुव्रीहि कहते हैं। यथा—

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	आदि-आदि। अब शिक्षक बतलायेगा कि ऐसे समास को बहुव्रीहि कहते हैं। लक्षण छात्र लिखेंगे।	पीतानि अम्बराणि यस्य सः पीताम्बर।
६. अव्ययी-भाव—	अक्षणः प्रति=प्रत्यक्षम्, इन पदों को कृष्णफलक पर लिखकर शिक्षक छात्रों से इनमें भेद स्पष्ट करवाता हुआ बतला देगा कि इस समास में प्रथम अव्यय है और वही प्रधान है। समस्त पद अव्यय बन गया है। ऐसे समास को अव्यय कहते हैं। लक्षण छात्रों से लिखवाना चाहिए।	६. अव्ययी-भाव-लक्षण— जिस में सुबन्त पद के साथ अव्यय का समास हो उसे अव्ययीभाव कहते हैं। यथा शक्ति-मनतिक्रम्य— यथाशक्ति।

परीक्षण

१—समास तथा संधि किसे कहते हैं ?

२—उसके कितने भेद हैं ?

३—बहुव्रीहि, द्विगु और कर्मधारय का क्या लक्षण है ? उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करो।

४—कर्मधारय तथा द्विगु में क्या अन्तर है ?

गृह-कार्य

समास तथा उसके भेदों के लक्षण लिखकर लाना।

XVIII

अध्यापक-रोल नम्बर——

पाठ—संस्कृत (व्याकरण) विषय—स्त्रीप्रत्यय

कक्षा—आठवीं समय ४० मिनट

उद्देश्य—आ, ई, प्रत्यय लगाकर पुंल्लिङ्ग से स्त्रीलिङ्ग बनाने का अभ्यास।

पूर्व-ज्ञान तथा नवीन पाठ से सम्बन्ध

छात्र हिन्दी तथा इंग्लिश में स्त्रीलिङ्ग बनाने की रीति जानते हैं, अतः उनके इसी ज्ञान के आधार पर नवीन पाठ मे प्रवेश होगा।

शिक्षक—हिन्दी में पुंल्लिङ्ग से स्त्रीलिङ्ग बनाने की रीति क्या है?

छात्र—हिन्दी में पुंल्लिङ्ग शब्दों के अन्त में आ, ई, आनी, आदि प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिङ्ग बनाये जाते हैं। यथा—वाल से वाला, देव से देवी, देवर से देवरानी।

उद्देश्य-कथन—शिक्षक बतलायेगा कि जिस तरह हिन्दी में पुंल्लिङ्ग शब्दों के अन्त में प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिङ्ग बनाये जाते हैं इसी तरह संस्कृत में भी अन्त में प्रत्यय लगने पर स्त्रीलिङ्ग बन जाता है। आज के पाठ में संस्कृत में पुंल्लिङ्ग से स्त्रीलिङ्ग बनाने की विधि सिखाई जायगी।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	१. निपुणः दासः, निपुणा दासी, २. कृपणः नरः, कृपणा नारी,	

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	३. चपलः बालः, चपला बाला, ४. प्रियः बालः, प्रिया बाला,	
१. अकारान्त तथा अजादि शब्दों से 'आ' प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिङ्ग ।	शिक्षक ऊपर के वाक्यांशों को कृष्णफलक पर लिखकर परस्पर अन्तर पूछेगा। छात्र प्रश्नोत्तर द्वारा बतला देंगे कि प्रथम भाग में निपुण दास, कृपण नर, चपल बाल, प्रिय बाल आदि शब्द पुंलिङ्ग के हैं। निपुण, कृपण, चपल, प्रिय विशेषण हैं और दास, नर, बाल, ये विशेष्य हैं। निपुण, कृपण, चपल, प्रिय, इन से 'आ', दास, नर, इन से 'ई' और बाल से 'आ' लगाकर स्त्रीलिङ्ग शब्द बने हुए हैं। शिक्षक बतला देगा कि अकारान्त तथा अजादि शब्दों के साथ 'आ' प्रत्यय जोड़ने से पुंलिङ्ग शब्द स्त्रीलिङ्ग बनता है। निम्नलिखित शब्दों के स्त्रीलिङ्ग	१. 'आ' प्रत्यय— १. अकारान्त शब्दों के अन्त में 'आ' जोड़ने से स्त्रीलिङ्ग बनता है। यथा—मनोरम से मनोरमा, दयित से दयिता, कान्त से कान्ता, दक्षिण से दक्षिणा, आदि । २. अजादि शब्दों में स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए अन्त में 'आ' प्रत्यय लगाया जाता है। यथा अज से अजा, अश्व से अश्वा, एडक से एडका,

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	बनवाकर अभ्यास करवायेगा । क—मनोरम, दयित, कान्त, दक्षिण, चपल, वाम, कृश क्रूर, दक्ष, आदि । ख—अज, एडक, अश्व, चटक, मूषिक, कोकिल आदि । इसके साथ ही शिक्षक अजादि शब्द छात्रों को नोट करवा देगा ।	चटक से चटका, बाल से बाला, आदि ।
२. जातिवाचक — अकारान्त शब्दों से 'ई' प्रत्यय	ब्राह्मण, वृषल, सिंह, मृग, मयूर, कुक्कुट, काक, वर्कर हय, सूकर, बिडाल, गवय, भृङ्ग, महिष, मनुष्य, आदि शब्दों को कृष्णफलक पर लिखकर शिक्षक इनके स्त्रीलिङ्ग बनाने को श्रेणी से कहेगा। कुछ छात्र पूर्व-पठित नियमानुसार 'आ' प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिङ्ग बनायेंगे, किन्तु कुछ छात्र पठित पाठों में ब्राह्मणी, काकी, मृगी आदि प्रयोगों के अभ्यास के फल स्वरूप	२. 'ई' प्रत्यय— जातिवाचक अकारान्त शब्दों में स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए 'ई' प्रत्यय आता है । यथा— ब्राह्मण से ब्राह्मणी, मृग से मृगी, काक से काकी।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	ब्राह्मण आदि शब्दों से 'ई' लगाकर स्त्रीलिङ्ग बनायेंगे। ऐसी स्थिति में शिक्षक अकारान्त तथा अजादि शब्दों के उदाहरणों में और जातिवाचक अकारान्तों में अन्तर की ओर छात्रों का ध्यान आकृष्ट कर उन से कहलाने का यत्न करेगा कि पहले शब्द अकारान्त और अजादि हैं। ये भी अकारान्त ही हैं किन्तु विशेषता यह है कि ये जातिवाचक अकारान्त हैं। यही इन में भेद है। शिक्षक नियम लिखवा देगा और स्पष्ट कर देगा कि अकारान्त शब्दों से 'आ', जातिवाचक अकारान्त शब्दों से 'ई' तथा अजादि शब्दों से 'आ' प्रत्यय लगने पर स्त्रीलिङ्ग बनता है।	
३. उ, ऋ, न्, वत्, मत्, वस्, ईयस् अन्त वाले शब्दों से 'ई' प्रत्यय	क—लघुः-लघ्वी, गुरुः-गुर्वी, ख—कर्तृ-कर्त्री, हन्तृ-हन्त्री,	३. 'ई' प्रत्यय— उकारान्त, ऋकारान्त, नकारान्त तथा वत्, मत्,

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	ग—कामिन्-कामिनी, मानिन्-मानिनी, घ—विद्यावत्-विद्यावती, धनवत्-धनवती, मतिमत्-मतिमती। शिक्षक निर्दिष्ट उदाहरणों में अन्तर विदित कराता हुआ छात्रों से कहलवायेगा कि क-भाग में उकारान्त ख-भाग में ऋकारान्त, ग-भाग में नकारान्त और घ-भाग में वत्, मत्, अन्त वाले शब्द हैं। इनसे 'ई' प्रत्यय जोड़कर स्त्रीलिङ्ग बनाया जाता है। उदाहरणों पर ध्यान देते हुए छात्र नियम स्वयं लिखेंगे।	वत्, ईयस् जिन के अन्त में हो उन से 'ई' प्रत्यय जुड़कर स्त्रीलिङ्ग बनता है। यथा— लघु से लघ्वी। वर्तृ से वर्त्री। कामिन् से कामिनी। गुणवत् से गुणवती। बुद्धिमत् से बुद्धिमती।
४ आनी प्रत्यय—	इन्द्रः-इन्द्राणी, रुद्रः-रुद्राणी, भवः—भवानी। उल्लिखित उदाहरणों पर ध्यान देने से छात्र अवश्य समझ जायेंगे कि कुछ शब्दों मे 'आनी' प्रत्यय लग कर स्त्रीलिङ्ग बनता है। नियम छात्र लिखेंगे।	४. आनी प्रत्यय— इन्द्र आदि शब्दों से 'आनी' प्रत्यय जुड़कर स्त्रीलिङ्ग बनता है। यथा— इन्द्र से इन्द्राणी आदि।

आवृत्ति तथा परीक्षण

१—अकारान्त शब्दों से स्त्रीलिङ्ग कैसे बनता है ?

२—कान्त, भव, कामिन्, बलवन् का स्त्रीलिङ्ग रूप कैसा होता है ?

गृह-कार्य

'ई' लगा कर स्त्रीलिङ्ग बनाने का नियम लिखने को दिया जायगा।

XIX

अध्यापक-रोल नम्बर——

पाठ—संस्कृत (व्याकरण) वाच्य-परिवर्तन

कक्षा—आठवीं समय ४० मिनट

उद्देश्य—वाच्य-परिचय तथा उसके परिवर्तन के नियमों को हृदयङ्गम कराना।

पूर्वज्ञान-परीक्षण तथा नवीन पाठ से सम्बन्ध

छात्र हिन्दी में वाच्य का सामान्य ज्ञान रखते हैं। उस ज्ञान के आधार पर नवीन पाठ में प्रवेश होगा।

१. छात्र पुस्तक पढ़ते हैं—छात्रों से पुस्तक पढ़ी जाती है।

२. शिक्षक पाठ पढ़ाता है—शिक्षक से पाठ पढ़ाया जाता है।

३. भक्त हरि को देखता है—भक्त से हरि देखा जाता है।

शिक्षक—इन वाक्यों में क्या अन्तर है ?

छात्र—पहले वाक्यों में कर्ता प्रधान है। क्रिया के लिङ्ग-वचन कर्ता के अनुसार हैं। दूसरे वाक्यों में कर्म प्रधान है।

यहाँ क्रिया के लिङ्ग-वचन कर्म के अनुसार हैं। प्रथम वाक्यों का कर्ता दूसरे वाक्यों में तृतीया विभक्ति में और कर्म प्रथमा विभक्ति में बदल गया है।

शिक्षक—इस परिवर्तन को क्या कहते हैं ?

छात्र—इस परिवर्तन को वाच्यपरिवर्तन कहते हैं। इसके द्वारा पता चलता है कि वाक्य में कर्ता प्रधान है अथवा कर्म ? क्रिया के लिङ्ग-वचन कर्ता के अनुसार हैं ? अथवा कर्म के ?

उद्देश्य-कथन—शिक्षक बतला देगा कि जिस तरह हिन्दी में वाच्य-परिवर्तन होता है, उसी प्रकार संस्कृत में भी वाच्य-परिवर्तन होता है। संस्कृत में वाच्य-परिवर्तन की विधि बतलाना हमारे आज के पाठ का उद्देश्य है।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
कर्तृवाच्य के वाक्यों का कर्मवाच्य में परिवर्तन—	१. रामः पुस्तकं पठति, २. सूदः अन्नं पचति, ३. बालः सर्पं हन्ति, ४. शिष्यः गुरुं प्रणमति। उपरिनिर्दिष्ट वाक्यों को लिखकर— शिक्षक-इन वाक्यों में प्रधान कौन है ? छात्र-कर्ता, यथा-रामः,सूदः, बालः, शिष्यः। शिक्षक-इनमें क्रियाओं के	

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	पुरुष और वचन किसके अनुसार हैं ? छात्र–क्रियाओं के पुरुष और वचन कर्ता के अनुसार हैं। शिक्षक–प्रथम वाक्य का अर्थ क्या है ? छात्र–राम पुस्तक को पढ़ता है।	
	शिक्षक–यदि इस वाक्य का वाच्य-परिवर्तन करना हो तो हम क्या करेंगे ? छात्र–प्रथमा विभक्ति को तृतीया में तथा द्वितीया को प्रथमा में बदल देंगे। यह रीति हिन्दी में वाच्य-परिवर्तन की है। यथा–'रामः पुस्तकं' के स्थान पर 'रामेण पुस्तकं' बन जायगा।	१. रामेण पुस्तकं पठ्यते । २. सूदेन अन्नं पच्यते । ३. बालेन सर्पः हन्यते । ४. शिष्येण गुरुः प्रणम्यते ।
	शिक्षक बतला देगा कि कर्ता तथा कर्म के परिवर्तन का नियम तो तुम जानते हो, क्रिया के परिवर्तन का नियम यह है कि मूल धातु के साथ 'य' लगाकर आत्मनेपद के	वाच्यपरिवर्तन-नियम— कर्तृवाच्य के वाक्य का कर्म-वाच्य में परिवर्तन करने लिए

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	प्रत्यय लगादो। शिक्षक उपरिलिखित वाक्यों का वाच्यपरिवर्तन कर लिखने को कहेगा। छात्र, वाच्यपरिवर्तन कर कृष्णफलक पर लिख देंगे। कहीं कोई अशुद्धि रह जायगी तो प्रश्नोत्तर द्वारा छात्रों से ही ठीक करवा दी जायगी, इस प्रकार विविध वाक्यों द्वारा अभ्यास हो जाने पर वाच्यपरिवर्तन-नियम छात्र स्वयं लिख देंगे।	कर्तृवाच्य का कर्ता तृतीया में, कर्म प्रथमा में बदल दिया जाता है। वाक्य में प्रयुक्त क्रिया के मूल धातु में 'य' लगाकर उसके आगे आत्मनेपद के प्रत्यय लगा दिये जाते हैं। यथा—'सः कन्दुकं क्षिपति' से 'तेन कन्दुकः क्षिप्यते'।
भूतकाल की क्रिया वाले वाक्यों का वाच्यपरिवर्तन-	१. नृपः चौरम् अदण्डयत्। २. बालः ग्रामम् अगच्छत्। ३. पाचकः ओदनम् अपचत्। शिक्षक प्रत्येक वाक्य का परिचय छात्रों से विदित करता हुआ इन वाक्यों को कर्मवाच्य में बदलने को कहेगा। शिक्षक—नृपः, बालः, पाचकः में कौन सी विभक्ति है? कर्मवाच्य में इनके स्थान पर कौन-सी विभक्ति होगी?	

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	छात्र—ये सब प्रथमा विभक्ति में हैं। कर्मवाच्य में प्रथमा के स्थान पर तृतीया हो जायगी यथा—नृपेण, बालेन, पाचकेन।	
	शिक्षक—चौरं, ग्रामं, ओदनं, यह कौन-सी विभक्ति है? कर्मवाच्य में कौन सी विभक्ति होगी?	
	छात्र—यहाँ द्वितीया विभक्ति है। इसके स्थान पर प्रथमा हो जायगी। यथा—चौरः, ग्रामः, ओदनं (प्रथमान्त)।	
	शिक्षक—इन वाक्यों की क्रिया का परिवर्तन कैसे होगा?	१. नृपेण चौरः अदण्ड्यत।
	छात्र—मूल धातु से 'य' लगाकर आत्मनेपद के प्रत्यय जोड़ेंगे। अदण्ड्यत, अगम्यत, अपच्यत।	२. बालेन ग्रामः अगम्यत। ३. पाचकेन ओदनमपच्यत।
	शिक्षक इन वाक्यों को परिवर्तित कर लिखने के लिए कहेगा। छात्र लिख सकेंगे।	

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
लोट् की क्रिया वाले वाक्यों का कर्मवाच्य में परिवर्तन—	शिक्षक उपरिलिखित वाक्यों में अदण्डयत् आदि के स्थान पर दण्डयतु आदि लोट् की क्रियाओं का प्रयोग कर पूर्वनिर्दिष्ट विधि से प्रश्नोत्तर द्वारा छात्रों से इन वाक्यों का कर्मवाच्य में परिवर्तन करवायेगा। छात्र परिवर्तित वाक्यों को कृष्ण-फलक पर लिख देंगे।	१. नृपेण चौरः दण्ड्यताम्। २. बालेन ग्रामः गम्यताम्। ३. पाचकेन ओदनं पच्यताम्।

आवृत्ति तथा परीक्षण—

१. कर्तृवाच्य तथा कर्मवाच्य में क्या अन्तर है ?
२. कर्तृवाच्य का कर्मवाच्य में परिवर्तन किस विधि से होता है ?

गृह-कार्य

कर्तृवाच्य वाले कुछ वाक्य कर्मवाच्य में परिवर्तित कर लाने को दिये जायंगे।

XX

अध्यापक-रोल नम्बर——

पाठ—संस्कृत (व्याकरण) आत्मनेपद—प्रकरण

कक्षा—आठवीं समय ४० मिनट

उद्देश्य—आत्मनेपद के प्रत्यय तथा उनका उपयोग—

पूर्वज्ञान-परीक्षण तथा नवीन पाठ से सम्बन्ध

छात्र संस्कृत में परस्मैपदी धातुओं में प्रयुक्त होने वाले प्रत्ययों को जानते हैं। इसी ज्ञान के आधार पर नवीन पाठ में प्रवेश होगा।

शिक्षक—लट् के प्रत्यय कौन से हैं ?

छात्र—प्र. पु.	ति	तः	अन्ति ।
म. पु.	सि	थः	थ ।
उ. पु.	मि	वः	मः ।

शिक्षक कृष्णफलक पर अधोनिर्दिष्ट वाक्यों को लिख देगा।
क—सूर्यः प्रकाशते। ख—भयाद् वेपते हृदयम्।
ग—देवं वन्दे। घ—वातेन पर्वताः न कम्पन्ते।

शिक्षक प्रश्नोत्तर द्वारा अर्थ विदित करइन वाक्यों में प्रयुक्त क्रियाओं को रेखाङ्कित करने को कहेगा। साथ ही उनके काल, पुरुष, वचन, पूछेगा। छात्र प्रकाशते, वेपते, वन्दे, कम्पन्ते को रेखाङ्कित कर देंगे। अर्थ पर ध्यान देते हुए काल, पुरुष, वचन, बता देंगे। परन्तु यह अवश्य कहेंगे कि इन में प्रयुक्त प्रत्यय उन प्रत्ययों से भिन्न हैं जो हमने पढ़े हैं।

उद्देश्य-कथन—शिक्षक बतला देगा कि तुम लट्, लङ्, लोट् के एक प्रकार के प्रत्यय तो जानते हो। वे प्रत्यय, परस्मैपदी हैं। आज तुम्हें दूसरे प्रकार के प्रत्यय जो आत्मनेपदी कहलाते हैं, बतलाये जायंगे। संस्कृत में धातु दो प्रकार के हैं—परस्मैपदी और आत्मनेपदी। परस्मैपदी धातुओं से परस्मैपदी प्रत्यय और आत्मनेपदी धातुओं से अत्मनेपदी प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
लट् के आत्मनेपदी प्रत्यय—	शिक्षक—यत्न करना, प्रशंसा करना, काँपना, चमकना, इनके लिए संस्कृत में कौन से धातु हैं ? छात्र—यत्, श्लाघ्, कम्प्, प्रकाश् क्रमशः—ये धातु हैं। शिक्षक—ये धातु आत्मनेपदी हैं अतः इन से दूसरे प्रकार के प्रत्यय लगेंगे।	लट्— प्र. पु. ते इते अन्ते म. पु. से इथे ध्वे उ. पु. इ वहे महे
	दूसरे प्रकार के प्रत्ययों को शिक्षक कृष्णफलक पर लिख देगा और छात्रों से इनका अभ्यास करवा कर क्रमशः एक-एक धातु का उच्चारण छात्रों से लिखने को कहेगा। छात्र लिख देंगे। इसी प्रकार श्लाघ्, कम्प्, प्रकाश् का भी उच्चारण सुन लिया जायगा।	प्रयोग— प्र. पु. यतते यतेते यतन्ते म. पु. यतसे यतेथे यतध्वे उ. पु. यते यतावहे यतामहे
लङ् भूतकाल के आत्मनेपदी प्रत्यय—	शिक्षक—लङ् के परस्मैपदी प्रत्यय कौन से हैं ? छात्र—प्र. पु. त्, ताम्, अन्, म. पु. अः, तम्, त, उ. पु. अम्, व, म,	

वस्तु—   शिक्षण-विधि   कृष्णफलक सार

शिक्षक बतलादेगा कि ये प्रत्यय परस्मैपदी हैं और परस्मैपदी धातुओं के साथ प्रयुक्त होवे हैं।

आओ, हम आत्मनेपदी प्रत्यय बतलाते हैं। शिक्षक आत्मनेपदी प्रत्ययों को कृष्णफलक पर लिख देगा। एक दो छात्रों से अभ्यास करवाकर वन्द्, श्लाघ्, यत् के साथ प्रयोग करने को कहेगा, छात्र क्रियापद के रूपों को कृष्णफलक पर लिख देंगे। तब शिक्षक अभ्यासार्थ इनके साथ कर्ता का प्रयोग करवायेगा।

लङ् के प्रत्यय—

प्र. पु.	त,	इताम्,	अन्त।
म. पु.	थाः,	इथाम्,	ध्वम्।
उ. पु.	इ,	वहि,	महि।

रूप रचना—

प्र. पु.	अवन्दत,	अवन्देताम्,	अवन्दन्त।
म. पु.	अवन्दथाः,	अवन्देथाम्,	अवन्दध्वम्।
उ. पु.	अवन्दे,	अवन्दावहि,	अवन्दामहि।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
लोट् के आत्मनेपदी प्रत्यय-	छात्रों से लोट् के परस्मैपदी प्रत्यय सुनकर शिक्षक छात्रों से कहेगा कि तुमने लट्, लङ् के आत्मनेपदी प्रत्यय तो सीख लिये हैं। अब हम लोट् में आत्मनेपदी प्रत्यय बतलायेंगे। प्रत्ययों को कृष्णफलक पर लिख देगा। उच्चारण का अभ्यास तथा इन प्रत्ययों का प्रयोग करवा कर— प्रारभ्—आरम्भ करना। —बोलना। मुद् (मोद्)—प्रसन्न होना। अध्यापक इन के रूप लिखने को कहेगा, छात्र लिख देंगे।	लोट् के प्रत्यय— प्र. पु. ताम्, इताम्, अन्ताम्, म. पु. स्व, इथाम्, ध्वम्। उ. पु. ऐ, आवहै, आमहै। रूप— प्र. पु. प्रारभताम्, प्रारभेताम्, प्रारभन्ताम्। म. पु. प्रारभस्व, प्रारभेथाम्, प्रारभध्वम्। उ. पु. प्रारभै, प्रारभावहै, प्रारभामहै।

परीक्षण तथा आवृत्ति

१—लट् मध्यम पुरुष के आत्मनेपदी प्रत्यय बतलाओ।
२—वन्द् धातु के लङ् उत्तम पुरुष के रूप बतलाओ।
३—कम्प् और यत् के लोट् प्रथम पुरुष में रूप लिखो।

गृह-कार्य

आत्मनेपदी रूपों के अभ्यासार्थ अनुवाद के लिए वाक्य दिये जायेंगे।

क—प्रबल वायु से भी पर्वत नहीं काँपते।
ख—भय से हृदय काँपता है।
ग—मैं देव को नमस्कार करता हूँ।
घ—हम सफलता के लिए यत्न करते हैं।

XXI

सूचना—इस पाठ को कई उपविभागों में बाँटा जा सकता है।
अध्यापक-रोल नम्बर——
पाठ—संस्कृत (व्याकरण) संख्यावाचक शब्द
कक्षा—आठवीं— समय ४० मिनट

उद्देश्य—संख्यावाचक तथा उनके निर्माण की रीति सिखाना।

पूर्वज्ञान तथा नवीन पाठ से सम्बन्ध

छात्र हिन्दी में संख्यावाचक तथा क्रमवाचक शब्दों को जानते हैं। इसी बात के आधार पर नवीन पाठ में प्रवेश होगा।

शिक्षक—एक से दस तक संख्यावाचक तथा पूर्णक्रमसंख्यावाचक शब्द बताओ।

छात्र—एक, दो, तीन, चार, तथा, पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा आदि।

शिक्षक—हिन्दी में दो दशकों (दहक्कों) के मध्य की संख्या बनाने के लिए तुम क्या करते हो ?

छात्र—दस से बीस तथा बीस से तीस के मध्य की संख्या बनाने के लिए कम गिनती वाले दशक के साथ एक आदि शब्दों के विकृत रूप लगाते हैं। यथा—२० से ३० के मध्य में इक्कीस बाईस, तेईस, चौबीस आदि।

उद्देश्य-कथन—शिक्षक बतला देगा कि हिन्दी के संख्यावाचकों के साथ संस्कृत के संख्यावाचक मिलते जुलते से हैं। इन दोनों में समानता है। संस्कृत संख्यावाचक ही हिन्दी संख्यावाचकों के स्रोत हैं। *आज हम संस्कृत में संख्यावाचक बनाने की रीति सिखायेंगे।*

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
दस तक संख्यावाचक-	छात्र अनेक पाठों में प्रयुक्त एकः, द्वौ, त्रयः आदि संख्यावाचकों का प्रयोग देख चुके हैं, अतः छात्रों की सहायता से कृष्णफलक पर एक आदि शब्द लिख देगा और यहाँ पर शिक्षक यह भी बतला देगा कि संख्यावाचकों में एक से चार तक सर्वनाम हैं, पाँच से उन्नीस तक नपुंसक हैं,	संख्यावाचक- एक, द्वि, त्रि, चतुर्, पञ्चन्, षट्, सप्तन्, अष्टन्, नवन्, दशन्।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	बीस से निन्नानबे तक स्त्रीलिङ्ग हैं और सौ नपुंसक है। एक शब्द सदा एकवचन में, 'द्वि' द्विवचन में और 'त्रि' आदि बहुवचन में प्रयुक्त होंगे। इनके रूप प्रश्नोत्तर विधि से छात्रों द्वारा लिखवादेगा।	रूप— एकः, षट्, द्वौ, सप्त, त्रयः, अष्ट, अष्टौ, चत्वारः, पञ्च, नव, दश।
	शिक्षक अभ्यासार्थ अधोलिखित का अनुवाद करवाकर कृष्णफलक पर लिखवा देगा। १–एक पुरुष, २–दो बालक, ३–तीन मृग, ४–चार घोड़े, ५–पाँच रसोइये, ६–छः दास, ७–सात राजा, ८–आठ छात्र, ९–नौ लड़के, १०–दस ग्राम।	अनुवाद— १- एकः पुरुषः, २. द्वौ बालकौ, ३. त्रयः मृगाः, ४. चत्वारः अश्वाः, ५ पञ्च सूदाः, ६. षड् दासाः, ७. सप्त नृपाः, ८. अष्टौ छात्राः, ९. नव बालाः, १०. दश ग्रामाणि,
दस से ऊपर संख्यावाचक शब्द निर्माण-रीति—	शिक्षक २०, ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८० और १००, के संख्यावाचक शब्द कृष्णफलक पर लिखदेगा। भिन्न-भिन्न छात्रों से प्रश्नोत्तर	विंशतिः, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टिः,

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	द्वारा अभ्यास करवायेगा। २०, ३० आदि के वाचकों का अभ्यास होजाने पर प्रश्न करेगा— शिक्षक—अंग्रेजी में दो दशकों के मध्य की संख्या किस रीति से बनाई जाती है? छात्र—दो दशकों के मध्य के संख्यावाचक को बनाने के लिए पूर्ण दशक के वाचक के पीछे एक आदि के वाचक वन् (one) टू (two) थ्री (three) आदि लगाये जाते हैं। यथा—ट्वन्टीवन् (twenty-one) ट्वन्टीटू (twenty two) आदि। शिक्षक बतला देगा कि जैसे अंग्रेजी में २० तथा ३०, ३० तथा ४० आदि के मध्य के संख्यावाचक बनाने के लिए पूर्ण दशकवाचक से एक आदि के वाचक जोड़े जाते हैं वैसे ही संस्कृत में भी छोटे दशकवाचक के साथ एक आदि के वाचक लगाये जाते हैं। परन्तु इतना	सप्तति:, अशीति:, नवति:, शतम्।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	अन्तर अवश्य है कि अंग्रेजी में एक आदि के वाचक दशकवाचक के अन्त में जुड़ते हैं और संस्कृत में आदि में यथा–ट्वन्टी वन् और एकवीस–इक्कीस।	
दस और बीस के मध्य के संख्यावाचक–	इसके अनन्तर शिक्षक दस से ऊपर बीस तक संख्यावाचक बनवायेगा। ११–१२ के लिए छात्र *क्रमशः–एकदश, द्विदश* बनायेंगे किन्तु एकादश, द्वादश, त्रयोदश, चतुर्दश, पञ्चदश, षोडश, सप्तदश, अष्टादश, नवदश या एकोनविंशति, इस प्रकार शुद्ध रूप छात्रों से बनवाने चाहिएँ।	दस से ऊपर संख्या वाचक बनाने की रीति— दस से ऊपर संख्यावाचक शब्द बनाने हों तो कम संख्या वाले दशक से पूर्व एक आदि शब्द लगा दो। यथा— २० से ३० के मध्य में एकविंशति आदि। एक कम दशक के पहले 'एकोन' शब्द भी जोड़ सकते हैं यथा— नवदश और एकोनविंशति।
कुछ परिवर्तन–	शिक्षक यह भी स्पष्ट कर देगा कि 'द्वि' कभी द्वा में बदल जाता है और २०,३०, ४० आदि से पहली अर्थात् १९,२९,३९, आदि संख्याओं के वाचक दो प्रकार से बनते हैं। एक तो उक्त विधि से यथा–नवदश, नवविंशति,	

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	नवत्रिंशत्, आदि तथा दूसरी रीति यह है कि दशक वाचक से पूर्व 'एकोन' यह शब्द जोड़ दिया जाता है। यथा—एकोनविंशति, एकोनत्रिंशत्, एकोनचत्वारिंशत् आदि। शिक्षक अभ्यासार्थ २४,२६,३७,३६, ४५,५०,६५,७७,८८, ६०, ६१ आदि के संख्यावाचक बनवायेगा।	

आवृत्ति तथा परीक्षण

१—दस तक के संख्यावाचक बतलाओ।
२—दस के ऊपर संख्यावाचक बनाने की क्या रीति है?

गृह-कार्य

दशकों के संख्यावाचक लिखने को दिये जायंगे।

XXII

अध्यापक-रोल नम्बर——

पाठ—संस्कृत (व्याकरण) विषय—तद्धित प्रत्यय
कक्षा—आठवीं समय ४० मिनट

उद्देश्य—नाम के साथ लग कर उनके अर्थ को बढ़ा देने वाले तद्धित प्रत्ययों तथा तद्धितान्त रूपों का ज्ञान करवाना।

पूर्वज्ञान के आधार पर नवीन पाठ में प्रवेश

छात्र हिन्दी में तद्धितान्त रूपों का ज्ञान रखते हैं। उनके इसी ज्ञान के आधार पर नवीन पाठ में प्रवेश होगा।

प्रियतर, प्रियतम, राघव, पाण्डव, बलवत्, धनवत्, धनिन्, बलिन्, दाशरथि, जानकी आदि शब्दों को कृष्णफलक पर लिखकर शिक्षक इनके अर्थ तथा रूप-रचना की ओर छात्रों का ध्यान आकृष्ट करेगा। छात्र हिन्दी-ज्ञान के आधार पर बतला देंगे कि ये शब्द नाम के साथ प्रत्यय लगा कर बनाये गये हैं। हिन्दी में इन्हें तद्धितान्त रूप कहते हैं।

उद्देश्य कथन—शिक्षक बतला देगा कि तद्धित प्रत्यय प्रायः संज्ञा आदि शब्दों के अर्थ को बढ़ाते हैं। ये कई प्रकार के हैं। आज हम तारतम्यबोधक (तुलनावाचक) तद्धितान्त रूपों के सम्बन्ध में कुछ बतायेंगे।

वस्तु—	शिक्षण-विधि—	कृष्णफलक सार
तारतम्यबोधक 'तर' और 'तम' प्रत्यय	१. अयमनयोः पटुतरः। २. अयमेषां पटुतमः। ३. प्रियतरः भ्राता। ४. प्रियतमः भ्राता। उपरिनिर्दिष्ट वाक्यों की ओर ध्यान दिलाता हुआ शिक्षक छात्रों से यह स्पष्ट करवाने का यत्न करेगा कि नं० १ तथा ३ के वाक्यों में दो में से एक का उत्कर्ष	'तर' 'तम' लगाकर तारतम्यबोधक तद्धितान्त रूप—जहां दो में से एक का उत्कर्ष बताना हो वहां उत्कर्षवाचक प्रातिपदिक में 'तर' प्रत्यय

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	बताया गया है अर्थात् दो में से अधिक पटु तथा प्रिय, यह बताया गया है। उत्कर्ष वाचक के अन्त में 'तर' प्रत्यय है। नं० २ तथा ४ वाले वाक्यों में सब से उत्कृष्टता बताई गई है उत्कृष्टतावाचक शब्द के अन्त में 'तम' प्रत्यय है। शिक्षक स्पष्ट कर देगा कि विशेषण के साथ 'तर' लगाकर दो में उत्कर्ष तथा 'तम' लगाकर सब में उत्कर्ष बतलाया गया है। यह शब्द-रचना नाम से प्रत्यय लगा कर हुई है और तारतम्य अर्थात् तुलना की बोधक है। अतः 'तर' तथा 'तम' तारतम्यबोधक तद्धित प्रत्यय हैं। अभ्यासार्थ कृश, महत्, मृदु, भृश, दृढ, पृथु, लघु, आदि शब्दों से 'तर' तथा 'तम' प्रत्यय लगाकर तारतम्यबोधक तद्धितान्त रूपों की रचना करवानी होगी।	लगाया जाता है। यथा— पटु में पटुतर. अयमनयोः पटुतर। जब किसी एक की सब में उत्कृष्टता दिखानी हो तब तद्वाचक शब्द से 'तम' प्रत्यय लगता है यथा— पटु से पटुतम· अयमेषां पटुतमः।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
तारतम्यबोधक ईयस् और इष्ठ प्रत्यय—	१—देवदत्तो यज्ञदत्ताद् वयसा कनीयान्। २—रामस्य कनिष्ठः भ्राता शत्रुघ्नोऽस्ति। शिक्षक उपरिलिखित वाक्यों का अर्थ पूछकर 'कनीयान्' और 'कनिष्ठ' को ओर छात्रों का ध्यान आकृष्ट करेगा। प्रश्नोत्तर विधि से छात्र यह बतलाने में समर्थ होंगे कि प्रथम वाक्य मे दो में से एक को आयु में छोटा तथा द्वितीय वाक्य में एक को सब से छोटा बतलाया गया है। यहाँ भी तारतम्य है। परन्तु प्रत्यय *'तर' 'तम' नहीं; भिन्न हैं।* शिक्षक समझायेगा कि जिस तरह 'तर' लगाने से 'दो में से, और 'तम' लगाने से सब में से एक का उत्कर्ष प्रकट होता है उसी तरह 'ईयस्' और 'इष्ठ' लगानेपर उत्कर्ष तारतम्य रूप से प्रतीत होता है। तर के स्थान	**ईयस् और इष्ट लगा कर तारतम्य बोधक तद्धितान्त रूप**— गुणवाचक प्रातिपदिक से दो में से एक का उत्कर्ष बताने के लिए 'ईयस्' और सब से अधिक उत्कृष्टता दिखलाने के लिए'इष्ठ'प्रत्यय भी लगते हैं। यथा— अल्प को कन् में बदल कर कनीयान् और कनिष्ठ बनते हैं।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	पर ईयस् और तम के स्थान पर इष्ठ लगाकर भी तारतम्य बोधक तद्धितान्त रूप बनते हैं। ऊपर के उदाहरणों में ईयस् और इष्ठ से पूर्व अल्प को 'कन्' हो गया है।	
विशेष—	शिक्षक निम्नलिखित बातों की ओर छात्रों का ध्यान विशेष आकृष्ट करेगा— १—ईयस् और इष्ठ जिस शब्द से लगाये जाते हैं उस के अन्तिम स्वर का लोप हो जाता है। यथा—पटु+ईयस् =पटीयस्, अल्प से अल्पीयस्। २—शब्द का आदि व्यञ्जन ऋ से युक्त हो तो ऋ को 'र' हो जाता है। यथा—कृश से क्रशीयस्।	
प्रयोग—	मृदु, पृथु, दृढ, भृश, पटु लघु, महत् के तारतम्य बोधक तद्धितान्त रूप ईयस् और इष्ठ के योग से बनवाकर अभ्यास करवाया जाएगा।	

पठित-परीक्षण तथा आवृत्ति

१—तर और तम का उपयोग कहाँ होता है ?

२—ईयस् और इष्ठ किस अर्थ में आते हैं ?

गृह-कार्य

तर-तम, और ईयस्-इष्ठ प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग कर के एक-एक वाक्य लिख लाना।

XXIII

अध्यापक-रोल नम्बर——

पाठ—सुमतिसचिव कथा— विषय—गद्य भाग

कक्षा—नवम समय ४० मिनट।

उद्देश्य—शुद्ध, स्पष्ट तथा सरल पठनपूर्वक प्रत्येक शब्द का अर्थ समझते हुए अपने शब्दों में भावार्थ वर्णन करने के योग्य बनाना और पठित सन्दर्भ के आधार पर व्याकरण-ज्ञान को दृढ़ करना।

प्राचीन ज्ञान के आधार पर नवीन पाठ में प्रवेश

शिक्षक पाठ में प्रवेशार्थ अधोलिखित प्रश्न करेगा।

१—मनुष्य हताश दुःखी, तथा विपद्ग्रस्त होने पर किस का आश्रय लेता है ?

२—प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त करता हुआ सफलता का कारण किसे समझता है ?

३—सम्पत्ति तथा विपत्ति में मनुष्य को क्या समझना चाहिए ? और कैसे रहना चाहिए।

इन प्रश्नों के आधार पर शिक्षक छात्रों से कहलवाने का प्रयत्न करेगा कि मनुष्य सफलता पर अपनी बुद्धि और चातुरी की प्रशंसा करता है। विपत्ति में ईश्वर का आश्रय ढूँढ़ता है। वास्तव में दोनों अवस्थाओं में ईश्वर पर विश्वास चाहिए।

उद्देश्य कथन—शिक्षक बतला देगा कि आज हम 'सुमति-सचिव' गाथा का कुछ ऐसा ही भाग पढ़ेंगे, जिसमें सुमति नामक मन्त्री के इस विषय में विचार हैं कि हमें शुभ, अशुभ, इष्ट, अनिष्ट तथा सुख-दुःख में कैसे विचार रखने चाहिएँ।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
क–कस्मिंश्चि-देशे शूरसेनो नाम राजासीत्। स भूर्निर्विशेष प्रजा पालयन् सुखेन कालं निनाय। नरपति-स्तस्मिन्नत्यर्थं प्रीतिमानासीत्। तस्य मन्त्रिणो भगवति परमा प्रीतिर्बभूव।	पाठ को दो भागों में विभक्त किया जायगा। उच्चारण-विभाग तथा अर्थ-विभाग। दोनों भागों में सामान्य विधि वही रहेगी। पाठ स्पष्ट तथा सरलार्थ होने पर प्रत्येक शब्द का सरलार्थ छात्रों से ही करवाने का यत्न होगा। आरम्भ में शिक्षक गाथा का सार अपने शब्दों में वर्णन कर देगा और बतला देगा कि आज हम ऐसी गाथा का सन्दर्भ पढ़ायेंगे, जिस से पता चलेगा कि	

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	शूरसेन का मन्त्री प्रभु पर पूर्ण विश्वास रखता था और सुखदुःख में प्रभु पर ही भरोसा रखता था।	
१. कस्मिश्चित् देशे। २. राजासीत् ३. शूरसेनो नाम ४. सः। ५. सुतनिर्विशेषं ६. प्रजाः पालयन् ७. सुखेन कालं निनाय। ८. नृपतिस्त-स्मिन्नत्यर्थं ९. प्रीतिमाना-सीत्। १०. तस्य मन्त्रिणः— ११. भगवति— १२. परमा प्रीति-र्बभूव—	कस्मिन् तथा कस्मिश्चित् में अर्थभेद द्वारा शिक्षक किम से चित् लगाकर— कः—कश्चित्, केन—केन-चित्, इत्यादि रूपों के द्वारा इन के अर्थ में अन्तर स्पष्ट कर देगा। सन्धिच्छेद द्वारा, प्रत्येक शब्दार्थ द्वारा, लिङ्ग,विभक्ति, वचन-परिचय द्वारा, विशेष, निर्विशेष के अर्थ द्वारा, निर्विशेष की विशेष व्याख्या द्वारा। प्रजाः–लिङ्ग-विभक्ति-वचन परिचय तथा शब्दार्थ द्वारा। पालयन्—शब्दार्थ तथा अन्य पठ्, वद् आदि के शत्रन्त रूपों के द्वारा इसका अर्थ समझाते हुए। प्रत्येक शब्दार्थ द्वारा तथा निनाय शब्द की रूपरचना	१. कस्मिन् देशे–किस देश में। कस्मिश्चिन् देशे–किसी देश में। २. राजा+आसीन् ५. सुतनिर्विशेष–पुत्र के समान। ६. प्रजाःपालयन्–प्रजाओं को पालता हुआ। ७. निनाय–व्यतीत करता था। ८. नरपतिः+तस्मिन्+अत्यर्थ-अत्यधिक। ९. प्रीतिमान्+आसीत्, प्रेम वाला था। ११. भगवान् में।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	द्वारा सन्धिच्छेद तथा प्रत्येक शब्दार्थ द्वारा। सन्धिच्छेद तथा शब्दार्थ द्वारा— लिङ्ग-विभक्ति-वचन-परिचय तथा शब्दार्थ— शब्दार्थ तथा पद-परिचय— प्रत्येक का शब्दार्थ तथा भीतिर्बभूव में सन्धिच्छेद।	
ख—"जगतीह नक्तन्दिन यत् किञ्चिद् घटते तत्सर्वमेव शुभाय" इत्येव तस्य बुद्धिरासीत्। शुभं वाप्यशुभं किञ्चिद् धीरस्यास्य चित्तं विकलयितुं न प्रभवति स्म 'भगवता विधात्रा यदेव विधीयते तत्सर्वमेव शुभाय" इति सः सर्वदैवाकथयत्।	इस भाँति छात्रों से प्रत्येक शब्द का अर्थ करवा कर सन्दर्भ का अर्थ छात्रों से सुना जायगा। पूर्ववत् द्वितीय सन्दर्भ को सरल करवा कर प्रत्येक शब्दार्थ छात्रों से करवाया जायगा।	
	१. जगतीह—सन्धिच्छेद तथा शब्दार्थ द्वारा।	१. जगति+इह इह जगति—इस संसार में।
	२. नक्तन्दिनं—शब्दार्थ द्वारा	२. रात-दिन।
	३. यत् किञ्चिद् घटते—शब्दार्थ द्वारा।	३. घटते—बनता है, होता है।
	४. तत्सर्वमेव शुभाय—प्रत्येक शब्दार्थ तथा सर्वमेव में सन्धिच्छेद द्वारा।	४. सर्वम्+एव।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	५. इत्येवम्--सन्धिच्छेद द्वारा।	५. इति+एवम्।
	६. बुद्धिरासीत--सन्धिच्छेद द्वारा—इत्येवं तस्य बुद्धिः आसीत्-प्रत्येक शब्दार्थ द्वारा।	६. बुद्धिः+आसीत्।
	७. वाप्यशुभं—सन्धिच्छेद द्वारा—शुभं वा अपि अशुभम्-प्रत्येक शब्दार्थ द्वारा।	७. वा+अपि+अशुभम्।
	८. धीरस्यास्य—अर्थ,सन्धिच्छेद तथा लिङ्ग-विभक्ति-वचन-परिचय द्वारा।	८. धीरस्य+अस्य इस धीर के।
	९. चित्तं विकलयितुं—प्रत्येक शब्दार्थ तथा तुम् प्रत्यय लगा कर विकलयितुम् रूप की रचना सम्बन्धी ज्ञान द्वारा।	९ चित्तं विकलयितुं–चित्त को विचलित करने के लिए।
	१०.प्रभवति स्म-'प्र' उपसर्ग से अर्थ परिवर्तन तथा अन्त में 'स्म' के लगाने से भूतकाल का अर्थ बोध करवाने की रीति के निर्देश द्वारा।	१०. न प्रभवतिस्म–समर्थ न था।
	११. भगवता विधात्रा—प्रत्येक शब्दार्थ तथा लिङ्ग-विभक्ति-वचन परिचय द्वारा।	११. भगवन् विधाता के द्वारा।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	१२. यदेव—सन्धिच्छेद द्वारा।	१२. यत्+एव।
	१३. विधीयते—शब्दार्थ द्वारा।	१३. विधीयते—किया जाता है।
	१४. तत्सर्वमेव शुभाय—सन्धिच्छेद तथा प्रत्येक शब्दार्थ द्वारा।	१४. तत् सर्वम्+एव-वह सब ही।
	१५. इति—शब्दार्थ द्वारा।	१५. इति-यह।
	१६. सर्वदैवाकथयत्—सन्धिच्छेद तथा प्रत्येक शब्दार्थ द्वारा। प्रत्येक शब्दार्थ को क्रमशः छात्रों द्वारा स्पष्ट करवा कर समस्त सन्दर्भ का अर्थ सुन लिया जायगा।	१६. सर्वदा+एव+अकथयत्।

आवृत्ति तथा परीक्षण

१—मन्त्री का प्रेम किस से था ?

२—उसके विचार कैसे थे ? सांसारिक परिस्थितियाँ क्या उसके मन को विचलित कर सकती थीं।

३—वह सदा क्या कहा करता था ?

गृह-कार्य

मन्त्री का स्वभाव तथा उसके विचार लिखकर लाने को दिये जायंगे।

XXIV

अध्यापक-रोल नम्बर——

पाठ—लोकोक्तियाँ विषय—सुबोध पाठ, भाषानुवाद

कक्षा—अष्टम समय ४० मिनट

उद्देश्य—सरलतापूर्वक भावार्थ समझाते हुए भाषितों की ओर छात्रों का ध्यान आकृष्ट करना।

पूर्वज्ञान के आधार पर नवीन पाठ में प्रवेश

छात्र हिन्दी में अच्छी २ सूक्तियां तथा उपदेश-प्रद दोहे पढ़ चुके हैं। उनके इसी ज्ञान के आधार पर नवीन पाठ में प्रवेश होगा।

१—संसार में विजय किस की होती है? अन्त में विजयी कौन बनता है?

२—सब से बड़ा गुरु कौन है?

३—क्या लोगों की रुचि एक प्रकार की है?

छात्र इन प्रश्नों का भिन्न २ उत्तर देंगे।

उद्देश्य कथन—शिक्षक बतला देगा कि आज हम ऐसी ही कुछ सूक्तियाँ संस्कृत में पढ़ायेंगे, जिनका भावार्थ अत्युत्तम और मनोरम होगा और जीवन में सदा जिनको स्मरण रखना शिक्षा-प्रद एवं लाभ-दायक सिद्ध होगा।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
क-ज्ञानं भारः क्रिया विना	पूर्व पाठ में दर्शित विधि के अनुसार उच्चारण के सरल हो जाने पर शब्दार्थ की ओर ध्यान दिया जायगा।	

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	सरलार्थ तथा भावार्थ छात्रों द्वारा ही कहलवाने का यत्न होगा।	
१. क्रिया विना	शब्दार्थ द्वारा तथा 'विना' के योग में द्वितीया विभक्ति के प्रयोग के ज्ञान द्वारा।	१. कर्म के विना।
२. ज्ञानं भारः	शब्दार्थ-द्वारा। शिक्षक स्पष्ट करा देगा कि यदि ज्ञान के अनुसार कोई मनुष्य काम करता है, तब तो वह ज्ञान सफल है और सुखदायी है, नहीं तो बोझ है और दुःख देता है। इसलिए ज्ञान के अनुसार कार्य करना चाहिए।	२. ज्ञान बोझ है।
ख—परोपदेशे पाण्डित्यम्।	शब्दार्थ, सन्धिच्छेद तथा विग्रह द्वारा।	
१. परोपदेशे	शब्दार्थ-द्वारा।	१. पर+उपदेशे—दूसरे को उपदेश करने में।
२. पाण्डित्यम्	प्रश्नोत्तर द्वारा शिक्षक छात्रों के हृदय पर इस भाव को अङ्कित कर देगा कि दूसरों को उपदेश देने में सभी पण्डित होते हैं, परन्तु स्वयं उपदेश के अनुसार चलने में कोई ही ज्ञानी होता है।	२. पाण्डित्यम्—विद्वत्ता।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	उपदेश देना सरल है किन्तु आचरण करना अति कठिन। संसार में उपदेश करने वाले पण्डितों की कमी नहीं है परन्तु आचरण करने वाले दो चार ही मिलेंगे। इसलिए आचरण करने वाले बनो। जैसे बुद्ध आदि।	
ग—कर्मण्येवाधिकारस्ते।	सन्धिच्छेद द्वारा।	कर्मणि+एव+अधिकारः+ते।
१. ते अधिकारः। २. कर्मण्येव।	सन्धिच्छेद और शब्दार्थ द्वारा।	१. तेरा अधिकार २. कर्म में ही है।
	शब्दार्थ समझलेने पर शिक्षक बतला देगा कि यह वाक्य भगवद्गीता का है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं— 'हे मनुष्य, तेरा अधिकार कर्म करने में है'। अपना कर्तव्य समझ कर संसार में प्रत्येक काम को करो, फल की इच्छा न रखो। फल भगवान् स्वयं देगा। ऐसा करने से संसार में सुख मिलता है।	

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
अ—आचारप्रभवोधर्मः ।	१. आचारप्रभवः—सन्धिच्छेद, विग्रह तथा शब्दार्थ द्वारा शिक्षक स्पष्ट कर देगा कि धर्म का मूल आचार है अर्थात् सदाचार से धर्म की उत्पत्ति होती है इसलिए सदाचार को अपनाना चाहिए।	१. आचारः- सदाचार प्रभव उत्पत्ति कारण यस्य सः । जिस की उत्पत्ति का कारण सदाचार है।
उ—यतोधर्मस्ततो जयः । १. यतो धर्मः २. ततो जयः ।	सन्धिच्छेद तथा प्रत्येक शब्दार्थ द्वारा शिक्षक स्पष्ट कर देगा कि जहाँ धर्मपूर्वक कार्य होता है, वहाँ ही विजय होती है। धर्म पर चलने वालों की जीत होती है। अतः धर्म का आश्रय लेना चाहिए।	यतः+धर्मः+ततः जयः । १ जिस पक्ष में धर्म है। २. उस पक्ष में जय है।
च—सत्यमेव जयते नानृतम्। १. सत्यमेव, २ नानृतम्, ३ जयते, सत्य एव जयते, अनृत न।	सन्धिच्छेद और शब्दार्थ द्वारा सरल अर्थ करवा कर शिक्षक समग्र वाक्यार्थ को स्पष्ट कर देगा कि सदा सत्य की ही जय होती है झूठ की नहीं। अतः सत्य को अपनाना चाहिए।	१. सत्यम्+एव- सत्य ही। २. न अनृतम् न कि झूठ। ३ जयते-जीतता है।
छ—भिन्नरुचिर्हि लोकः । १. लोक २. भिन्नरुचि	सन्धिच्छेद, शब्दार्थ तथा विग्रह पूर्वक सरलार्थ करके शिक्षक प्रश्नोत्तर विधि से	१ लोक-संसार २. भिन्नरुचि+हि भिन्ना रुचिः यस्य सः।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
३. हि	छात्रों के हृदय में यह बिठा देगा कि संसार में लोगों की रुचि एक प्रकार की नहीं है कोई मीठा पसन्द करता है, कोई खट्टा, कोई नमकीन। कोई एक विषय में रुचि रखता है, कोई दूसरे में।	३. हि–निश्चय-वाचक अव्यय।
ज–विद्या गुरूणा गुरुः। १. गुरूणाम्	लिङ्ग-विभक्ति-वचन-परिचय द्वारा शब्दा समझ लेने पर शिक्षक समझायेगा कि गुरुओं का भी गुरु विद्या है अर्थात् विद्या सब से बड़ा गुरु है। अर्थात् विद्वान् का पद सब से बड़ा है।	१. गुरुओं का।
झ–न युद्धं तात कारणम्। १. तात।	पृथक्-पृथक् शब्दार्थ द्वारा समग्र वाक्यार्थ करवा कर शिक्षक समझा देगा कि संसार में शान्ति का कारण युद्ध नहीं है। युद्ध से तो अशान्ति बढ़ती है।	१. ऐ प्रिय।

पठित-परीक्षण तथा आवृत्ति

क, ग, ङ, छ और झ–इन सुभाषितों का अर्थ सुना जायगा।

गृह-कार्य

ख, घ, च, ज–इन सुभाषितों का सार लिखने को दिया जायगा।

XXV

अध्यापक-रोल नम्बर——

पाठ—संस्कृत पद्य विषय—सुबोध पाठ

कक्षा—नवम समय ४० मिनट

> ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
> सङ्गात् सञ्जायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥
>
> क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
> स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

उद्देश्य—शुद्धोच्चारण पूर्वक छात्र पद्य का भाव समझ सकें तथा अपने शब्दों में उसका सार वर्णन कर सकें।

पूर्वज्ञान के आधार पर नवीन पाठ में प्रवेश

छात्र देखते हैं कि संसार में कोई बढ़ रहा है तो कोई नष्ट हो रहा है। किसी का उत्थान हो रहा है तो किसी का पतन। अपनी २ समझ के अनुसार उत्थान-पतन का कारण भी सब जानते हैं। इसी ज्ञान के आधार पर नवीन पाठ में प्रवेश होगा।

शिक्षक—संसार में मनुष्य का उत्थान और पतन कैसे होता है ?

छात्र—सुगुण तथा दुर्गुण क्रमशः उत्थान-पतन के कारण हैं।

अन्य छात्र—सत्संग तथा दुष्टसङ्गति भी इसके कारणों में से हैं।

उद्देश्य कथन—शिक्षक बतला देगा आज हम भगवद्गीता का यह श्लोक पढ़ायेंगे जिसमें भगवान् ने बतलाया है कि मनुष्य के विनाश का क्या कारण है।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
आरम्भ में लिखित श्लोक-	पूर्वदर्शित सामान्य विधि के अनुसार उच्चारण के सरल, शुद्ध तथा स्पष्ट हो जाने पर अन्वय करवा कर छात्रों से सरलार्थ करवा दिया जायगा। सन्धिच्छेद परिचय और विग्रह आदि व्याकरणांश की ओर भी ध्यान दिलाया जायगा।	
क-विषयान् ध्यायतः पुंसः तेषु सङ्ग उपजायते।		
१. सङ्गस्तेषूपजायते	सन्धिच्छेद द्वारा।	१. सङ्ग+तेषु+ उपजायते
२. विषयान्	शब्दार्थ तथा पदपरिचय द्वारा।	२. विषयों को
३. ध्यायतः	शब्दार्थ तथा लिङ्ग-विभक्ति-वचन-परिचय द्वारा	३. चिन्तन करते ए
४. पुंसः	शब्दार्थ द्वारा।	४. पुरुष क
५. तेषु सङ्ग उपजायते	पृथक् २ शब्दार्थ द्वारा।	५. उन से आसक्ति उत्पन्न हो जाती है।
	शिक्षक समग्र वाक्य का अर्थ स्पष्ट कर देगा कि संसार के विषयों का ध्यान करने से उनमें आसक्ति बढ़ती है इसलिए विषयों का ध्यान नहीं करना चाहिए।	

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
ख–सङ्गात् कामः सञ्जायते १. सङ्गात् २. सञ्जायते	प्रत्येक का शब्दार्थ। लिङ्ग-विभक्ति-वचन-परिचय शब्दार्थ द्वारा। उपसर्ग, सन्धिच्छेद, धातु, लकार, पुरुष, वचन। शिक्षक स्पष्ट कर देगा कि आसक्ति से विषयों को पाने की इच्छा पैदा होती है। यह स्वाभाविक बात है कि जिधर मन का झुकाव प्रबल होता है उधर ही इच्छा भी प्रबल होती है।	१. आसक्ति से २. सम्+जायते सम् उपसर्ग, जन धातु लट् प्रथम पुरुष एकवचन, उत्पन्न होता है।
ग–कामात्क्रोधोऽभिजायते। १. कामात् २. क्रोधोऽभिजायते	प्रत्येक का शब्दार्थ। परिचय शब्दार्थ। सन्धिच्छेद, उपसर्ग, क्रिया-परिचय। शिक्षक समस्त वाक्य का अर्थ स्पष्ट कर देगा कि इच्छा के पूर्ण न होने पर मनुष्य का स्वभाव है कि क्रोध उत्पन्न होता है।	१. इच्छा से २. क्रोध+अभिजायते—अभि उपसर्ग जन् धातु आदि–क्रोध उत्पन्न होता है।
घ–क्रोधाद भवति सम्मोहः। १ क्रोधात् सम्मोहः भवति	शब्दार्थ द्वारा शिक्षक समझा देगा कि क्रोध से कर्तव्य और अकर्तव्य का ध्यान नहीं रहता इसलिए क्रोध से बचना चाहिए।	१–क्रोध से सम्मोह—उचित अनुचित के ज्ञान का अभाव।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
ङ–१.सम्मोहात् २. स्मृति-विभ्रम।	शब्दार्थ-द्वारा। विग्रह तथा शब्दार्थ द्वारा शिक्षक स्पष्ट कर देगा कि उचित अनुचित के ज्ञान के अभाव से स्मरण-शक्ति ठीक नहीं रहती।	१. युक्त-अयुक्त ज्ञान के अभाव में २. स्मृते विभ्रमः स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है।
च–१. स्मृति-भ्रशाद् २.बुद्धिनाश.	विग्रह-शब्दार्थ द्वारा। विग्रह और शब्दार्थ द्वारा शिक्षक बतलायेगा कि स्मरण-शक्ति के ठीक न रहने पर बुद्धि का नाश हो जाता है।	१. स्मृतेः भ्रशाद् स्मृति के चले जाने से २. बुद्धिनाश – बुद्धि का नाश
छ–१बुद्धिनाशात् २.प्रणश्यति	विग्रह, शब्दार्थ द्वारा। उपसर्ग, न् को ण्, क्रिया-पद परिचय द्वारा शिक्षक समझा देगा कि बुद्धि के नाश से मनुष्य पशु बन जाता है। मनुष्य बुद्धिजीविप्राणी है। बुद्धि-विनाश से उसका भी नाश हो जाता है। शिक्षक समग्र पद्य का शृङ्खलाबद्ध अर्थ छात्रों को हृदयङ्गम कराने के निमित्त इस प्रकार दोहरा देगा—	१–बुद्धिनाश में २–बिल्कुल नष्ट हो जाता है। प्र उपसर्ग, एक पद में 'र्' होने से न् को 'ण्' हो गया।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	विषयों के ध्यान से उन में आसक्ति, आसक्ति से इच्छा, इच्छा के व्याघात से क्रोध, क्रोध से उचितानुचित के ज्ञान का अभाव अर्थात् सम्मोह, सम्मोह से स्मृति का विभ्रम, स्मृति के चले जाने से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से मनुष्य का नाश होता है। इसलिए मनुष्य के पतन का मूल कारण विषयों का ध्यान है। उत्थान के लिए विषयों का चिन्तन न करना परम आवश्यक है।	

पठित-परीक्षण

१—विषयों मे आसक्ति से क्या होता है ?
२—विषयों की प्राप्ति की इच्छा में बाधा होने पर क्या होगा ?
३—क्रोध से क्या होता है ?
४—विषयों मे आसक्ति नाश का कारण कैसे बनती है ?

गृह-कार्य

श्लोक का अन्वयार्थ लिखकर लाना होगा।

XXVI

अध्यापक-रोल नम्बर——

पाठ—संस्कृत पद्य विषय—सुबोध संस्कृत-पाठ

कक्षा—नवम समय ४० मिनट

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा,
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसन श्रुतौ,
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥

उद्देश्य—सरलतापूर्वक उच्चारण तथा श्लोकान्तर्गत प्रत्येक शब्दार्थ समझते हुए भावार्थ वर्णन करने की योग्यता उत्पन्न करना।

पूर्वज्ञान के आधार पर नवीन पाठ में प्रवेश

छात्र महात्माओं तथा उन के स्वभाव आदि से कुछ परिचय रखते हैं। उनके इसी परिचय की सहायता से नवीन पाठ में प्रवेश होगा।

शिक्षक—महात्मा शब्द का अर्थ क्या है?

छात्र—जिसकी आत्मा महान् हो—ऊँची आत्मावाला।

शिक्षक—महात्मा के क्या चिह्न हैं? तुम उसे कैसे पहचानते हो? उस का स्वभाव कैसा होता है?

छात्र—अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार भिन्न-भिन्न उत्तर देंगे। कोई वेशभूषा के बाहरी आडम्बर को और कोई उत्तम गुणों को महात्मा का लक्षण कहेगा।

उद्देश्य कथन—शिक्षक स्पष्ट करदेगा कि गेरुए वस्त्र पहनने वाला ही महात्मा नहीं होता। जिसमें दिव्य गुण हों,

जिसकी आत्मा महान् हो उसे महात्मा कहते हैं। आज हम एक ऐसा पद्य पढ़ायेंगे जिसमें महात्माओं के स्वभाव का वर्णन मिलेगा। हमें पता लगेगा कि महात्माओं में जन्म से ही कौन-कौन से गुण विद्यमान रहते हैं।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
आरम्भ में उद्धृत पद्य-	पाठ की सामान्य विधि पूर्वदर्शित ही है। पाठ के सरल, शुद्ध और स्पष्ट हो जाने पर छात्रों से प्रत्येक शब्द का अर्थ निकलवा कर अन्वय पूर्वक सरलार्थ करवाया जायगा। व्याकरणांश पर भी ध्यान रखा जायगा।	
१. विपदि धैर्यम्	लिङ्ग-विभक्ति-वचन-परिचय तथा शब्दार्थ द्वारा प्रत्येक शब्दार्थ स्पष्ट करवाकर शिक्षक बतला देगा कि महात्माओं में जन्मसिद्ध सब से पहला गुण यह मिलता है कि वे विपत्ति में भी कभी विचलित नहीं होते, सदा धीरज रखते हैं।	१.विपदि-विपत्ति में धैर्यम्-धीरज
२. अथाभ्युदये क्षमा	सन्धिच्छेद शब्दार्थ, लिङ्ग-विभक्ति-वचन-परिचय द्वारा शिक्षक स्पष्ट करदेगा कि	२. अथ+अभि+उदये-और उन्नति-तरक्की में

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	उन्नति में क्षमाशील रहना, अभिमान न करना महात्माओं का दूसरा जन्मसिद्ध गुण है।	
३. सदसि वाक्-पटुता	अर्थ लिङ्ग-विभक्ति-वचन-परिचय द्वारा तथा वाक्पटुता में विग्रह द्वारा स्पष्ट कर दिया जायगा कि महात्माओं की तीसरी पहचान सभा में चतुराई से बोलना है।	३. सदसि—सभा में वाचि पटुता—वाणी में चतुराई
४. युधि विक्रम	पृथक् शब्दार्थ द्वारा तथा युधि के पदपरिचय पूर्वक यह स्पष्ट किया जायगा कि युद्ध में वीरता दिखाना महात्माओं का चौथा लक्षण है।	४. युधि—युद्ध में विक्रम—बहादुरी
५. यशसि चाभि-रुचिः	पृथक् २ शब्दार्थ यशसि का पदपरिचय तथा चाभि-रुचिः में सन्धिच्छेद तथा अर्थ द्वारा।	५.यशसि—यश में च—और, अभि-रुचिः—अति प्रीति—दिलचस्पी
६. श्रुतौ व्यसनम्	शब्दार्थ तथा पदपरिचय-द्वारा। इदम्—शब्दार्थ द्वारा। हि—शब्दार्थ द्वारा। महात्मनाम्— पदपरिचय तथा शब्दार्थ द्वारा प्रकृति	६. श्रुतौ—वेदों के पढ़ने में व्यस-नम्—लगन, आसक्ति।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
७ इद हि महात्मना प्रकृतिसिद्धम्	सिद्धम्-विग्रह तथा शब्दार्थ द्वारा शिक्षक स्पष्ट कर देगा कि ये गुण महात्माओं में जन्म से ही मिलते हैं। यही महात्माओं की सच्ची पहिचान है।	७. इदम्-यह, हि-अव्यय-निश्चयार्थक महात्मनाम्-महात्माओं का प्रकृत्या सिद्धम्-स्वभाव से सिद्ध

आवृत्ति तथा पठित-परीक्षण

समग्र पद्य की ओर छात्रों का ध्यान आकृष्ट करता हुआ—

शिक्षक—महात्माओं में स्वभाव सिद्ध प्रथम बात क्या मिलती है ?

प्रथम छात्र—वे विपत्ति आने पर भी विचलित नहीं होते, अपितु धैर्यसे उसे सहन करते हैं।

शिक्षक—दूसरा स्वाभाविक गुण क्या है ?

द्वितीय छात्र—महात्मा लोग ऊँचे पद को पा लेने पर भी किसी को दुःख नहीं देते, बदला नहीं लेते, अपराधी को भी क्षमा कर देते हैं।

शिक्षक—महापुरुषों का तीसरा गुण क्या है ?

तृतीय छात्र—वे सभा में बड़े उत्तम ढंग से बातचीत करते हैं। उन में वक्तृत्व शक्ति होती है।

शिक्षक—चतुर्थ गुण के विषय में तुम क्या जानते हो ?

चतुर्थ छात्र—महापुरुष युद्ध में वीरता से लड़ते हैं, शत्रु के आक्रमण से कभी नहीं डरते।

शिक्षक—ये किस चीज को सब से अधिक चाहते हैं ?

पञ्चम छात्र—महात्मा लोग यश को सब से अधिक चाहते हैं।

शिक्षक—उनकी आसक्ति किस बात में रहती है?

षष्ठ छात्र—महात्माओं की लगन वेदादि शास्त्रों के अभ्यास में रहती है। वे सदा वेदादि सत् शास्त्रों के अनुशीलन में लगे रहते हैं।

इस प्रकार शब्दार्थ एवं भावार्थ ज्ञान का परीक्षण करते हुए शिक्षक समग्र पद्य का सार छात्रों के शब्दों में उनके मुख से सुनेगा। विपदि, अभ्युदये, सदसि, युधि, यशसि, प्रकृतिसिद्धम्—इनके अर्थ पूछेगा।

गृह-कार्य

अन्वय पूर्वक श्लोक का अर्थ लिखकर लाने को दिया जायगा।

XXVII

अध्यापक-रोल नम्बर——

पाठ—संस्कृत पद्य विषय—सुबोध-पाठ

कक्षा—दशम समय ४० मिनट

शान्ताकारं भुजग-शयनं पद्मनाभं सुरेशं,
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यम्,
वन्दे विष्णुं भव-भय-हरं सर्वलोकैक-नाथम्॥

उद्देश्य—शुद्धोच्चारणपूर्वक भाव हृदयङ्गम कर अपने शब्दों में वर्णन करने की योग्यता सम्पादन करना, पद्यों में प्रयुक्त समस्त शब्दों द्वारा समास ज्ञान दृढ करना।

पूर्व ज्ञान के आधार पर नवीन पाठ में प्रवेश

छात्र पाठ में प्रयुक्त अनेक शब्दों के अर्थ को जानते हैं इसी ज्ञान के आधार पर नवीन पाठ मे प्रवेश होगा।

शिक्षक कृष्णफलक पर 'विष्णुं वन्दे' इस वाक्य को लिख कर वाक्यान्तर्गत प्रत्येक पद का परिचय करवाता हुआ अर्थ पूछेगा। 'वन्देमातरम्' से तुलना करायेगा।

छात्र बतला देंगे कि 'वन्दे' क्रिया पद है। वन्द् धातु का लट् उत्तम पुरुष एकवचन में रूप है। इसका कर्ता 'अहं' है। अर्थ है—मैं नमस्कार करता हूँ। 'विष्णुं' यह विष्णु शब्द का द्वितीया विभक्ति एकवचन में रूप है। समग्र वाक्य का अर्थ है—मैं विष्णु को नमस्कार करता हूँ।

उद्देश्य-कथन—शिक्षक स्पष्ट करदेगा कि आज हम एक ऐसा श्लोक पढ़ायेंगे, जिसमें भगवान् विष्णु को नमस्कार किया गया है। पद्यान्तर्गत शेष पद विष्णु के विशेषण हैं, जो विष्णु की विशेषता का वर्णन करते हैं। समस्त पदों का विग्रह आदि कर समास ज्ञान को दृढ करना भी ध्येय है।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
पाठ के आरम्भ में लिखित पद्य-	पाठ की सामान्य विधि प्रथम पाठ में निदर्शित ही है। उच्चारण के शुद्ध स्पष्ट और सरल हो जाने पर छात्रों द्वारा अन्वय करवाकर प्रत्येक शब्द का अर्थ करवाने का यत्न किया जायगा।	

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	शिक्षक बतलादेगा कि इस पद्य में 'विष्णु' शब्द द्वितीयान्त है। शेष पद उसके विशेषण हैं। 'वन्दे' क्रिया-पद है। समस्त पदों द्वारा विष्णु के गुणों का वर्णन कवि का लक्ष्य है।	
१. शान्ताकारं	विग्रह तथा अर्थ-द्वारा शिक्षक छात्रों से कहलवाने का यत्न करेगा कि शान्त और आकार–ये दो शब्द समस्त होकर विष्णु के विशेषण बने हुए हैं। यत् शब्द का इनके विग्रह में प्रयोग होता है। यह समास अन्यपद प्रधान है, इसलिये बहुव्रीहि समास है।	१. शान्त-आकारः यस्य तम्—शान्त आकार वाले।
२. भुजग-शयनं	विग्रह, अर्थ तथा शेपशायी विष्णु के चित्र प्रदर्शन द्वारा शिक्षक प्रश्नोत्तर विधि से छात्रों से यह स्पष्ट करवायेगा कि यहाँ भी पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है।	२. भुजगः शयनं यस्य तम्—साँप जिसकी शय्या है अर्थात् जो सर्प के बिस्तर पर सोता है।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
३. पद्मनाभम्	विग्रह तथा अर्थ द्वारा यहाँ पर शिक्षक उस पुराण-गाथा की ओर भी संकेत कर देगा जिसमें विष्णु की नाभि से कमल की उत्पत्ति का अलङ्कारमय वर्णन है।	३. पद्मं नाभौ यस्य तम्—जिसकी नाभि में पद्म है।
४ सुरेशम्	सन्धिच्छेद, विग्रह तथा अर्थ द्वारा शिक्षक जनेश, नरेश, धनेश, महेश आदि समान पदों के उदाहरण देकर छात्रों से स्पष्ट करवायेगा कि इस समस्त पद में द्वितीय पद प्रधान है। प्रथम शब्द का अर्थ द्वितीय शब्द के अर्थ को व्यवस्थित करता है और षष्ठ्यन्त है। अतः यहाँ पर षष्ठी तत्पुरुष है।	४. सुराणाम् ईश —सुरेश-स्तम्—देवों के स्वामी।
५. विश्वाधारम्	सन्धिच्छेद, विग्रह समास-नाम और अर्थ द्वारा बताया जायगा कि विष्णु संसार के या सब के आधार हैं—पालक और रक्षक हैं।	५. विश्वस्य आधारम्—संसार के सहारे।
६. गगन-सदृशम्	विग्रह अर्थ तथा समास नाम द्वारा बताया जाना चाहिए कि विष्णु आकाश	६. गगनेन सदृशम्–आकाश के तुल्य।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	के समान नित्य, अनन्त, अपार, अथाह, अनादि और नीलवर्ण हैं।	
७. मेघवर्णम्	विग्रह, अर्थ और समास नाम द्वारा शिक्षक बतलायेगा कि विष्णु का रंग मेघ के समान नीला और चमकता हुआ है।	७. मेघ इव वर्णो यस्य तम्— मेघ के समान वर्ण वाले।
८. शुभाङ्गम्	सन्धिच्छेद, विग्रह, अर्थ और समास के नाम द्वारा।	८.शुभानि अङ्गानि यस्य तम्—कल्याणप्रद अङ्गोंवाले
९. लक्ष्मीकान्तम्	विग्रह, अर्थ और समास नाम द्वारा।	९. लक्ष्म्याः कान्तम्—लक्ष्मी के प्रियपति।
१०. कमलनयनम्	विग्रह, अर्थ और समास नाम द्वारा।	१०. कमल जैसे नेत्रों वाले।
११. योगिभि.	पद-परिचय तथा शब्दार्थ द्वारा।	११. योगियों द्वारा
१२. ध्यानगम्यम्	अर्थ तथा विशेष वर्णन द्वारा शिक्षक स्पष्ट करेगा कि विष्णु को प्राप्त करना सुगम नहीं। योगी ही ध्यान द्वारा उसे प्राप्त करते हैं।	१२. ध्यान से प्राप्त होने वाले।
१३. भव-भय-हरम्	प्रत्येक शब्दार्थ द्वारा।	१३. संसार के भयों को दूर करने वाले।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
१४. सर्वलोकैक-नाथम्	सन्धिच्छेद तथा प्रत्येक शब्दार्थ द्वारा।	१४. समस्त संसार के एक-मात्र स्वामी।
१५. विष्णुं वन्दे	शिक्षक प्रश्नोत्तर द्वारा छात्रों से कहलवायेगा कि 'वन्दे' क्रिया पद है। इसका कर्ता है—'अहम्' जो लुप्त है। 'विष्णु' कर्म है। इनका अर्थ है—मैं विष्णु को नमस्कार करता हूँ। समग्र पद्य का अर्थ एक दो छात्रों से सुनकर अपने शब्दों में सारवर्णन करने को कहा जायगा।	

आवृत्ति और परीक्षण

शान्ताकारं, सुरेशं, कमलनयनं, पद्मनाभं भव-भय-हरं—इनके अर्थ, विग्रह और समास पूछे जायंगे।

गृह-कार्य

पद्यार्थ अन्वय पूर्वक लिखकर लाने को कहा जायगा।

XXVIII

अध्यापक-रोल नम्बर——

पाठ—संस्कृत पद्य — विषय—सुबोध संस्कृत पाठ

कक्षा—नवम — समय ४० मिनट

श्रीरामः शरणं समस्तजगतां रामं विना का गतिः,
रामेण प्रतिहन्यते कलिमलं रामाय तस्मै नमः ।
रामात् त्रस्यति कालभीमभुजगः रामस्य सर्वं वशे,
रामे भक्तिरखण्डिता भवतु मे राम त्वमेवाश्रयः ॥

उद्देश्य—छात्रों का उच्चारण शुद्ध, स्पष्ट तथा सरल हो। भावों को भली भाँति समझ कर अपने शब्दों में वर्णन कर सकें। सन्दर्भगत पदों द्वारा व्याकरण ज्ञान को दृढ कर सकें।

पूर्वज्ञान के आधार पर नवीन पाठ में प्रवेश

छात्र राम शब्द के रूप सातों विभक्तियों में जानते हैं। शिक्षक कृष्णफलक पर सम्बोधन तथा अन्य विभक्तियों के रूप छात्रों से लिखवाकर उनका अर्थ पूछेगा।

उद्देश्य-कथन—अर्थ ज्ञान परीक्षण कर बतला देगा कि आज हम ऐसा श्लोक पढ़ायेंगे जिस में राम शब्द का समस्त विभक्तियों में प्रयोग मिलेगा।

पाठ प्रवेश (सामान्य विधि)

इसमें दो विभाग होंगे—उच्चारण विभाग तथा अर्थ विभाग अर्थात् व्याख्या विभाग। उच्चारण विभाग में अध्यापक उच्चारण-शैली को बताने के लिए स्वयं पाठ को पढ़कर सुनायेगा।

तदनन्तर किसी योग्य छात्र से पढ़वाकर कई एक अन्य छात्रों से अभ्यास करवायेगा। उच्चारण की अशुद्धियों का संशोधन शब्दावृत्ति द्वारा, परस्पर छात्रों द्वारा अथवा स्वयं करवा देगा। उच्चारण के शुद्ध, स्पष्ट तथा सरल हो जाने पर अर्थविभाग में प्रवेश होगा। प्रत्येक शब्द का अर्थ छात्रों द्वारा करवाने का यत्न होगा। पाठान्तर्गत अनेक पदों के शब्द, लिङ्ग, विभक्ति, वचन तथा क्रिया पदों के धातु, लकार, पुरुष, वचन, पूछते हुए पद्य का सरलार्थ भी छात्रों द्वारा ही करवाया जायगा। सन्धि-च्छेद भी यथावसर करवाया जायगा। अध्यापक स्वयं फिरता हुआ छात्रों के कार्य का निरीक्षण करेगा।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
आरम्भ में पद्य देखिए	शिक्षक सामान्य विधि के अनुसार उच्चारण को शुद्ध करवाकर श्लोकान्तर्गत पदों को सम्बन्धानुसार क्रमपूर्वक रखने के लिए अन्वय का नियम बतला देगा कि गद्य में पद प्रायः यथास्थान और यथा क्रम होते हैं, परन्तु पद्य में छन्द गति, यति, लय को ठीक रखने के लिए पद यथास्थान नहीं रहते। अतः अन्वय करते समय कर्ता आदि में, क्रिया अन्त में, शेष पद यथाक्रम मध्य में	

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	रखे जाते हैं। विशेषण विशेष्य से पहले, सम्बन्धी सम्बन्ध वाचक से पीछे, क्रिया-विशेषण क्रिया के साथ और सम्बोधन आदि में रखे जाते हैं। अन्वय के अनुसार अध्यापक पद्य के एक एक भाग को ले।	
क-श्रीरामः समस्तजगता शरणम्।	पृथक् पृथक् शब्दार्थ, लिङ्ग-विभक्ति-वचनज्ञान परीक्षण द्वारा समग्र भाग का अर्थ करवाया जायगा।	समस्तजगताम्—सारे संसार का शरणम्-आश्रय-सहारा
ख-रामं विना का गतिः।	शब्दार्थ द्वारा प्रश्नोत्तर विधि से शिक्षक छात्रों से ही कहलवायेगा कि यहाँ विना के योग मे द्वितीया विभक्ति है।	रामं विना—राम के विना। का गतिः—क्या चारा है।
ग-रामेण प्रतिहन्यते कलिमलम् १. कलिमलं २. प्रतिहन्यते	छात्रों से अन्वय—नियमानुसार—'रामेण कलिमलं प्रतिहन्यते' अन्वय करवा कर एक-एक शब्द के अर्थ द्वारा।	१. कलियुग की मैल २. नष्ट की जाती है।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
घ–रामाय तस्मै नम १. रामाय तस्मै नम	तस्मै रामाय नमः—अन्वय कर प्रत्येक शब्दार्थ द्वारा शिक्षक बतलादेगा कि नमः के योग में राम के साथ चतुर्थी विभक्ति है।	१. राम के लिए नमस्कार करना चाहिए।
ङ–रामात् त्रस्यति कालभीमभुजग १. कालभीम-भुजग २. त्रस्यति	रामात् कालभीमभुजगः त्रस्यति—इस प्रकार अन्वय कर प्रत्येक शब्दार्थ द्वारा शिक्षक स्पष्ट करदेगा कि यहाँ भयार्थक धातु के योग में भय के कारण के साथ पञ्चमी विभक्ति है।	१. कालरूपी भयानक सर्प २. डरना है।
च–रामस्य सर्वं वशे	सर्वं रामस्य वशे—अन्वय पूर्वक प्रत्येक शब्द के अर्थ द्वारा।	
छ–रामे भक्तिर-खण्डिता भवतु मे १. भक्तिरखण्डिता २. मे	सन्धिच्छेद तथा पृथक्-पृथक् शब्दार्थ करवाकर 'मम' के स्थान पर 'मे' हुआ है यह बतला कर शब्दार्थ द्वारा 'रामे मे अखण्डिता भक्तिः भवतु' ऐसा अन्वय करवा कर।	१. भक्ति+अख-ण्डिता—न खण्डि-ता अर्थात् पूर्ण २. मे—मेरी।
ज–राम, त्वमे-वाश्रय। १. त्वमेवाश्रय	हे राम, त्वम् एव आश्रयः इत्यादि अन्वय कर सन्धि-च्छेद एवं शब्दार्थद्वारा।	१. त्वम्+एव+आश्रयः।

वस्तु—	शिक्षण-विधि	कृष्णफलक सार
	शिक्षक श्लोकान्तर्गत वाक्यों का अर्थ छात्रों से करवाकर समग्र श्लोक का अर्थ और सार छात्रों से उन के शब्दों में सुनकर बतला देगा कि इस पद्य में एक रामभक्त ने राम के महत्त्व का वर्णन किया है। समस्त कारकों तथा विभक्तियों का प्रयोग एक ही पद्य में बतलाना, यह भी कवि का लक्ष्य है।	

पठित-परीक्षण तथा आवृत्ति

(क) श्रीरामः शरणं, (ख) रामेण कलिमलं प्रतिहन्यते, (ग) रामे अखण्डिता भक्तिर्भवतु, (घ) रामात् कालभीमभुजगः त्रस्यति। इन वाक्यों के अर्थ परीक्षण द्वारा आवृत्ति होगी।

गृह-कार्य

श्लोक का अर्थ घर से लिखकर लाने को कहा जायगा।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

परिशिष्ट

संस्कृत-व्याकरण सम्बन्धी कुछ उक्तियाँ

१. संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः ।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ॥

२. अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम् ।
अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ॥

३. संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च ।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रमुच्यते ॥

४. मात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः ।

५. तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता ।
अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्तिताः ॥

६. उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते ।
प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत् ॥

७. कर्ता कर्म च करणं सम्प्रदानं तथैव च ।
अपादानाधिकरणमित्याहुः कारकाणि षट् ॥

८. द्वन्द्वोऽहं द्विगुरपि मद्गेहे च नित्यमव्ययीभावः ।
तत्पुरुष कर्म धारय येन स्यां बहुव्रीहिः ॥

१०. इदमस्तु सन्निकृष्टं समीपतरवर्ति चैतदोरूपम् ।
अदसस्तु विप्रकृष्टं तदिति परोक्षे विजानीयात् ॥

११. वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः ।

१२. दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशास्जिमन्थ्‌मुषाम् ।
कर्मयुक् स्यादकथितं प्रधाने नीह्रकृष्वहाम् ॥

१३. क्रियायाः फलनिष्पत्तिर्यद्व्यापारादनन्तरम् ।
विवक्ष्यते यदा यत्र करणं तत्तदा स्मृतम् ॥

१४. भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने ।
संसर्गेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः ॥

१५. मुनित्रयं नमस्कृत्य तदुक्तीः परिभाव्य च ।
वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदीयं विरच्यते ॥

१६. रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम् ॥

१७. सत्यदेवाः स्यामेत्यध्येयं व्याकरणम् ।

१८. मुखं व्याकरणं तस्य ज्योतिषं नेत्रमुच्यते ।
निरुक्तं श्रोत्रमुद्दिष्टं छन्दसां विचितिः पदे ।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य हस्तौ कल्पान्प्रचक्षते॥

१९. यदधीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते ।
अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्ज्वलति कर्हिचित् ॥

२०. प्रधानं च षट्स्वङ्गेषु व्याकरणम् ॥

२१. अवैयाकरणस्त्वन्धो बधिरः कोशवर्जितः ।
साहित्यरहितः पङ्गुर् मूकस्तर्कविवर्जितः ॥

शिक्षा सम्बन्धी उल्लेख

१. यावज्जीवमधीते विप्रः। (सुभाषित)

२. नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। (गीता)

३. ज्ञानं तृतीयं मनुजस्य नेत्रम्।

४. सा विद्या या विमुक्तये।

५. अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम्।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः।

६. बुद्धिर्यस्य बलं तस्य।

७. विद्याविहीनः पशुः।

८. यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्।

९. ज्ञानं भारः क्रियां विना।

१०. यस्यागमः केवलजीविकायै।
तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति॥

११. सुखार्थिनः कुतो विद्या।
नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्॥

१२. माता शत्रुः पिता वैरी।
येन बालो न पाठितः॥

१३. स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।

१४. तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।

१५. बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।

१६. वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे ।
न च खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा ॥
भवति च पुनर्भूयान् भेदः फलं प्रति तद्यथा ।
प्रभवति मणिर्बिम्बोद्ग्राहे न चैव मृदांचयः ॥

१७. जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते ।
विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते ॥

१८. यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्रायाथ च स्वाय चारणाय च
(वाजसनेयी० २६,२)

१९. शिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था,
संक्रान्तिरन्यस्य विशेषरूपा ।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां,
धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव ॥ (कालिदास)

२०. अतीत्य बन्धूनवलङ्घ्य शिष्यान् ।
आचार्यमागच्छति शिष्यदोषः ॥

२१. गुरुशुश्रूषया ज्ञानं, शान्तिं योगेन विन्दति ।

२२. गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः ।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः ॥
(पाणिनीय शिक्षा)

२३. द्यूतं पुस्तकशुश्रूषा नाटकासक्तिरेव च ।
स्त्रियस्तन्द्रा च निद्रा च विद्याविघ्नकराणि षट् ॥
(नारद)

२४. यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति ।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥

२५. पुस्तकस्था तु या विद्या परहस्तगतं धनम् ।
कार्यकाले समुत्पन्ने न सा विद्या न तद्धनम् ॥

२६. आचार्यात्पादमादत्ते पादं शिष्यः स्वमेधया ।
पादं सब्रह्मचारिभ्यः पादं कालक्रमेण तु ॥

२७. न मे स्तेनो जनपदे''''नानाहिताग्निर्नाविद्वान् ।
(छान्दोग्योपनिषद्)

२८. तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां
वाल्मीकिपार्श्वादिह संचरामि ।

२९. ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति ।

३०. अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥

३१. गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा ।
अथवा विद्यया विद्या चतुर्थं नोपलभ्यते ॥

शुभं भूयात्